

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि.....

(श्री स्वामी जी की पुस्तकें भाग 1)

गावत वेद पुरान अष्टदस । छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस । ।

मुनि जन धन संतन को सरबस । सार अंस संमत सबही की ।

दलन रोग भव मूरि अमी की । तात मात सब बिधि तुलसी की । ।

भगवद् स्वामी श्री पराङ्कुशाचार्य जी द्वारा रचित पुस्तकों के वस्तुतः भगवान की परमभक्तिको प्राप्त करने के एक मात्र सुगम साधन “शरणागति” को समाहित किये हुये है। भरत जी ने चित्रकूट के रास्ते प्रयागराज त्रिवेणी से प्रार्थना की “मागउँ भीख त्यागि निज धरमु” परमभक्ति की ही भीख मांगी : “अरथ न धरम न काम रूचि गति न चहउँ निरबान । जनम जनम रति रामपद यह वरदान न आन।” रामचरितमानस अयोध्या काण्ड दोहा 204 । हमारे सभी आगम निगम “दास” भावना यानी “शरणागति” को ही सशक्त बनाने की सलाह देते हैं। भगवान राम ने स्वयं काकभुडशुण्डी जी से कहा है: “तिन्ह ते मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोहि न दूसरी आसा ।मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं.....सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग। श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग।” रामचरितमानस उत्तर काण्ड दोहा 85 । 86 ।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम् । । भागवत 7 । 5 । 23

परमभक्ति की नौ सीढ़ियों में ...दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम्” अंतिम तीन हैं। इससे स्पष्ट है कि भक्ति मार्ग में उत्तरोत्तर विकास होते होते दास भावना आती है और अंत में आत्मनिवेदन यानी शरणागति स्वीकार होती है। इसी को रामचरितमानस अरण्य काण्ड दोहा 34 । 35 । 36 में भगवान राम ने स्वयं शबरी से कहा है : “कह रघुपति सुनुभाभिनी बाता। मानउँ एक भगति कर नाता..... प्रथम भगति संतन्ह कर संग। दूसरी रति मम कथा प्रसंगा.....नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।”

भगवद् श्री पराङ्कुशाचार्य जी द्वारा रचित पुस्तकें समय समय पर हुलासगंज से पुनर्प्रकाशित होती रहीं हैं जिसमें अद्यतन “अर्चागुणगान” पर टीका है।

प्रारम्भ में सभी पुस्तकों को श्री स्वामी जी महाराज स्वयं ही छपवाते रहते थे और भक्तों के बीच निःशुल्क वितरित करते थे। कुछ पुस्तकों को कोई कोई भक्त ने भी सेवा सुमन भाव से प्रारम्भ में प्रकाशित किया था। उदाहरणस्वरूप “देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं ?” का प्रकाशन श्री सुदर्शनाचार्य लारी ग्रामनिवासी ने किया। उसीतरह से “संपत् में विपत् और दीनता में राम” का प्रकाशन पं श्री अम्बिकादत्त शर्मा सबजपुरा जयपुर ग्रामनिवासी द्वारा संपन्न हुआ। दोनों पुस्तकों का प्रथम संस्करण साधना प्रेस पटना से प्रकाशित है। “श्रीसीताराम परिचय व मानस शंका समाधान” पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय डा कुञ्जबिहारी शर्मा, ग्राम बरपा ओवरा को है जिसे उन्होंने प्रथमतः श्रीविक्रम पंचांग प्रेस भदौनी वाराणसी से छपवाया। “नाम माहात्म्य” पुस्तक श्रीस्वामी जी महाराज के विभिन्न काल में भक्तों के बीच सुनायी जानेवाली भगवान के विभिन्न गुणों को प्रकाशित करने वाले पदों का संकलन है जो धनश्याम प्रेस नवीन कोठी पटना से छपी हुई है और प्रकाशक भक्त ने अपना नाम अज्ञात ही रखा है।

श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा प्रणीत पुस्तकों की सूची है :

1 । ब्रह्ममेध संस्कार एवं नारायणबलि पद्धति ।

2। अर्चागुणगान।

3। स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की संक्षिप्त जीवनी (प्रथम खण्ड)।

4। साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर स्त्री एवं मंत्र (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी (द्वितीय खण्ड))।

5। मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा तथा रामरहस्य (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी (तृतीय खण्ड))।

6। महाप्रयाण (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी (चतुर्थ खण्ड))।

7। श्रीसीताराम परिचय व मानस शंका समाधान।

8। एक नारायण ही उपास्य क्यों ?

9। ध्रुव प्रह्लाद चरित्र।

10। मित्र सुदामा-कृष्ण।

11। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण।

12। नाम माहात्म्य।

13। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव।

14। संपत् में विपत् दीनता में राम।

15। अर्चिरादि मार्ग।

16। देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं ?

ऊपर दिये गये पुस्तकों का सार संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है परन्तु मूल पुस्तक का अवलोकन एवं अध्ययन आवश्यक है : प्रभु मूर्ति देखहीं तिन तैसी। जाकी रही भावना जैसी।

1। ब्रह्ममेध संस्कार एवं नारायणबलि पद्धति।

शरीर छूटने के बाद शवयात्रा तथा दाह संस्कार से लेकर बारह दिन की अवधि दिवंगत आत्मा के लिये महत्वपूर्ण प्रतीक्षा की अवधि रहती है जिसके बाद उन्हें नये शरीर की प्राप्ति होती है। परिवार वालों को छूतक रहता है जिसे अशौच भी कहते हैं जिसका अंत पिण्डदान एवं ब्राह्मणभोज से होता है। दिवंगत आत्मा को सद्गति प्राप्त कराने के लिये पिण्डदान एक वैदिक रीति है।

भगवान राम के जंगल जाने के पश्चात् राजा दशरथ की मृत्यु हो गयी। भरतजी ने दाह संस्कारादि किया।

एहि विधि दाह किया सब कीन्हीं। विधिवत ताहि तिलांजुलि दीन्ही।।

सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना।।

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा।।

भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि राज बाहन नाना।। रामचरितमानस अयोध्या काण्ड दोहा 169।170

जब भरत जी चित्रकूट आये और भगवान राम को पिता की मृत्यु की जानकारी मिली तब उन्होंने भी वैदिक रीति से श्राद्धकर्म किया: “भोरू भए रघुनन्दनहि जो मुनि आयसु दीन्ह। श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरू कीन्ह।। करि पितु किया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी।। रामचरितमानस अयोध्या काण्ड दोहा 247।” ऐसी मान्यता है कि समस्त परिवार को श्राद्धकर्म में सम्मिलित होने की आवश्यकता है। चूँकि भगवान राम श्राद्धकर्म के समय अयोध्या में वर्तमान नहीं थे अतः उन्होंने अलग से ही श्राद्धकर्म पूरा किया।

पक्षीराज जटायु जी ने रावण से सीताजी को बचाने में अपना प्राण दे दिया। भगवान राम ने भी उनका अंतिम संस्कारादि स्वयं किया। “...तेहि की किया जथोचित निज कर कीन्हीं राम। रामचरितमानस अरण्य काण्ड दोहा 32।”

शुद्ध श्रीवैष्णव के लिए इस तरह के कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं होती है। इसी तथ्य को महर्षिवेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र में उजागर किया है। इसकी विस्तृत जानकारी भगवद् श्रीरामानुज के ब्रह्मसूत्र पर लिखी गयी टीका “श्रीभाष्य” से लिया जा सकता है। जीव को सद्गति या तो स्वयं के कृत्य से मिलती है या फिर उनके वंशजों के सहयोग से। शबरी शुद्ध श्रीवैष्णव थीं और भगवान राम के समक्ष उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। बिना किसी श्राद्धकर्म के वे परमगति को प्राप्त हुईं : “कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पदपंकज धरे। तजि जोग पावक देह हरि पद पद लीन भइ जहँ नहीं फिरे।।” रामचरितमानस अरण्य काण्ड दोहा 36।

सद्गति साधन के कई विकल्प हैं। राजा सगर के सभी साठहजार पुत्र कपिल मुनि के शाप से भस्मीभूत हो गये थे। यह उनलोगों की अकालमृत्यु थी। उनकी सद्गति के लिये ही उनके वंशज भगीरथ की कठिन साधना एवं तपस्या से गंगा जी पृथ्वी पर आयीं और जब उनके भस्मीभूत शरीर के अवशेष पर से गंगा जी प्रवाहित हुई तब उनलोगों का कल्याण हुआ।

भगवद् स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी ने श्राद्धकर्म में आये तत्कालीन सामाजिक कुरीति को दूर करने हेतु इस पुस्तक का प्रणयन किया तथा इसका प्रकाशन पहली बार संवत् 2010 यानी ई 1953 में हुआ। तब श्राद्धकर्म एक दिखावा था। श्री स्वामी जी ने इसको शास्त्रअसम्मत बनाते हुए शवयात्रा से पूर्व मृतक शरीर का ब्रह्ममेध संस्कार करने की विधि बतायी जिसमें शव को स्नानादि कराकर हल्दी चंदन का लेप लगाकर पुष्पादि से सुसज्जित करते हुए पिण्डादि के साथ गंगा नदी तक ले जाते हैं। नारायणबलि में बारहवें दिन के श्राद्धकर्म का प्रारम्भ नारायण एवं उनके चतुर्व्यूह की विधिवत पूजा से की। इससे जीव को भगवान की शरणागति करा दी जाती है तथा बाद में पितरों का पिण्डदान किया जाता है। इस पुस्तक में नारायणबलि के लिये आवश्यक सामग्री एवं पूजा विधि के वर्णन के साथ आवश्यक मंत्रों का समावेश है। वर्तमान स्वामी जी एवं पंडित माधव शर्मा जी ने चौदहमासिका के साथ पितरों के सपिण्डीकरण आदि तथा अन्य ग्यारह दिनों के लिये आवश्यक पद्धति पर पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें एक ही पुस्तक में बारहवें दिन के नारायणबलि के साथ साथ अन्य दिनों के लिये भी आवश्यक विधियों एवं पद्धतियों का संकलन है।

2। अर्चागुणगान

श्रीवैष्णव दिव्यदेश की कुल संख्या 108 है। दिव्यदेश उसे कहते हैं जहाँ भगवान के दिव्य मूर्ति की नित्य निरन्तर विधिवत पूजा आराधना होती रहती है तथा जिनका उल्लेख आळवार संत के रचना संग्रह ‘दिव्यप्रबन्धम्’ में मिलता हो। इस धराधाम पर 106 दिव्यदेश हैं तथा 2 दिव्यदेश ‘वैकुण्ठ’ तथा ‘क्षीरसागर’ सामान्य दृष्टि से बाहर हैं। तमिलनाडु में 82 तथा केरल में 13 दिव्यदेश हैं। आंध्रप्रदेश में तिरुपति एवं अहोविल 2 दिव्यदेश हैं। गुजरात में 1 द्वारिका तथा 1 नेपाल में मुक्तिनाथ दिव्यदेश हैं। उत्तराखण्ड में 3 दिव्यदेश देवप्रयाग बदरीनाथ तथा जोशीमठ हैं। 4 दिव्यदेश उत्तरप्रदेश में हैं : नैमिषारण्य, अयोध्या, मथुरा तथा वृन्दावन। गोकुल, गोवर्द्धन, यमुना सब के प्रतीक वृन्दावन ही दिव्यदेश है।

जैसे बारहो आळवार संत सदा भगवत चिन्तन में निमग्न रहते थे उसीतरह से भगवद् स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी भी तिरुमला के श्रीनिवास भगवान, काञ्ची के भगवान वरदराज, श्रीरंगम के रंगनाथ भगवान, अयोध्या के भगवान राम तथा वैकुण्ठ के परमपदनाथ के दिव्य अर्चा विग्रह के मानसिक कैक्यभाव में ही सदा लीन रहते थे। अर्चागुणगान के सम्यक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इसके सभी पद विभिन्न दिव्यदेश के दिव्यविग्रह से उनकी अंतर्वार्ता को चित्रित करते हैं। अर्चागुणगान में कुल 61 पद हैं। पद 1 से 61 तक

भगवान के साथ उनकी अन्तरंग वार्ता के विभिन्न आयामों की अनोखी निरन्तरता की प्रस्तुति है। अन्तरंग वार्ता के साथ साथ स्वामी जी अपने गुरु परमहंस स्वामी, अन्य पूर्वाचार्य तथा माता लक्ष्मी जी की भी भरपूर सहायता लेते हैं। इस आध्यात्मिक अन्तरंग वार्ता की अलौकिक प्रस्तुति पहले पद “श्रीनिवास प्रताप दिनकर...” से प्रारम्भ होती है तथा विभिन्न दिव्यदेश केचकीय परिभ्रमण की पुनरावृत्ति करते हुए गुरु के मार्गदर्शन तथा माता लक्ष्मी के वात्सल्य के सहारे अंत में परमपदनाथ की प्राप्ति पर जा पहुँचती है जहाँ स्वामी जी नृत्यादि के अभिनय के साथ अपने पदों से भगवान को प्रसन्न करते हुये अंतिम पद से भगवान की आरती उतारते हैं “श्रीनिवास भगवान की भली आरती कीजिये.....”। ‘स्थिति’ एवं ‘स्थान’ के अनुकूल ‘स्वर’ ‘राग’ एवं ‘लय’ से परिपूर्ण शब्दों के अनूठे प्रयोग अर्चागुणगान के पदों की अपनी विशिष्टता है।

अनुरागी पाठकों से आग्रह है कि अर्चागुणगान के प्रत्येक पद के अन्तःभाव के लिये ‘दिव्य चरितामृत’ पुस्तक तथा वर्तमान स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी की पूर्वप्रकाशित टीका का अवलोकन करें।

3। स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की संक्षिप्त जीवनी (प्रथम खण्ड)।

संवत् 2017 वि यानी ई सन् 1960 में चांद प्रेस जहानाबाद से इस पुस्तक के प्रथम प्रकाशक श्रीराम संस्कृत विद्यालय सरोती है। इसमें कुल पृष्ठों की संख्या 148 है। यह पुस्तक विभिन्न अध्यायों में बंटी है जिसके शीर्षक हैं :

क। भूमिका पृ 1।

ख। स्वामी श्री राजेन्द्र सूरि जी का परिचय। पृ 5।

ग। ताल स्वरों का भेद सूत्ररूप में पद्यों में। पृ 9।

घ। श्री स्वामी जी का विराग। पृ 14।

च। तरेत स्थान का सौभाग्य। पृ 18।

छ। विपक्षियों से संघर्ष। पृ 29।

ज। श्री स्वामी जी महाराज का योगाभ्यास। पृ 45।

झ। श्री स्वामी जी महाराज की तीर्थयात्रा। पृ 51।

ट। यज्ञ प्रकरण। पृ 65।

ठ। यज्ञों का नाम और अर्थ। पृ 73।

ड। मूर्ति पूजा अनादि कालिक। पृ 85।

ढ़। पुण्य और पाप का लक्षण। पृ 99।

त। सत्संग क्यों?। पृ 108।

थ। श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य प्रशिष्य। पृ 119।



भूमिका :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

भगवान के अवतार के कारण गीता 4।7 एवं 8 में दिये गये हैं। इसतरह से साधु एवं धर्म के रक्षार्थ भगवान के अयोध्या में रामजी एवं मथुरा में कृष्ण जी के रूप में अवतार हुए। कलिकाल में धर्म के नाश से भगवान चिंतित थे। भगवान का जीव के बारे में आश्वासन है कि “त्वं मे, अहं मे, कुतस्तत्” यानी “तुम मेरे हो”। परन्तु जीव अहंकारममकारवश कहता है “अहं ब्रह्मास्मि” यानी मैं ही भगवान हूँ। इसतरह से भगवान को चिंतित देखकर दिव्यपार्षद आदिशेष जी ने आज्ञा मांगी तथा वे दक्षिणभारत में जीव के कल्याणार्थ स्वामी रामानुज बनकर आये। प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा। तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः। भगवान ने रक्षाबन्धन पूर्वक प्रतिज्ञा कररखी है कि रामानुज प्रपन्नों को यानी रामानुज के शरणागतों को “रामानुजप्रपन्नाय रक्षां दीक्षां करोम्यहम्” “मोक्षयिष्यामि मा शुचः” संसार से मुक्त कर दूँगा।

भागवत स्कंध 11।अ 5। श्लोक 38, 39 एवं 40 में दक्षिण भारत के नदियों के किनारे भगवान के दिव्यपार्षदों के पदार्पण की बात है।

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्। कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः।। 38

क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः। ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।। 39

कावेरी महापुण्या प्रतीची च महानदी। ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर।

प्रायो भक्ता भगवती वासुदेवेऽमलाशयाः।। 40

भाव है कि कलियुग में संकीर्तन से ही सब कुछ मिलता है इसलिये कलि में अन्य युगों से ज्यादा ही भगवान नारायण के भक्त होते हैं। विशेषकर दक्षिण भारत की नदियों ‘ताम्रपर्णी’, ‘कृतमाला’, ‘पालार’, ‘कावेरी’, ‘पश्चिम की ओर बहने वाली पेरियार’ के क्षेत्र में ही अधिकाधिक संख्या में ये भक्तगण रहेंगे। इन नदियों के जल पीनेवाले भगवान वासुदेव के भक्त होते हैं। (प्रसिद्ध दिव्यदेश आळवार तिरुनगरी ताम्रपर्णी के किनारे है जहाँ शठकोप स्वामी का इमली वृक्ष के नीचे आसन लगा है। कृतमाला को ही आज के दिन मद्रुरै की वैगेई नदी कहते हैं। भगवान का मत्स्यावतार कृतमाला के किनारे हुआ है। भागवत 8।24।12 ‘एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम्। तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत।’ पयस्विनी नदी अब पालार नदी के रूप में पहचानी जाती है जो कांचीपुरम से चेंगलपट के रास्ते श्रीलक्ष्मीनरसिंह भगवान की पहाड़ी से गुजरती है। इस पहाड़ के सामने तथा पालार नदी के दूसरे किनारे पर भारत सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित भगवान वेंकटेश का अति प्राचीन मन्दिर है जहाँ भगवान के शंख एवं चक्र उनके समक्ष एक अगल पीठिका पर रखे हैं। कथा है कि तिरुमला वेंकटेश भगवान ने अपना शंख चक्र अपने एक भक्त को युद्ध में शत्रु को पराजित करने के लिये दे दिया था और तब से तिरुमला में भगवान बिना शंख चक्र के थे। ऐसी मान्यता है कि भगवान का मूल शंख चक्र ही यहाँ पालार नदी के किनारे के मन्दिर में संरक्षित हैं। बाद में श्री रामानुज स्वामी ने पुनः इन्हें नया शंख चक्र धारण कराया था। महानदी को पेरियार कहते हैं परन्तु यह केरल की नदी है और केरल में हमारे 13 दिव्यदेश में से अधिकतम इसके किनारे हैं।)

श्री शेष जी ही कलि में पहली बार श्री रामानुज, दूसरी बार श्री बरवर मुनि, तीसरी बार श्री रंगदेशिक स्वामी तथा चौथी बार श्री राजेन्द्र सूरि बनकर आये। इनका अवतरण दिव्यक्षेत्र नैमिषारण्य के पास “मिश्र की मितौली” नामक गांव में वि सं 1909 फाल्गुन कृष्ण द्वादशी मघा नक्षत्र में यानी 22 मार्च 1853 ई दिन मंगलवार को श्री अयोध्या मिश्र के पुत्र के रूप में हुआ। कुछ ही समय में संस्कृतव्याकरण, न्याय तथा वेदान्त में पारंगत होने के साथ साथ संगीत विद्या में भी निपुण हो गये थे।

ताल स्वरों का भेद सूत्ररूप में पद्यों में

आप अपने शिष्यों को हिन्दी संस्कृत संगीत गान का मर्म ‘राग एवं लय’ के साथ ‘स्वर तथा ताल’ में अंतर समझाते हुए बताते थे। एक स्थान में अनेक स्वर रहने को ग्राम कहते हैं। उदात्त, अनुदात्त एवं त्वरित ग्राम के भेद हैं। षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत एवं निषाद ये सात स्वर हैं। प्राचीन काल में जंगली

जन्तुओं की बोली पर ही स्वरों के नामकरण हुए थे : मोर से षड़ज, बकरा से ऋषभ, गौ से गान्धार, कौंच से मध्यम, कोयल से पंचम, घोड़ा से धैवत, एवं हाथी से निषाद। गाने में स्वर का तथा वाद्य में ताल का प्रयोग होता है। स्वर की तरह ताल भी जन्तुओं की बोली पर आधारित होते हैं। उनके उच्चारण काल को मात्रा से आंका गया है। जैसे, एक मात्रा वाला ताल नीलकण्ठ से, दो मात्रा कौवे से, तीन मात्रा मोर से, आधी मात्रा नेवले से। गाने के स्वर एवं वाद्य के एकरूपता को लय अर्थात् लीन हो जाना कहते हैं। लय दो प्रकार के होते हैं : देशी तथा मार्गी। सभी क्षेत्र या स्थानों के लय अलग अलग होने के कारण इनके नियम बन्धन नहीं हैं। मार्गी शास्त्रीय होते हैं जो व्याकरण की तरह नियम में बंधे होते हैं। लव कुश का रामायण गान मार्गी है।

कहवाँ सिखे हो लाल जी वंशी बजावना। कर ललित ललित स्वर से सुन्दर सुहावना।।
स्वर मोर के षड़ज में ले चार मूर्च्छना। औ ऋषभ स्वर अजा के ले तीन मूर्च्छना।।
गान्धार को गौओं से दो, दो करके मूर्च्छना। चकवा समान मध्यम में चार मूर्च्छना।।
कोकिल से मीठ पंचम और चार मूर्च्छना। घोड़े के स्वर में धैवत के तीन मूर्च्छना।।
सप्तम निषाद गज के स्वर दो ही मूर्च्छना। अनुदात्त औ उदात्त त्वरित ग्राम जानना।।
स्वर सात के बदल कर सब राग जानना। तैसे ही सात ताल से सब ताल मानना।।
मात्रा अधीन ताल स्वर सब को भी गिनना। पर बोलता नीलकण्ठ ही एक मात्र सुनना।।
देशी राग के भी कोई नियम नहीं हैं परन्तु मार्गी राग नियम बद्ध होते हैं। भैरव राग एक पहर रात्रि बचने पर, सूर्योदय से मालकोश, एक पहर दिन बचने पर हिंडोल, दोपहर में दीपक और संध्या काल में श्रीराग का नियम है। इन सभी रागों के छः छः रागनियों होती हैं। प्राचीन वाद्ययंत्र मृदंग पखावज तन्त्री तानपूरा आदि हैं तथा आधुनिक वाद्य हारमोनियम हैं।

श्री स्वामी जी गान वजान के बोल बताते थे उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं।

साधारण ठेका 'कधिट धिट धा कटिट तिटता'

हरि गीतिका 'धीन धीन धीनन'

भुजंग प्रयात 'नाधिं धिना नाधिं धिना नाधिं धिना ताधिंता ताधिंता ताधिंता ता तिरकित तक।

अनुष्टुप 'तार्धीता तार्धीता तार्धीता तिरकित तक।

16 मात्रा तीन ताल 'दादरा' में : भजे भाष्यकारं भजे लक्ष्मणार्यम् ...' 'प्रभो पापियों को बचाते न आते'।

स्वागताच्छंद 'धिधिधिन धिनक धिन'।

टुमरी लयदारी में 'सिय के समाज सुहाग सुन्दरी आये स्युवर जनक के नगरी'।

तोटक दादरा 'अच्युतं केशवं रामनारायणम्...'

भगवान की लीला से सम्बन्धित संस्कृत श्लोक स्वामी जी स्वयं गाते थे। उनका प्रिय गान सूरदास का बाल्यभाव के पद तथा तुलसीदास के विनयपत्रिका एवं गीतावली से हुआ करते थे। अन्य देव सम्बन्धी पद न गाते थे और न गाने की अनुमति देते थे। पचरूखिया के भागवताचार्य तथा अन्य शिक्षक तरेत में गान विद्या की शिक्षा देते थे।

भगवान को गान विद्या अतिप्रिय है। जब परीक्षित शुकदेव जी से कथा सुन रहे थे उस समय होने वाले संकीर्तन का आनन्द भगवान भी स्वयं प्रकट होकर लेते थे। कीर्तन मंडली के वर्णन में कहा है :

प्रह्लादस्तालधारी तरल गतितया चोद्धव कांसधारी,
वीणाधारी सुरर्षिः स्वर कुशल तथा राग कर्ताऽर्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादन्मृदंगं जय जय सुकराः कीर्तने ते कुमराः,
यत्राग्रे भाव वक्ता सरस रचनया व्यासपुत्रो वभूव।।

अर्जुन स्वर ताल के मर्मज्ञ होने के कारण आगे आगे गाते थे। इन्द्र मृदंग, प्रह्लाद जी शीघ्रता से करताल, उद्धवजी मञ्जीरा, सुरर्षिनारद वीणा बजाते थे। जय जयकरने वाले सनकादिक थे। सरस रचना द्वारा भाव शुक्रदेव जी बताते थे। रस के नौ या दस भेद कहे जाते हैं : रौद्र, विभत्स, श्रृंगार, हास्य, वीर, दया, भयानक, अद्भुत, शान्त एवं प्रेमभक्ति।

श्री स्वामी जी का विराग

विवाहादि बंधन इन्हें बांध नहीं सका। सोलह वर्ष की अवस्था तक ही सभी समाप्त हो गये। इनके घर पर साधु सेवा होती थी। नैमिषारण्य जाने वाले साधुमंडली आपके घर रुके थे। उड़द दाल के बदले किसी साधु ने अरहर दाल मांगी। माता ने उसे नहीं होने का बहाना कर दिया। गुड़ की मांग पर आप माता के बताने पर एक पात्र में उसे ढूढ़ने गये तो अरहर की दाल मिल गयी। गुड़ की सेवा कर दी गयी परन्तु दाल का बहाना मन में घर कर गया। साधुमंडली के जाते ही स्वयं भी घर छोड़ दिये। बाद में आपने सन्यास वृत्ति अपना ली थी। कुटीचर, बहूदक, हंस तथा परमहंस आदि सन्यासियों के भेद होते हैं। आपने परमहंस वृत्ति को प्राप्त कर लिया था। बिना कर्मफल की अपेक्षा के जो कर्म करे वही सन्यासी है न कि निरग्नि रहने वाले। आसन के लिये आपके पास मृगचर्म, फलपात्र लौका का तुम्बा, दो कटिवस्त्र तथा काठ के खड़ाऊँ के अतिरिक्त आपके पास कुछ नहीं था। द्रव्य न आप छूते थे न मांगते थे। सवारी चढ़ते नहीं थे।

श्री स्वामी जी घूमते घामते वृन्दावन पहुँचे। उत्तर भारत में श्रीवैष्णवता के प्रचार प्रसार का अधिकतम श्रेय गोवर्धन पीठ को ही हैं। श्री वरवरमुनि के अष्टदिग्गज बाद में आये। श्री शठकोपाचार्य ने ही आज के ज्ञात इतिहास से सर्वप्रथम गोवर्धन पीठ पर कुटी बनाकर श्रीवैष्णवता के प्रचार प्रसार प्रारम्भ कर दिया था। बाद में श्री वरवरमुनि के अष्टदिग्गजों से एक श्री कन्दाई अण्णन जी ने इसको गोवर्धन पीठ का रूप दिया। इसीलिये इसे अण्णन पीठ भी कहते हैं। समय बीतने पर श्रीशेषाचार्य जी के शिष्य श्री श्रीनिवासाचार्य जी यहाँ के पीठाधीश हुए। इनके ही समय में दक्षिण भारत से श्रीरंगदेशिक स्वामी पधारे और श्री श्रीनिवासाचार्य के शिष्य हो गये तथा बाद में गोवर्धन पीठ के पीठाधीश हुए। जब श्री राजेन्द्र सूरि जी घर से विराग लेकर घूमते घामते वृन्दावन आये तब उस समय श्री रंगदेशिक स्वामी जी ही गोवर्धन पीठाधीश थे। इन्हीं से श्री राजेन्द्र सूरि जी समाश्रित हुए।

मथुरा के सेठ श्री लक्ष्मीचन्द्र जी के भाई श्री गोविन्ददास जी श्री रंगदेशिक स्वामी से समाश्रित थे। वे श्री रंगदेशिक स्वामी के साथ दक्षिण यात्रा में गये थे। दक्षिण के भव्य मन्दिरों से प्रभावित होकर उन्होंने वृन्दावन में श्री रंगदेशिक स्वामी जी के निदेशानुसार वर्तमान श्रीरंग मन्दिर का निर्माण कराया जो ई सन् 1851 में पूरा हो गया था। तब से गोवर्धन पीठ इसी नये परिसर में आ गया।

श्री राजेन्द्र सूरि जी ने समाश्रित होने के पश्चात भतरौढ़ विहारी मन्दिर के पास श्रीनृसिंह मंत्र का अनुष्ठान किया। इसी स्थान पर भागवत कथा के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण को यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों की पत्नियों भोजन कराया था। कुछ काल के बाद श्री रंगदेशिक स्वामी परमपद कर गये। श्री राजेन्द्र सूरि जी भी उदासीन भाव से वृन्दावन छोड़कर अयोध्या काशी भोजपुर का भ्रमण करते मगध क्षेत्र में पधारे। रास्ते में महमतपुर ग्राम के बाहर एक विशाल महुआ के पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे। ग्रामीणों के अनुरोध पर श्री घिनावन शर्मा के घर रात बिताये तथा वहाँ से जगन्नाथ पुरी के लिये प्रस्थान कर गये। ग्रामीणों के बहुत आग्रह पर उन्होंने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' को स्मरण के अभ्यास के लिये उनलोगों को प्रेरित किया।

तरेत स्थान का सौभाग्य

कुछ काल बाद लौट कर तरेत के समीप जंगल में पीपल के पेड़ के नीचे रहकर कन्दमूलादि से भगवत सेवा करते हुए रहने लगे। पता लगने पर ग्रामीणों की भीड़ होने लगी। महमतपुर से एक मन्दिर बनाकर छः विग्रहा जमीन समर्पित किया गया। शिष्य बनाने के आग्रह पर मात्र वासुदेव मंत्र का जप ही बताया जाता था।

कुछ ही समय में श्री स्वामी जी बद्रीनारायण की यात्रा पर गये तथा साथ में हदसपुरा एवं तरेत के कुछ भक्तगण भी गये। लौटने के बाद तरेत के बाहर ही ग्रामीणों ने एक फूस की झोपड़ी बनवाई तथा श्री स्वामी जी वहीं निवास करने लगे। कुछ काल में महमतपुर में श्री लक्ष्मी नारायण भगवान का एक मन्दिर बना तथा तरेत में श्री राघवेन्द्र भगवान का। मन्दिर में विग्रह की विधिवत प्राणप्रतिष्ठा के लिये आपने वृन्दावन से याज्ञिकों को निमंत्रित किया। विधिवत दोनों जगह भगवान प्रतिष्ठित हुए। श्रीरंगजी मंदिर से अम्बा जी ने शंख चक्र भेजकर श्री स्वामी जी को विधिवत श्रीवैष्णव बनाने के लिये कहा। तदानुसार शिष्यों का पञ्चसंस्कार करते हुए मूल मंत्र से समाश्रित किया जाने लगा।

चेसी के श्रीरामखेलावन शर्मा आदि के विशेष स्नेहवश तरेत के ही मन्दिर में रहते हुए बागीचा लगाया गया जिसे 'कलम बाग' कहा जाने लगा। दक्षिण भारत से विद्वानगण पधारने लगे तथा उनके प्रवचन से तरेत की धरती एक तीर्थस्थल बन गयी। पठन पाठन का कार्य प्रारम्भ हुआ जिसमें 'श्रीभाष्य' के अतिरिक्त व्याकरण की पढ़ाई होने लगी। फलस्वरूप परियारी के श्री रघुनाथाचार्य श्रीभाष्य के विद्वान बने। 'शब्द ब्रह्म परब्रह्म ममोसे शाश्वती तनुः।' शब्दब्रह्म तथा परब्रह्म ये दोनों मेरे अनादिकालिक देह हैं। शब्दब्रह्म में निपुण व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है। 'अनावृतिः शब्दात् अनावृतिः शब्दात्' ब्रसू 4।4।22। इसी प्रयास से आगे चलकर श्रीराघवेन्द्र संस्कृत विद्यालय की स्थापना हुई।

श्रीरंगजी मन्दिर वृन्दावन से गोवर्धन पीठाधीश एवं रींवा मध्यप्रदेश से श्री स्वामी जी के गुरुभाई महंथ श्री रामप्रपन्नाचार्य तथा काञ्ची से प्रतिवादभयंकर के श्री अनन्ताचार्य जी तरेत पधारने लगे। विद्वत्जनों की अमृतवाणी सुनकर ग्रामीण निहाल होने लगे। 'तरति इति तरेतः' चरितार्थ हो उठा। श्री वैष्णवों की सेवा होने लगी। भगवान अपनी सेवा से ज्यादा भक्तों की सेवा से प्रसन्न होते हैं। ऐसा स्थान जहाँ भक्त प्रसन्न रहते हैं तीर्थस्थल हो जाता है। 'आचार्यविभवदर्पण' नामक ग्रंथ में दिव्यदेशीय यात्रा प्रकरण में तरेत का नाम आता है। एकबार वृन्दावन के श्रीसुदर्शनाचार्य श्री स्वामी जी के दर्शन के लिये पधारे। स्थान से कुछ दूर ही से उन्होंने सवारी छोड़ दी और पैदल चलने लगे। आग्रह करने पर उन्होंने कहा श्री स्वामी जी के श्रीचरणों से स्पर्शित भूमि पर हमें पैदल क्या सिर के बल चलना चाहिए। दीनों की याचना करने पर उपनयन, विवाह श्राद्धादि के लिए भी स्थान से सहायता दी जाती थी। 'मंगन लहही न जिनके नाहि' मानस वा का 230।4।

श्री वैष्णव साम्प्रदायिक विषय, भगवद्विषय, श्रीरामायण कथा, मंत्र स्तोत्रादि के पाठ नियमतः चलते रहते थे। अनेको वक्ता इन विषयों पर प्रकाश डालते रहते थे। इनमें वृन्दावनवासी छपरा चेफूल निवासी श्री मुमुक्षु स्वामी स्मरणीय थे। श्रद्धावान श्रोताओं में बाबू रामखेलावन शर्मा जी, बाबू वासुदेव शर्मा जी, श्री वासुदेवाचार्यादि प्रधान थे। शरणागति महान यज्ञ तथा भागवत सेवा सतत होती रहती थी।

यथा तुष्यति देवेशो महाभागवतार्चनात्। तथा न तुष्यति श्रीशः विधिस्त्वार्वनादपि।।

महाभागवता यत्र वसन्ति विमला शुभाः। तत्स्थलं मंगलं प्रोक्तं यथा विष्णुपदं शुभम्।।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मदभक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

विपक्षियों से संघर्ष

कर्मकाण्ड श्राद्धादि में स्वार्थरत अपने को गुरु बताने वाले ईर्ष्यावश श्रीस्वामी जी से जलने लगे तथा श्रीवैष्णव विधि को अवैदिक कहने लगे। श्रीस्वामी जी शान्त रहते थे जैसे वन का सिंह ग्रामसिंह यानी कुत्ते का अनुकरण नहीं करते। उनलोगों ने निन्दा के गीत तथा पोस्टर छपवाये। अन्ततः ‘अति संघर्ष करै जो कोई अनल प्रकट चंदन ते होई।’ सागरपुर, दतियाना आदि ग्रामों में सभायें हुई। श्रीसम्प्रदाय को अवैदिक कहने वाले को मुँह की खानी पड़ी। श्रीवैष्णव का शरीर सुदर्शन चक्र से पवित्र होता है। वेद पठित श्रुति है “पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषिविश्वतः अतप्त तनूर्न तदामोऽश्नुते श्रुतासः इद्वहन्त स्तत्समासत।” यहाँ पवित्र शब्द सुदर्शन चक्र के लिये कहा है। सामवेद मैत्रायणीय शाखा में कहा है ‘पवित्र मित्यग्निः अग्निर्वै सहस्रः सहस्रो नेमिः। नेमिना तप्ततनुः ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति।’ अर्थात् शुद्ध करने वाला भगवत् चक्र अग्नि के संयोग से तप्त होने से अग्नि रूप होने के कारण सहस्रों छेदन योग्य अर वाला वर्तुलाकार चक्र से तपे हुए भुजा वाला प्रपन्न भक्त अपहत पापमत्वादि समान गुण वाला होकर भगवत् लोक प्राप्त कर लेता है। ‘तेनातप्ताः तनुर्येषां न प्रयान्ति हरे पदम्’ सुदर्शनचक्र से अंकित नहीं होने वाले मोक्ष नहीं प्राप्त करते।

शिव जी ने पार्वती से कहा है कि जो लोग विष्णु भगवान को छोड़कर अन्य की भक्ति करते हैं वे महामूर्ख हैं तथा भगवान को नहीं प्राप्त करते “ततो लोका महामूढाः विष्णुभक्ति विवर्जिताः।”

इसी तरह से ढिवरा आदि ग्रामों में मूर्तिपूजाविरोधी आर्यसमाजियों से शास्त्रार्थ हुए और वे श्रीस्वामी जी के सामने टिक नहीं सके।

प्रश्न : ‘नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्च न मध्ये परिजग्रभत्। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः’। इस वैदिक मंत्र में ‘न तस्य प्रतिमा अस्ति’ यानी ईश्वर की कोई प्रतिमा नहीं है। इससे मूर्ति पूजा का खण्डन सिद्ध है।

उत्तर : प्रतिमा का अर्थ उपमा है न कि मूर्ति।

प्रश्न : वेद से मूर्ति वर्णन का प्रमाण दें।

उत्तर : यजुर्वेद 15।35 ‘सहस्रस्य प्रभासि सहस्रस्य प्रतिमा असि.....। अनेकों दृष्टान्त दिये गये।

प्रश्न : जब निराकार के ध्यान से मुक्ति हो सकती है तब मूर्तिपूजा की विडम्बना क्यों

उत्तर : ध्याता ध्येय एवं ध्यान के ज्ञान के बिना ध्यान कैसे लग सकता है। अतः साकार में ही ध्यान बन सकता है।

प्रश्न : साकार परमात्मा किस आधार पर टिका है।

उत्तर : निराकार ब्रह्म को आप व्यापक मानते हो तो उसका भी कोई आधार होगा। वही आधार साकार का भी है।

प्रश्न : वैदिक मंत्र बताइये जिसमें पत्थर से मूर्ति बनाने को कहा है।

उत्तर : ‘अथ मृतपिण्डमुपादाय महावीरं करोति मखा मध्ये संगृहीतामिवहि शिरोऽथास्य.....’ शतपथ ब्राह्मण ।

पुरुषाकार मूर्ति बनाने का संविधान वेद में है।

प्रश्न : यदि ईश्वर साकार है तो दिखता क्यों नहीं

उत्तर : सद्भक्त उसका दर्शन करते हैं। अर्जुन ने विराट रूप को देखा। ‘नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि।’ ‘विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः’।

प्रश्न : ‘पूजारी’ ‘शालिग्राम’ ‘वेंकटेश्वर’ का अर्थ बतायें।

उत्तर : ‘पूजायाः अरो’ यानी ‘ज्ञान पूजार्ः’। विधि विधान से पूजा के ज्ञान रखने वाले को पूजारी कहते हैं। प्रशंसा के अर्थ वाले शाल धातु से शाल बना है। ग्राम समूह का बोध कराता है। प्रशंसानां ग्राम समूहो यस्मिन् स शालग्रामो भगवन्मूर्ति।

प्रश्न : निश्चेष्ट पत्थर मूर्ति में किस शक्ति की पूजा होती है।

उत्तर : हमलोग मात्र पत्थर की मूर्ति की पूजा नहीं करते हैं। मूर्तिमान सर्वशक्ति सम्पन्न परमेश्वर की पूजा उसकी प्रसन्नता के लिये करते हैं। उनमें अटित घटना शक्ति है। वैदिक प्रमाण है “यः पृथिव्यां तिष्ठन्त्यः पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्।” “भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः” ‘जन्माद्यस्य यतः’।

प्रश्न : पत्थर मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करने पर नस नाड़ी का परिज्ञान होता है क्या

उत्तर : प्राण सूक्ष्म तथा स्थूल दो तरह के होते हैं। योगसाधना में योगी सूक्ष्म शक्ति सम्पन्न होता है। वृक्ष वनस्पति में सूक्ष्म प्राण रहते हैं। मूर्ति में नस नाड़ी के बिना ही सूक्ष्म प्राण का संचार होता है।

प्रश्न : सर्वव्यापक ईश्वर को एक संकुचित स्थान यानी मन्दिर में पूजा करना उचित है क्या

उत्तर : ईश्वर भक्तों के कारण पांच रूपों में विराजते हैं : पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, एवं अर्चा।

पर : वासुदेव वैकुण्ठ में श्री भू एवं नीला देवियों के साथ विराजते हैं। ‘वैकुण्ठे तु परेलोके श्रिया सार्धं जगत्पतिः। उभाभ्यां भूमि नीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः।’

व्यूह : सृष्टि पालन एवं संहार के लिये अपने छः गुणों को दो दो गुण के संयोग से व्यूह रूप में संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूप में वासुदेव के साथ चतुर्व्यूह संज्ञा से विराजते हैं।

विभव : राम कृष्ण नरसिंहादि अवतार के रूप में।

अन्तर्यामी : ‘यः आत्मानमन्तरो यमयति अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्.....जगतो ये हृदि स्थितः’। शुभ एवं अशुभ का भान जीव को उसके हृदय में विराजकर कराते रहते हैं।

अर्चा : चेतनों के कल्याण हेतु उसके पूर्व के पाप को विसारते हुए निर्हेतुक कृपा से देश समय एवं पात्रता का विचार त्याग कर भगवान अर्चा रूप में मन्दिर में विराजते हैं। जैसे गाय के सर्वत्र शरीर से दूध आकर उसके थन में उपलब्ध होता है उसीतरह सर्वव्यापक भगवान भी मन्दिर में विराजते हैं। मात्र संकुचित विचार वाले ही उन्हें नहीं पहचान पाते। अर्चा रूप दो तरह के हैं : स्वयं व्यक्त तथा निर्मित। रंगनाथ वेंकटेश जगन्नाथ शालग्राम बद्रीनारायण स्वयं व्यक्त हैं।

पांचों भेद में अर्चा ही सर्वसुलभ हैं बाकी के लिये ध्यान पूजन असंभव जैसा है।

इस कार्य में वृन्दावन के श्री सुदर्शन जी के शिष्य श्री गोविन्द नारायण जी भी थे। आर्यसमाजियों को उन्हीं की पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश से वे समुचित उत्तर देने में निपुण थे। श्रीस्वामी जी एवं श्री गोविन्द नारायण की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए विपक्ष लुप्त हो गये। क्षेत्रीय लोगों की श्रीवैष्णव धारणा दृढ़ से दृढ़तर होती गयी।

श्री स्वामी जी महाराज का योगाभ्यास

वृन्दावन से दक्षिण यमुना नदी के पश्चिम किनारे पर भतरौढ़ विहारी जी का मन्दिर है। भागवत के 10 स्कंध के 23 वें अध्याय में ऐसी कथा है कि भूखे भगवान कृष्ण को यज्ञ में लगे हुए मथुरा के ब्राह्मणों की पत्नियों ने भात खिलाकर तृप्त किया था। यही स्थान भतरौढ़ विहारी जी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। श्री राजेन्द्रसूरि जी महाराज ने इसी स्थान पर नृसिंह मंत्र का योगानुष्ठान किया था।

इस मानव शरीर की रीढ़ गुदामार्ग से चलकर गर्दन होते हुए माथे में मिल जाती है। यह शरीर मिट्टी जल अग्नि वायु एवं आकाश के अनोखे संयोग से बना है। इसमें सात रस होते हैं जिसमें वीर्य शुक्र प्रधान हैं। रसों के स्थान को लोम चर्म रूधिर मांस हड्डी मज्जा एवं मेद कहते हैं। साढ़े सात लाख नाड़ियों से बने इस शरीर में चौदह प्रधान नाड़ी हैं जिसमें भी मुख्य इडा पिंगला तथा सुषुम्ना हैं जो रीढ़ की हड्डी से लिपटे रहती हैं। इडा पिंगला बायीं तथा दायीं ओर से लिपटी रहती हैं तथा सुषुम्ना बीच में रहती हैं। योगी लोग इन्हीं नाड़ियों के माध्यम से साधना परायण होते हैं। रीढ़ की हड्डी के नीचे से ऊपर मस्तक तक सात चक्र होते हैं जो कमलदल के समान प्रस्फुटित रहते हैं तथा सभी चक्रों पर भगवान लक्ष्मी जी के साथ सदा विराजते रहते हैं।

सबसे नीचे मूलाधार पर चार दल कमल है। यह धथुरे के फूल की तरह सदा खिला रहता है। सुषुम्ना का मुख मूलाधार पर कुंडलिनी से ढकी रहती है जो शंख के समान कई घुमावदार ऐंठन से युक्त रहती है। उसके ऊपर स्वाधिष्ठान पर सिंदूर के रंग का छः दल कमल है। नाभि पर मणिपूरक है जो नीले रंग के दस दल कमल है। हृदय स्थान को अनाहत कहते हैं। यहाँ पर बारह दल कमल है जो दूधहरिया फूल की तरह लाल है और कल्पवृक्ष की तरह सकल कामना की पूर्ति इस पर स्थित लक्ष्मी नारायण भगवान के ध्यान से होती है। कण्ठ में सोलह दल कमल है जो आकाश मंडल की तरह चांदनी के प्रकाश से प्रकाशित रहती है। भगवान यहाँ श्वेत वस्त्र में विराजते हैं। दोनों भौहों के बीच आज्ञा चक्र है जो श्वेत रंग के दो दल वाला कमल है जिसके एक दल पर भगवान तथा दूसरे दल पर लक्ष्मी विराजती रहती है। यह स्थान प्रणव ॐ का है जो मोक्षदायक है। भुवोर्मध्ये प्राणभावेश सम्यक् सत् परं पुरुषमुपैति दिव्यम्। गीता 8।10। इसके ऊपर मस्तक के शीर्ष में ब्रह्माण्ड है जो सहस्र दल कमल है जहाँ भगवान सदा लक्ष्मी के साथ विराजते हैं।

साधक को आवश्यक है कि हर स्थान पर कम से कम पांच मिनट लक्ष्मी नारायण भगवान का ध्यान करते हुए आधे घंटे में मूलाधार के चतुर्दल से सहस्रार तक के सहस्रदल तक जाये। इससे मन एवं प्राण का ऐसा अवरोध नियंत्रण होता है जिसका आनन्द अकथनीय है।

श्री स्वामी जी महाराज की तीर्थयात्रा

देहधारियों के लिये तीर्थ यात्रा दो प्रकार की है। एक तो पाप नाश के लिये कामना से की जाती है। दूसरी भगवत् प्रेम से की जाती है। श्रीवैष्णव संत की यात्रा लोक हित में होती है। शुद्ध श्रीवैष्णव का चरणोदक सभी तीर्थों से श्रेष्ठ होता है। जिस लता वृक्षादिक को वे स्पर्श कर देते हैं उसका कल्याण हो जाता है। तीनों लोक में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ स्थल प्रसिद्ध हैं। तीर्थ से पाप कटता है परन्तु वह किसी को अपने समान पवित्र नहीं बना सकता है। सन्त में ऐसा गुण है कि अपनी संगति से पापी को भी संत बना देते हैं। परम श्रीवैष्णव संत श्री यामुनाचार्य स्वामी पैदल ही तीर्थ यात्रा करते थे। एक बार उन्होंने एक हलवाहे को हल के फाल से लगी मिट्टी खाते देखा। पूछने पर उस हलवाहे ने बताया कि मिट्टी को मिट्टी में मिला रहा हूँ। उस आदमी ने अपना भोजन किसी भूखे को दे दिया था तथा अपनी भूख हल की मिट्टी से मिटा रहा था। श्री यामुनाचार्य ने उसे अपना बना लिया तथा वह रामनेर स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्रीरामानुज स्वामी जी का तीथाटन तथा दिग्विजय यात्रा दोनों साथ होती थी। भगवान के भक्त के शरीर में ही तीर्थ बसते हैं। श्री राजेन्द्रसूरि स्वामी जी लोकसंग्रह के लिये ही तथा तीर्थों को पवित्र करने के लिये यात्रा करते थे। सन् 1956 ई में उनकी दूसरी जगदीश यात्रा यानी जगन्नाथपुरी की यात्रा हुई। वे सदा पैदल ही चलते थे। साथ बहुत बड़ी जमात थी। पुरी में इनका पड़ाव महंथ श्रीगोपालाचार्य के बगीचा में पड़ा। अन्य

भक्त पुरी में यत्र तत्र टिक गये। पुरी तरेत के श्रीवैष्णवों से भर गया। जहाँ देखिये तरेत के लोग दिखते थे। रथ यात्रा में श्रीसूरि स्वामी जी सफेद कटिवस्त्र तथा चादर में भगवान के रथ की दायाँ ओर खड़े थे। दूसरी तरफ पुरी के अन्य महंथ विभिन्न वस्त्रों से सुसज्जित खड़े थे परन्तु सबों की दृष्टि श्री स्वामी जी की ओर ही आकर्षित थी। सब श्रीस्वामी जी को देख रहे थे परन्तु वे अपलक रथारूढ़ भगवान को देख रहे थे। मानस की पंक्तियाँ चरितार्थ हो रही थीं : “अवनि आंखतर आव न कोई” “वह शोभा समाज सुख कहत न बने खगेश। मानस उ का 12” उस वर्ष का वर्षा कालीन चातुर्मास पुरी में ही बीता। सभी महंथ श्री स्वामी जी के कायल थे कि एक त्यागी जिसके पास दूसरे दिन का अन्न नहीं रहता है श्रीवैष्णवों की इतनी बड़ी जमात की सेवा कर रहे हैं। दूसरे वर्ष का चातुर्मास दक्षिण भारत के सभी दिव्य देशों की यात्रा में बीती। तीसरे साल का चातुर्मास हैदराबाद में बीता। चौथे साल का चातुर्मास बम्बई के माटूंगा में बीता। यहाँ जो स्वामी जी की मंडली की सेवा करना चाहते थे उन्हें पन्द्रह दिन प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। धनाढ्यों का तौता लगा रहता था। बहुत धनराशि चरणों पर चढ़े। जमात के लोगों में वह राशि बांट दी गयी यह कहते हुए कि जिसको जहाँ तीर्थ यात्रा करनी है जाये धनराशि उपलब्ध है। दो हजार रुपये श्रीरंगजी मन्दिर वृन्दावन की सेवा में भेज दी गयी। पांचवा चातुर्मास द्वारिका नारायण सरोवर तथा प्रभास क्षेत्र की यात्रा में बीती। छठे चातुर्मास में पुष्कर में पड़ाव पड़ा। वहाँ से विन्दु सरोवर होते हुए वृन्दावन धाम वापस आ गये। उस समय वहाँ श्रीरंगाचार्य यानी बालक स्वामी श्रीगोवर्धन पीठ के पीठाधीश्वर थे और आज भी वही हैं। वृन्दावन में सभी मन्दिरों में जाकर आपने भागवतों की सेवा की। श्रीरंगजी मन्दिर में विशेष आराधनोत्सव हुआ। वस्त्र रुपये आदि से सभी भक्तों की विदाई हुई। वरांव के राजा श्री स्वामी जी की तीर्थ यात्रा का वृत्तान्त सुनने स्वयं वृन्दावन आये। ये श्रीरंग जी मन्दिर के एक पंच भी थे। सातवें वर्ष यहाँ से श्रीस्वामी जी दर्शन देने पुनः तरेत आ गये।

तरेत से परिस्थितिवश श्रीस्वामी जी का मन उचट गया। वे नासिक तीर्थ के लिये प्रस्थान कर गये तथा अपने नियम का पालन करते वहाँ पहुँच गये। जब श्रीसीता जी आश्रम को सूनी कर लंका चले गये थे तब उनकी खोज में भगवान राम ने गोदावरी से सीता जी के बारे में पूछा था परन्तु गोदावरी को चुप देख उन्होंने पापिनी बनने का शाप दे दिया। गोदावरी का जल रुधिरमय हो गया। पुनः क्षमा मांगने पर भगवान ने शवरी के पादप्रक्षालन से पवित्र होने का वरदान दिया। श्रीस्वामी जी के नासिक पहुँचते ही उनके गुरुभाई रीवां के महंथ श्री रामप्रपन्नाचार्य भी चातुर्मास मनाने नासिक आ गये। एक दिन एकान्त देख उन्होंने श्रीस्वामी जी से पूछा कि आप भगवान के परतंत्र हैं कि स्वतंत्र। उत्तर मिला स्वरूप ही परतंत्र है। पुनः प्रश्न हुआ कि आपका शरीर सम्बन्धी वस्तु भगवान भागवत या श्री रंग देशिक ही है या आपका। उत्तर मिला भगवान भक्त एवं श्रीरंग देशिक का। पुनः प्रश्न हुआ तब आपने तरेत किसी स्वतंत्र व्यक्ति को कैसे दे दिया। श्रीस्वामी जी निरुत्तर हो गये। श्री रामप्रपन्नाचार्य ने गलती में सुधार करने पर बल दिया। इसके बाद उज्जैन की तीर्थ यात्रा हुई परन्तु वहाँ प्रस्थान के पूर्व नासिक स्थान का दायित्व अपने शिष्य श्रीवासुदेवाचार्य को दे दी गयी। उज्जैन प्रवास में रीवा महंथ के अतिरिक्त रामटेकरी के महंथ श्रीजगन्नाथाचार्य की मंडली भी थी। श्रीजगन्नाथाचार्य के अनुरोध पर एक दिन श्रीस्वामी जी ने सांगोपांग शरणागति विधि का वर्णन किया जिसका सार है।

“तापः पुण्ड्रं तथा नाम मंत्र यागश्च पञ्चमः। अमी हि पंच संस्काराः परमैकान्त्य हेतवः।”

शरणागति विधि का विभिन्न ग्रंथों में भिन्न भिन्न तरह से वर्णन मिलता है। कहीं पांचो विधि को एक ही साथ परंतु कहीं इसे पांच बार भिन्न भिन्न काल में करने को कहा है। नीचे पदमोत्तर खण्ड की संक्षिप्त विधि

का वर्णन प्रस्तुत है। इस पर विशेष वर्णन “पांचरात्र” “वृहद् ब्रह्म संहिता” “पराशर उत्तर खण्ड” तथा “वृद्ध हारीत” में है।

विधि 1 : स्वर्ण चांदी ताम्बे या कांशे की धातु से बने सुदर्शन चक्र एवं शंख का पंचामृत से स्नान कराके भगवान की सन्निधि में उसका षोडसोपचार पूजन कर लेना चाहिए। एक बार प्रतिष्ठा कर लेने पर पुनः पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं है।

विधि 2 : स्वगृहोक्त या पांचरात्र विधि से कलश एवं अग्नि की स्थापना कर लेनी चाहिए।

विधि 3: गाय के दूध में बने खीर से या गाय के घी से अग्नि में एक हजार बार या एक सौ आठ बार या कम से कम बीस बार मूल मंत्र या विष्णुमंत्र या पुरुष सूक्त या भगवान के अन्य षडाक्षर मंत्र से अग्नि में हवन तर्पण और मार्जन करे। (षडाक्षर मंत्र “ॐ विष्णवे नमः”)

विधि 4 : शरणार्थी को भगवान के सन्मुख या पूर्वाभिमुख कुशासन पर बैठाकर तीर्थ पान करावे तथा हाथ में नारियल या सुपारी देकर कंकण बांधे तथा माथे पर मूल मंत्र से तीन बार जल छिड़के।

विधि 5: वेदी की अग्नि में सुदर्शन एवं शंख को तप्त करे तथा एक सौ आठ बार मूल मंत्र का जप करे तथा स्वयं हाथ जोड़कर तथा शरणार्थी को भी हाथ जोड़वाकर सुदर्शन मंत्र “सुदर्शन महाज्वाला कोटि सूर्य सम प्रभ। अज्ञानान्धस्य मे देव विष्णु मार्ग प्रदर्शय।” का उच्चारण कराते हुए दांये बाहुमूल में सुदर्शन से अंकन करे। इसके बाद तप्त शंख से बायें बाहुमूल में “पाञ्चजन्यं महाशुभ्रं शशि कोटि निभ प्रभम्। शरणार्थी भवेत्सद्यः श्रीमत्पाद युगार्चनात्।” मंत्र का उच्चारण कराते हुए अंकन करे।

विधि 6 : दोनों दिव्य आयुधों का स्नान कराके पूजन करे तथा पूर्व स्थापित कलश जल से शरणार्थी का अभिषेक करावे तथा स्वयं आचमन करे।

विधि 7: भगवान के द्वादश नामों से शरणार्थी को द्वादश तिलक लगावे।

विधि 8: भगवान के किसी नाम से शरणार्थी का नामकरण करे।

विधि 9: आचार्य शिष्य को समस्त भगन्नामों का या मूल द्वय तथा चरम मंत्रों का तात्पर्य समझाते हुए नियम पालन की विधि का वर्णन सुनाये। इसके बाद शिष्य भगवान आचार्य तथा भागवतों को साष्टांग प्रणाम करे।

शरणागति के छः अंग हैं। “ अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं यथा।। आत्म निक्षेप कार्पण्यं षड्विधाः शरणागति।।”

उज्जैन यात्रा के अन्तराल रसोईया एवं पुजारी किसी कारणवश साथ छोड़ कर चले गये थे। स्वामी जी स्वयं भगवान की सेवा करते थे। इसतरह से जावरा रतलाम मन्दसूर आदि होते हुए यात्रामंडली रीवा पहुँची। वहाँ से पुनः तरेत पधार गये। इसबार रीवां महंथ चातुर्मास व्यतीत करने तरेत आ गये तथा साथ में वृन्दावन श्रीरंगजी मन्दिर के पंचनामा का कागज भी लेते आये। निकटवर्ती प्रमुख भक्तों की उपस्थिति में इसी पंचनामा की तरह तरेत में भी पंचनामा का कागज बना कर उसमें तरेतपाली बैदराबाद पटना महमदपुर आदि के जगहों के जमीन का समावेश करते हुए श्रीस्वामी जी महाराज से नौबतपुर में रजिस्ट्री करा दी गयी। सर्व प्रथम पंचनामा के पंच थे चेसी ग्रामवासी श्रीरामखेलावन शर्माजी करजा ग्रामवासी श्री रघुवीर प्रसाद जी अमरपुरा के श्री गोवर्धन लाल जी तरेत के दिनेश्वर उपध्याय जी पाली के श्री कैलाश पति शर्मा जी महमदपुर के श्री वासुदेव शर्मा जी तथा पं श्री दामोदराचार्य। सबों के प्रधान श्री रामखेलावन शर्मा जी चुने गये थे। सेवइत पुजारी में श्री वासुदेव ब्रह्मचारी जी को रखा गया था। खेती आदि व्यवहारिक काम के

लिये श्री चतुर्भुज जी एवं रामप्रपन्न नियुक्त किये गये थे जो सेवा कैकर्य भाव से सब काम करते थे। कुछ काला पश्चात् इन्हीं दोनों मूर्तियों को महमदपुर दे दिया गया था।

यज्ञ प्रकरण

महाभारत के पांच रत्न हैं: गीता विष्णुसहस्रनाम स्तवराज अनुस्मृति एवं गजेन्द्रमोक्ष। यज्ञ का उल्लेख सभी में पाया जाता है। भोक्तारं यज्ञ तपसां.....गीता 5।29। अहं कतुरहं यज्ञः.....गी 9।16। यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः.....। गी 3।9। यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि.....। गी 10।25।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम्। गी 9।15। यहाँ पर एकत्वेन का अर्थ सखाभाव से भगवान से एकता बनाये रखने का तथा पृथक्त्वेन का अर्थ दास भाव से भगवान से पृथक् रहते हुए प्रेम तथा अनेकों प्रकार के वात्सल्य श्रृंगार आदि की भावना से ओतप्रोत ज्ञान यज्ञ का तात्पर्य बताया गया है। यह सर्वथा अनोखा एवं युक्तिसंगत अर्थ है।

इसीतरह से “यज्ञ इज्यो महेज्यश्च.....वि स 61। यज्ञो यज्ञ पतिर्यज्वा.....। वि स 117। यज्ञ भृदज्ञ। 118 से स्पष्ट है कि भगवान के नाम का ही पर्याय यज्ञ है। भगवत् लीलागुणगान नामस्मरण पूजा आदि यज्ञ के स्वरूप हैं।

यज्ञों का नाम एवं अर्थ

नरमेध गोमेध अश्वमेध वाजिमेध आदि यज्ञों के विभिन्न नाम हैं। भूलवश हिंसात्मक वलि को यज्ञ का अंग समझ लिया गया है। आत्मा का परमात्मा से संगत कराना ही नरमेध का अर्थ है। जैसे जयन्त विभीषण सुग्रीव की शरणागति। “गो गोचर जहँ लगि मन जाई। अरण्य 14।2” यानी इन्द्रियों एवं मन को परमात्मा में लगाना ही गोमेध है। “इन्द्रियाणि हयान्याहुः.....।” आहु शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीषून् मन इन्द्रियेशम्। भागवत 7।15।41 यानी इन्द्रियां घोड़े हैं और उनको परमात्मा के साथ लगा देना ही अश्वमेध है। वाजिमेध में वाजि से शुक का निरोध है। जैसे हनुमान ने ब्रह्मचारी का स्वरूप अपनाया।

यज्ञपूर्णतया अहिंसात्मक है। “परमधर्म श्रुतिविदित अहिंसा। उ का 120।11” अम्बरीष को स्वार्थी पुरोहितों ने यज्ञ में हिंसात्मक वलि कराना चाहा था। इन्द्र ने पशु चुरा लिया। पुरोहितों ने शाप का भय दिखाकर अम्बरीष से हजारगौयें के बदले एक शुनःशेष नामक ब्राह्मण को वलि देने के लिये खरीदवाया। शुनःशेष की प्रार्थना से द्रवित होकर विश्वामित्र ने उसे विष्णुमंत्र से रक्षा करने की विधि बतायी। विष्णुमंत्र के स्मरण से भगवान यज्ञ में प्रकट हो गये एवं शुनःशेष की जान बची तथा राजा अम्बरीष का मन पूरा हुआ।

सबसे सुलभ विष्णु यज्ञ है। सभी देवों के देव विष्णु हैं। वृक्ष के जड़ को सींचने से संपूर्ण वृक्ष हराभरा रहता है। उसीतरह विष्णु पूजा से सभी देव प्रसन्न रहते हैं। भगवान की पूजा “पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति” गी 9।26 से सुलभ होती है। नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे। तर्पयन्त्यंग मां विश्वमेते पृथक्तण्डुलान्। भागवत 10।81।9। भगवान सुदामा जी से कहते हैं कि मित्र आपका एक मुट्ठी चूड़ा केवल मुझे ही नहीं संपूर्ण विश्व को तृप्त करने वाली है। सुदामा जी द्वारा की गई लौटते हुए भगवान की उदारता का स्मरण कर भावविभोर रहते हैं। एक मुट्ठी चूड़ा की उन्होंने कितनी प्रशंसा की। इसी तरह से विदुर की पत्नी से केला छिलका खाकर भगवान कितने प्रसन्न हुए थे। ये सब ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता बताते हैं। अर्जुन ने “कार्पण्य दोषो पहतः स्वभावःशिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। गी 2।7। भगवान ने कहा “मन्मनाभव मदभक्तो.....। गी 9।34।” “सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो.....। गी 18।56।” “सर्वगुह्यतमं भूयः श्रुणु मे परमं वचः.....गी 18।64।” “मन्मनाभव मदभक्तो.....प्रियोऽसि मे। गी 18।64।” “सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। गी 18।66।” अर्जुन तुम सोचो मत। परम रहस्य यह है कि भगवान कृष्ण ही अपने भक्तों एवं सभी यज्ञों के एकमात्र सिद्धोपाय हैं।

मूर्ति पूजा अनादिकालिक

इस अध्याय का प्रारम्भ एक प्रश्न से हुआ है कि जीविका निर्वाह के लिये लोलुप लोगों ने मूर्ति पूजा चलायी है तथा यह आधुनिक तरीका है। इसी प्रश्न के उत्तर में गीता भागवत तथा रामायण के अनेकों उदाहरण से यह प्रमाणित किया गया है कि मूर्तिपूजा अनादिकालिक है।

जीव जगत एवं ईश्वर सर्वदा रहते हैं। प्रलयकाल में भगवान समूची सृष्टि को समेट कर अपने पेट में रखलेते हैं। सबको जड़वत अपने पेट में देख भगवान द्रवित हो उठते हैं तथा पुनः सृष्टि का प्रारम्भ करते हैं। लक्ष्य है कि सृष्टि से पुराने जीव का शायद कल्याण हो जाये। वे अपने को भगवान की भक्ति में लगाकर कल्याण प्राप्त कर सकते हैं। कल्याण का तात्पर्य है त्रिपादविभूति में मुक्त जीव की श्रेणी में पहुँचना जो भगवत् कृपा एवं उनकी भक्ति के सम्भव नहीं है। वैकुण्ठ के मुक्त जीव को सृष्टि प्रलय के चक्कर से छुटकारा मिल जाता है और अगर इस जगत में वे संत बनकर आते हैं तो ईश्वर के आदेश से विशेष प्रयोजन से निम्न जीवों को कल्याण हेतु सद्मार्ग पर चलकर भगवान से जुड़ने का उपाय बताते हैं। भगवान सदा पाँच रूप में वर्तमान रहते हैं: “पर” रूप में वैकुण्ठ में, “व्यूह” रूप में संघर्षादि रूप में, “वैभव” रूप में मीनावतारनरसिंहावतार... राम एवं कृष्ण के रूप में, “अर्न्त्यामी” रूप में सभी जीव एवं सृष्टि में अदृश्य रूप में, तथा “अर्चा” रूप में श्रीरंगम तिरुमला जगन्नाथपुरी शालग्राम आदिपूजा हेतु विग्रह स्वरूप में। मन्दिरों के अर्चा विग्रह भी स्वयंव्यक्त एवं मनुष्य निर्मित हैं। स्वयंव्यक्त में श्रीरंगम तिरुमला जगन्नाथपुरी तथा शालग्राम भगवान की मूर्तियां हैं जिसका किसी मनुष्य द्वारा न तो निर्माण हुआ है और न किसी ने उनकी स्थापना की है। पूर्ण मन्दिर तथा विमान के साथ ये स्वयं प्रकट होकर किसी न किसी भक्त के माध्यम से वर्तमान मन्दिरों में विराजित हो पूजा स्वीकार करते हैं। मूर्तिपूजा भगवान राम ने भी की है। राज्याभिषेक के समय वशिष्ठ जी के बताने पर भगवान राम ने अपने मन्दिर में नारायण मूर्ति की पूजा की है तथा इसका संदर्भ वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड सर्ग 6 में दे देखा जा सकता है। माता कौशल्या नित्य अर्चाविग्रह की सेवा करती थीं “ममकुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु किन्ह पकवाना।” पद्मपुराण उत्तर खंड अध्याय 271 के श्लोक 64 “श्रीरंगशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकु कुल दैवतम्” से यह स्पष्ट है कि राजा ईक्ष्वाकु ने भगवान रंगनाथ को प्राप्त किया था जिनकी पूजा भगवान राम ने भी की है तथा अपने कुलदेवता को परमभक्त विभीषण को दे दिया जो आज संयोगवश लंका न जाकर श्रीरंगम में विराजमान हैं वाल्मीकी रामायण लंका काण्ड सर्ग 131 “लब्ध्वा कुलधनं राजा लंका प्रायाद्विभीषणः।” इसीतरह से भागवत में भगवान कपिल ने अपनी माँ देवहूति को स्कंध 3 अध्याय 29 श्लोक 25 “अर्चादावर्च येत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत्। यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम्” यानी अर्चामूर्ति की पूजा करते हुए अपने हृदय में हमें विराजमान होने का अनुभव करने तक सिद्ध हो जाये” करने का उपदेश दिया है। इसीतरह से ध्रुव को नारद जी ने अर्चाविग्रह की पूजा में मनोयोग से लगजाने को कहा है। प्रह्लाद जी का “श्रवणं कीर्तनं ...अर्च नं आत्मनिवेदनम्” प्रबल प्रमाण है अर्चापूजा का। एकादश स्कंध 11।2।47 “अर्चयामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।” में राजा निमि को नौ योगेश्वरों ने भगवान की मूर्तिपूजा का मार्ग बताया है। गीता 9।26 “पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।” भगवान ने अपने भक्तों को अर्चाविग्रह की पूजा का सुगम मार्ग बताया है। इस तरह से अर्चाविग्रह पूजा को अनादिकालिक होने के अनेकों उदाहरण से यह अध्याय भरा हुआ है।

पुण्य और पाप का लक्षण

इस अध्याय का शुभारंभ एक प्रश्न से है जिसका भाव है कि सत्य के समान कोई पुण्य नहीं है तथा झूठ के समान कोई पाप नहीं है। इसका समाधान इस अध्याय में यह बताते हुए किया गया है कि भगवान की प्रसन्नता के उद्देश्य से किये गये कार्य पुण्य होते हैं चाहे वे स्वयं के लाभ के लिये किये गये हो या दूसरे की

भलाई हेतु। 18 उदाहरणों के सहारे इस अध्याय में समझाया गया है कि पुण्य भगवान की प्रसन्नता से मिलता है एवं सत्य एवं असत्य का झमेला सर्वदा लागू नहीं है। स्वार्थसिद्धि के लिये सत्य का पालन राजा दशरथ के लिये बन्धन का कारण हुआ। स्वर्गवासी हुए वैकुण्ठ नहीं मिला। जटायु जी ने रावण से दूसरे के उपकार हेतु युद्ध किया तथा मारे गये परन्तु उनकी सदगति जगप्रसिद्ध है। वसुदेव ने कंस से प्रतिज्ञा की थी कि देवकी के सभी संतान को वे कंस को दे देंगे। उन्होंने ऐसा नहीं किया। झूठे हुए परन्तु सदगति मोक्ष की प्राप्ति हुई। भगवान कृष्ण अपने ग्वाल सखा के सहारे चोरी झूठ का सहारा लेते ही रहते थे। आळवारों में प्रसिद्ध परकाल स्वामी भगवान एवं भक्तों को प्रसन्न रखने के लिये भोजन कराते थे तथा अपनी सभी सम्पत्ति लगा देने के बाद डकैती करके भी इस काम को चलाते रहे।

श्रीरंगम की एक कथा है कि एक पहाड़ी पर शिवलिंग पर चढ़ाया हुआ दूध एक गड्ढे में जमा हो जाता था। एक श्रीवैष्णव नित्य उस दूध को लाते थे तथा खीर बनाकर भगवान को भोग लगाकर भक्तों को भोजन कराते थे। यह पाप नहीं हुआ क्योंकि वे इस कार्य को भगवान एवं भागवत की प्रसन्नता के लिये करते थे।

सत्संग क्यों ?

मानस भागवत एवं गीता के अतिरिक्त अन्य सदग्रंथों के प्रकरण से यह स्पष्ट किया गया है कि जीव की सदगति सत्संग से ही मिलती है। “सन्तसंग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ।” मानस उ 33। “दैवी सम्पदविमोक्षाय निबन्धायासुरी मत्ता। गीता 16। 5।” गरुड़ जी ने काकभुसुन्डी जी से कहा है “सत्संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दण्ड भर एको बारा।” उ का 122। 3। इसी तरह से लंकिनी ने हनुमानजी की संगति प्राप्त करते हुए सत्संगति की प्रशंसा की। “सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग। तुलै न ताही सकल मिली जो सुख लव सत्संग।” सु का 4। भगवान के भक्त ही संत हैं एवं उनके साथ रहना सत्संगति है। परन्तु यह भगवान के कृपा के अभाव में नहीं मिलती “राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।” बा का 2। 4। नारद जी को संतों की संगति से ही देवर्षि के सारे गुण प्राप्त हो गये। सज्जनों के संयोग से ही जीव को सांसारिक विषयों से अरुचि हो जाती है। नारायण मंत्र से मन पवित्र होकर पूर्व के कर्म का नाश होता है तथा वह सुप्पना से शरीर छोड़कर अर्चि रादि मार्ग से विरजा नदी पार कर प्राकृत शरीर छोड़कर चतुर्भुजी बनकर वैकुण्ठ पहुंच जाता है। मार्ग में अमानव भगवान के संस्पर्श से दिव्यज्ञान मिलता है। अतिवाहिक विमान से वैकुण्ठ पहुंचाते हैं। “श्रीवैकुण्ठाय नमः” से वैकुण्ठ को नमन करता है। वहाँ सूरिगण दिव्यविमान से अन्तःपुर में ले जाते हैं। “श्रीवैकुण्ठ दिव्यविमानाय नमः” से नमन करते हुए शेष पर विराजमान भगवान तथा लक्ष्मी जी को प्रणाम करते हुए दर्शन करता है। भगवान से पूछने पर बताता है कि आपकी कृपा से शरणागति मिली है। भगवान प्रसन्न होकर लक्ष्मी जी को सुपुंद कर देते हैं। इस तरह से संत की संगति से जीव को सदगति मिलती है “सत्संगति संसृति कर अंता।” उ का 44। 3। श्री वाल्मीकि जी को भी संतों द्वारा ही ज्ञान मिला तथा वे परम भक्त संत हो गये।

इस अध्याय में गृहस्थों के लिये विना पिछुआ के धोती लुंगी पहनने को निषेध बताया गया है। नीला रंग भी धारण करने को मना किया गया। ये सब पुण्य को क्षीण करते हैं।

श्री स्वामी जी महाराज के शिष्य प्रशिष्य

तीस पृष्ठ के इस अध्याय के दो विभाग हैं। पहले में 18 संतों का उल्लेख है जो श्री परमहंस स्वामी जी के शिष्य थे। उनके श्री परमहंस स्वामी जी से सम्बन्ध तथा उनकी सेवा संलग्नता का सारगर्भित उल्लेख है। सबसे प्रारम्भ में श्री भागवताचार्य जी की सेवा का उल्लेख है। काञ्चीपुरम में वरदराज भगवान के मन्दिर के समीपस्थ स्थित आश्रम से आप विरक्त साधु के स्वरूप में श्रीवैष्णवों की सेवा किया करते थे। आपके पश्चात् दो अन्यविरक्त साधु सेवी का उल्लेख है जो शायद श्रीबालमुकुन्द स्वामी जी एवं श्रीसुदर्शन स्वामी जी के लिये

है। ये दोनों विरक्त श्री वासुदेवाचार्य स्वामीजी के शिष्य थे और इनका उल्लेख इस अध्याय के अंत में विस्तार से हुआ है।

‘को बड़ छोट कहत अपराधु’ चरितार्थ है परन्तु लेख के विस्तार भय से 17 एवं 18 क्रमांक पर श्री सीतारामाचार्य जी आळवार तिरुनगरी एवं महन्थ श्रीवासुदेवाचार्य जी तरेत स्मरणीय पूज्य हैं। श्रीसीताराम जी ताम्रपर्णी के किनारे आश्रम बनाकर श्रीवैष्णवों की सेवा किया करते थे। आप श्री परमहंस स्वामी जी की चरणपादुका स्थापित कर भरत जी जैसे भगवान राम की पादुका की नित्यपूजा किया करते थे उसी तरह से आप भी परमहंस स्वामी जी पादुका की पूजा किया करते थे। बाद में आपने यह आश्रम श्रीरंगदेशिक स्वामी जी वृन्दावन को दे दिया था। यह आश्रम आज भी आळवार तिरुनगरी में उत्तराधि मठ के नाम से प्रसिद्ध है तथा वयोवृद्ध श्रीवरदराज स्वामी जी वर्तमान में सेवापरायण हैं।

श्रीवासुदेवाचार्य स्वामी जी अतिसम्माननीय विरागी संत थे। आप नासिक के स्वामीजी के नाम से भी जाने जाते थे। आप कौडिन्य गोत्रीय थे तथा स्वभाव से सरल एवं गुरुसेवा परायण थे। स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य की स्वतंत्र जीवनी कविवर श्रीरामप्रसाद शर्मा जी ‘पुण्डरीक जी’ द्वारा प्रकाशित है परन्तु इस पुस्तक वाला भाग उत्कृष्ट कोटि का है तथा इसका अध्ययन स्वयं करने की आवश्यकता है। अध्याय के अंत में श्रीवासुदेवाचार्य जी के 17 शिष्यों का उल्लेख है जिसमें श्री विष्वक्सेनाचार्य जी तथा श्रीप्रसिद्ध नारायण शर्मा जी उत्कृष्ट कोटि के विद्वान माने जाते थे तथा श्रीवासुदेवाचार्य जी के प्रधान शिष्य थे। श्री विष्वक्सेनाचार्य विरक्त थे बचपन से भजन एवं गान विद्या में निपुण थे। दक्षिण भारत के कांचीपुरम में रहकर प्रतिवादाभयंकर के स्वामी अनन्ताचार्यादि से वेदान्त का गहन अध्ययन किये थे और वेदान्ती जी के नाम से प्रसिद्ध थे। संप्रदाय विरोधियों को शास्त्रार्थ में परास्त करने में आप परम प्रवीण थे। आपको कांचीपुरम का श्री भागवताचार्य वाला आश्रम का वृन्दावन श्रीरंगजी मंदिर से अधिकृत उत्तराधिकारी बनाया गया था परन्तु आप इन झगड़ों से दूर ही रहे तथा कम ही अवस्था में प्राकृत शरीर त्याग कर वैकुण्ठवासी हो गये। इसी आश्रम का संचालन श्रीबालमुकुन्दाचार्य तथा श्रीसुदर्शनाचार्य ने बहुत ही सुन्दर ढंग से श्रीवैष्णवों की सेवा के लिये किया। आप दोनों में ऐसा सौहार्द था जैसे भगवान राम और भाई लक्ष्मण में तथा भाई भरत एवं शत्रुघ्न में था।

4। साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर स्त्री एवं मंत्र कहां एवं कब (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी द्वितीय खण्ड) ।

पुस्तक का सार 60 पृष्ठीय तृतीय संस्करण पर आधारित है जो श्री पराङ्कुश प्रेस हुलासगंज से ई सन् 2005 का प्रकाशन है। इस पुस्तक के अध्याय हैं : “स्त्री एवं मंत्र” “वैकुण्ठ स्तव” “लक्ष्मीजी को भगवान से दाहिने या बायें” “परगत शरणागति” ।

स्त्री एवं मंत्र

दूसरी बार यात्रा से लौटने पर परमहंस स्वामी जी तरेत में विराज रहे थे। एक दिन अमरूद बगीचा में सत्संग चल रहा था। खजूरी निवासी पंडित बालमुकुन्द शर्मा ने पूछा “पतिरेको गुरुः स्त्रीनाम्” यानी स्त्री के लिये उसका पति ही गुरु है तब उनलोगों को मंत्र की दीक्षा क्यों दी जाती है। परमहंस स्वामी जी ने सम्यक उत्तर देते हुए यह बताया कि मंत्र की आवश्यकता सभी कुमारी या सौभाग्यवती या विधवा को है एवं उनकी दीक्षा उचित है। उदाहरण स्वरूप पति पत्नी साथ साथ भगवत् उपासना करते हैं तथा गुरु मंत्र का जाप करते हैं। द्रोण वसु तथा धरा जो नन्द यशोदा बनकर आये। मनु शतरूपा दशरथ कौसल्या बनकर आये। ये सभी भगवत् आराधना में प्रवीण थे। ब्रज की गोपियाँ, पार्वती की तपस्या, सीता जी का गौरी पूजन, रुक्मिणी का देवी

पूजन, कालिन्दी का विष्णु रूपी कृष्ण को पति बनाने की साधना ये सब ध्यातव्य उदाहरण हैं। पद्मपुराण की कथा है कि कैलास पर्वत पर शिव पार्वती तुलसी लगाकर भगवदपूजन करते थे। एक बार पार्वती जी को विष्णुसहस्रनाम के पाठ में विलम्ब होने पर शिवजी ने बताया ‘राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।’ “सहस्र नाम सम मुनि शिववानी। जपी जेई पिय संग भवानी। मानस वाल काण्ड 18।3।” भगवान राम सीता जी के साथ अभिषेक की पूर्व संध्या में साथ साथ नारायण की पूजा किये हैं “सह पत्न्या विशाल्याक्ष्या नारायणमुपागतम्। वाल्मीकि अयो 6।1।” देवहूति ने कर्दम मुनि से कहा कि जिस देह से भगवत्पाद सेवा नहीं हुई वह मृतक तुल्य है। “नेह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते। न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः।” भा 3।23।56।। गर्भवती के नियम बताये गये हैं कि गौ ब्राह्मण तथा भगवान अच्युत की पूजा करे। कयाधु को इन्द्र नहीं मार सके। उसने नारद जी की सेवा की। मथुरा के यज्ञरत ब्राह्मणों की पत्नियों ने भगवान की पूजा की। इसी तरह से विधवा के लिये भी विधान हैं। शवरी को भगवान ने कहा “मानउ एक भक्ति कर नाता। मानस अरण्य 34।2।”

गीता 9।32 में भगवान ने कहा है “मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य स्त्रियाः वैश्यः तथा शूद्राः ते अपि यान्ति परां गतिम्।” स्त्री तथा अन्य पाप योनि वाले मेरी शरण में कल्याण प्राप्त करते हैं। धर्म के दो विभाग हैं सामान्य तथा विशेष। विशेष में स्त्री पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त है। भगवद् आराधना विशेष धर्म है। विवाह के समय सप्तपदी तथा वायें भाग में पत्नी को बैठते समय पति प्रतिज्ञा करता है कि हम सभी श्रेष्ठ कर्मों में तुमको साथ रखेंगे। भगवत्सेवा से श्रेष्ठ कर्म और क्या हो सकता है। विवाह के समय वर विष्णु के रूप में तथा कन्या लक्ष्मी के रूप में रहती हैं। बालि एवं रावण ने पत्नी की नेक सलाह ठुकरा कर जीवन हानि कर बैठे। लक्ष्मी जी जयंत की तरह अन्य जीव को भी भगवान से क्षमा कराती हैं।

केरल की राजधानी में अनन्तभगवान का मन्दिर है जो पद्मनाभ स्वामी का मन्दिर कहा जाता है। यहाँ कौडिन्य मुनि के वंशज भगवान की आराधना करते हैं। कथा है कि सुमन्त की कन्या बचपन से ही अनन्त भगवान का व्रत करती थी। कौडिन्य मुनि से विवाह के बाद मुनि ने अनन्त सूत्र को आग में डाल दिया। सर्वनाश हुआ। पत्नी के फटकारने पर मुनि ने अनन्त की आराधना कर कल्याणभाजन बने। तुलसीदास जी भी पत्नी की डांट पर ही भगवतानुरागी हुए।

पुस्तक के पृष्ठ 22 से 32 तक विभिन्न स्मृतियों के 46 उद्धरण द्रष्टव्य हैं। विस्तार भय से यहाँ कुछ ही दिये जा रहे हैं। पराशर स्मृति 1।5।6 “उद्वाहसमये स्त्रीणां पुनांश्चैवोपनयने । चक्रादिधारणं प्रोक्तं मन्त्रैः पञ्चायुधन्तथा ।” यानी स्त्रियों को विवाह संस्कार और पुरुषों को उपनयन के पूर्व भगवद्भक्त दीक्षा गुरु से पंचसंस्कार पूर्वक दीक्षित होना चाहिये। हारीत स्मृति से “आश्रमाणां चतुर्णाञ्च स्त्रीणां च श्रुतिचोदनात्।” चारों आश्रम के स्त्री तथा पुरुष को विधिपूर्वक शंखचक्रांकित होकर दीक्षित होने की आज्ञा है। “नारि वा पुरुषो वापि प्रपद्ये शरणं हरि ४।”

परमहंस स्वामी जी ने उपसंहार में कहा कि “पतिरेको गुरुः स्त्रीनाम्” में गुरु शब्द पूजनीय के लिये प्रयुक्त हुआ है न कि दीक्षा गुरु के लिये। दीक्षा गुरु की नितान्त आवश्यकता है। यह काम कोई भी भगवदपरायण पति हो या भाई हो पिता हो या श्वसुर हो या गुरु हो कर सकता है। परमहंस स्वामी जी के सारगर्भित व्याख्यान से वालमुकुन्द शर्मा की आंखें खुल गयीं तथा श्रीचरणों पर नतमस्तक होकर उन्होंने क्षमा मांगी।

वैकुण्ठ स्तव

(सामान्यतया वैष्णव परम्परा में वैकुण्ठ स्तव नाम से दो रचना उपलब्ध है। एक श्री कुरेश स्वामी द्वारा रचित वैकुण्ठ स्तव जिसमें 101 श्लोक हैं। दूसरी श्री रामानुज स्वामी के परवर्ती किसी पूर्वाचार्य द्वारा रचित है जिसमें 10 श्लोक हैं। कुछ सुविज्ञ श्रीवैष्णवों की मान्यता है कि यह लघु रचना फुटकर श्लोकों का संग्रह है जो विभिन्न समय में विभिन्न आचार्य की श्रीसूक्ति हैं और इसी लघु 'वैकुण्ठ स्तव' का अर्थ इस पुस्तक के पृष्ठ 33 से 36 तक में स्वान्तः सुखाय द्रष्टव्य है।)

वैष्णवजन के नित्यानुसंधान में प्रयुक्त अतिप्रिय प्रथम दो श्लोक हैं।

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसि परे श्रीवैकुण्ठे परमरूचिरे हेम नगरे।

महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरे समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम् ।।1

हे भगवन् ! वह समय कब आयेगा जब प्रकृति मण्डल आवरण से परे अति विस्तृत विरजा नदी के पार आरंगहृद सरोवर से परे चित्रविचित्र मणियों से जटित परम मनोहर सुवर्णपुरी श्रीवैकुण्ठ महानगर में अत्यंत रमणीय सर्वोच्च स्थान श्रेष्ठमणियों से प्रकाशित रत्नमणि मंडप में सहस्र फणयुक्त शेष शय्या पर नित्यमुक्तों से सम्मिलित होकर सुख से बैठे हुए आपके दोनों चरणकमलों की परिचर्या में करूंगा।

महासिन्धोः नीरे विगतकलुषो दिव्यगुणको हरे सदगात्रोऽमानव परिसरेऽलंकृततनुः।

भवेयं संश्लाघ्योऽमरनिकर संमानित भवन् कदाहं संरुद्धो वरगरूडयाने समचरम् ।।2

हे हरे ! कब वह समय आवेगा जब मैं लीलाविभूति से छूटकर विरजा नदी के जल स्पर्श से सूक्ष्म प्रकृति एवं सूक्ष्म वासना रहित दिव्यगुण युक्त होकर आपके दिव्यविग्रह अमानव भगवान की सन्निधि में दिव्य वस्त्र एवं आभूषण से अलंकृत होकर नित्यमुक्तों से सम्मानित गरूडयान से आपके चरणों में पहुँचूंगा।

आगे के श्लोक 3 में कल्पवृक्षों से सुशोभित वैकुण्ठ दर्शन की अभिलाषा का उल्लेख है। श्लोक 4 एवं 5 में वैकुण्ठ में विराजने वाले श्रीदेवी भूमिदेवी एवं नीलादेवी के साथ शेषासन पर विराजित नित्यमुक्तों से सुसेवित स्वयंप्रकाशित आपकी सन्निधि के दर्शन की चाह है। श्लोक 6 में भगवान के दिव्यगुणों का तथा सामवेद का गान करते हुए आनन्द का भाजन बनन की मनसा का चित्रण है। श्लोक 8 में ब्रह्मदि से पूजित भगवान के नित्य नवीन चरण कमल को अपने मस्तक पर धारण करने की अभिलाषा है। श्लोक 9 में भगवान के भक्तों की सेवा के अवसर की प्राप्ति की चिरकामना की अभिव्यक्ति है। श्लोक 10 से 'भगवान के चरणों के प्रतिनिधि श्रीरामानुज का प्राप्त होना भगवान की कृपा का ही फल है' की कृतज्ञता का उद्घोष है।

न कामये ह्यत्र परत्र भोगे न चात्मभोगे प्रवणो भवेयम्।

विहाय सर्व हि विरोधिर्वर्ग त्वद्वासदास्यं सततं भजेयम् ।।9

न मे जगन्नाथ विना दयाया त्वदङ्घ्रि रामानुजपादपङ्कजम् ।

त्वयैव दत्तं करुणैकसिन्धो त्वमेवमेनं किल यां कुरुष्व ।।10

वैकुण्ठ स्तव अध्याय के उपसंहार में विभिन्न सन्निधियों के दर्शन के समय वैष्णव परंपरा में सम्यक् शरणागति भाव में लीन रहने का उल्लेख है। श्रीशठकोप स्वामी के दर्शन के समय उनके दर्शन से भगवान के चरणारविन्द की प्राप्ति के भाव में रहना है। श्रीरामानुज स्वामी के दर्शन के समय उनके दर्शन से श्री शठकोप स्वामी के चरणारविन्द की प्राप्ति के भाव में रहना है। श्रीवरवरमुनि स्वामी के दर्शन के समय उनके दर्शन से श्री रामानुज स्वामी के चरणारविन्द की प्राप्ति के भाव में रहना है। अपने स्वयं के गुरु के दर्शन के समय उनके दर्शन से श्रीवरवरमुनि स्वामी के चरणारविन्द की प्राप्ति के भाव में रहना है।

लक्ष्मीजी को भगवान से दाहिने या बायें

यह प्रश्न के रूप में देवकुली निवासी भक्तिसार जी ने एकबार परमहंस स्वामी जी से पूछा था। शास्त्रों में दोनों ओर रहने का प्रमाण है। भगवान भक्त के अधीन रहते हैं। देवता या मनुष्य की पत्नी प्रायः पति के बायें रहती हैं। “सीतासमारोपित वामभागम्” मानस अयोध्या का श्लो 2। “जनकवाम दिशि सोह सुनयना” वा का 323।2 आदि। कुल 46 उद्धरण से विभिन्न स्थितियों के स्वरूपों का वर्णन है। लक्ष्मी जी भगवान के दोनों ओर पायी जाती हैं। वैष्णव मन्दिरों में लक्ष्मी जी प्रायः अकेली रहने पर भगवान के दायें यानी दर्शनार्थी के बायें रहती हैं। इसीलिये यह विधान है कि दर्शनार्थी भक्त सामने से साष्टांग प्रणाम न कर अपनी बायें ओर से करे जिससे कि माता लक्ष्मी जी उसको स्वीकार करते हुए भगवान को समर्पित कर दें।

उद्धरण 34 बहुत महत्वपूर्ण है। यह वैष्णव संप्रदाय के एक जटिल प्रश्न का समाधान करता है। (विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त है कि जीव जगत एवं ईश्वर तीनों शाश्वत हैं। समस्त जीव एवं सम्पूर्ण जगत या सृष्टि ईश्वर के अंग प्रसाधन हैं। जीव मुक्त एवं बद्ध श्रेणी में रखे गये हैं। मुक्त जीव वैकुण्ठ में भगवान की सेवा में रहते हैं। बद्ध संसार जाल में जन्म मृत्यु के अधीन पड़ा रहता है।) अब प्रश्न है कि क्या लक्ष्मीजी भी जीव कोटि में हैं। यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि शेष जीव जीव कोटि में हैं परन्तु लक्ष्मी जी जीव कोटि से उत्कृष्ट विलक्षण ईश्वर कोटि में हैं। लक्ष्मी जी को भगवान अपने दायें वक्षस्थल पर रखते हैं। भगवान की पूजा की दो प्रचलित विधि हैं: पांचरात्र एवं वैखानस। पहला नारद जी ने दिया है तथा दूसरा ब्रह्मा जी का है। पांचरात्र संहिता में कहा है “दक्षिणे च महालक्ष्मीस्तस्य पाश्वे द्वयेऽपि च”। यानी भगवान के दाहिने महालक्ष्मी हैं तथा दोनों समीपस्थ बगल में भूदेवी एवं नीला देवी हैं।

शास्त्रों का विधान है कि सीमान्त संस्कार विवाह यज्ञ होम में पत्नी दाहिने रहे तथा अभिषेक या आशीर्वाद में पति के बायें रहे। सामान्य एवं विशेष शास्त्रों के विधान हैं। सामान्य में पत्नी बायें रहती हैं परन्तु विशेष में दायें रहती हैं।

परगत शरणागति

एक समय परमहंस स्वामी जी वैदराबाद अरवल ठाकुरवारी में विराज रहे थे। श्रीचरणों की सेवा में गरुडध्वज जी एवं कमलनयन जी थे। गरुडध्वज जी ने परमहंस स्वामी जी से पूछा कि भगवत्कृपा के लक्षण क्या हैं। परमहंस स्वामी जी ने सारगर्भित व्याख्या की। सारांश है कि “जब द्रवहि दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये। विनय पत्रिका 136।10।” “बिनु हरि कृपा मिलहि नहीं सन्ता। सु का 6।4।” “सत्संगति संसृति कर अन्ता। उ का 44।3।” संतों ने अजामिल के पुत्र का नाम नारायण रखा था। अजामिल का कल्याण हुआ। वाल्मीकि एवं नारद भी संतकृपाभाजन बनकर ही श्रेयस को प्राप्त कर सके थे। रामजी के कृपापात्र वृक्षादि भी थे वे ज्ञानसंपन्न होकर उनकी सेवा में लग गये। “सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानी देहि बर बाटा। अरण्य 6।2।” “सब तरु फलै राम हित लागी। लं का 4।3।” भगवान भक्ति ज्ञान कर्म से मिलते हैं। शुभ कर्म से भक्ति होती है और भगवान मिलते हैं। पाप से नरक मिलता है। परन्तु “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। गी 2।47।” के अनुसार कर्म का फल भगवान की निर्हेतुकी कृपा से मिलता है। भगवान को शरण में रखने का गुण है जिसे शरण्य गुण कहते हैं। जैसे जयन्त की घटना। सागर में शरण्य गुण नहीं होने से भगवान राम का कोप भाजन बना।

भगवान दया गुण से पुनः पुनः सृष्टि करते हैं। “यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्यै यद् यो यथा कुरुते कार्यते च। परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम्। भा 6।4।30।” भगवान के नाम लेने से ही सदगति होती है। अजामिल का उदाहरण। नामोच्चारणमहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः। अजामिलोऽपि यैनेव मृत्युपाशादमुच्यत। भा 6।3।23।” लोकवत्तु लीला कैवल्यम्। ब्र सू 2।1।33।” महाभारत में दूत बनना सारथी बनना गीता का उपदेश

करना सब निहंतुकी कृपा हैं। “यत्र येन यतो यस्य यस्यै यद् यद् यथा यदा। स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ। भा 10।85।4।” “हेतु रहित जग जुग उपकारी। उ का 46।3।” “अस प्रभु दीनबन्धु हरि कारण रहित कृपाल। वा का 211।” “कबहुँ कि करि करुना नर देही। उ का 43।3।” भगवान बिना सेवा के ही द्रवित होते हैं। “यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद् यस्यै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा। भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम्। भा 7।9।20।” भगवान की कृपा से ही अपना सर्वस्व भगवान के श्रीचरणों में समर्पित कर दुस्तर माया को पार करता है। “येषां स एव भगवान् दययेदन्तः सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो। ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वश्रृगालभक्ष्ये। भा 2।7।42।”

गर्भ में भगवान ही शुद्ध ज्ञान देते हैं। “.....तत्र लब्धस्मृतिर्देवात्कर्म जन्मशतोद्भवम्। भा 3।31।9।” “.....युक्तया कया महदनुग्रहमन्तरेण। भा 3।31।15।” परमात्मा जीवात्मा को स्वयं ज्ञान देकर कहवाते हैं कि आपके अनुग्रह के बिना इस बन्धन से छूटने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। बद्रीकाश्रम में भगवान स्वयं भी तपस्या करते हैं तथा नर को भी मंत्र देते हैं। सुदामा जी ने भगवान से द्वारिका में भेंट के बाद कहा है कि मेघ जैसे स्वयं ही जल देता है वैसे ही परमात्मा की कृपा है। “पर्जन्यवत्तत् स्वयमीक्षमाणे दाशार्हकाणामृषभः सखा मे। भा 10।81।34।” माण्डूक उपनिषद् 3।2।3 तथा कथोपनिषद् 2।2।23 में कहा है कि प्रवचन, उत्कृष्ट बुद्धि, तथा विद्वत्ता से परमात्मा नहीं मिलते “नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुश्रुतेन यमेवैष वृणते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्।” श्रीवचनभूषण में लोकाचार्य जी ने ‘स्वगत’ एवं ‘परगत’ दो तरह की शरणागति बतायी है। पिता से पुत्र मिलने पर ही पुत्र का पैतृक धन का अधिकारी होना स्वगत शरणागति है जो स्वयं के उपाय से होती है और यह निष्फल होती है। परगत शरणागति सफल है क्योंकि परमात्मा से यह निहंतुक मिलती है।

“.....मामेकं शरणं ब्रज। गी 18।66।” से भगवान ने कल्याण करने की प्रतिज्ञा की है। मूर्ख ही उनको उपाय नहीं मानते। हनुमान जी को अन्य बंधन लगते ही ब्रह्मास्त्र निष्प्रभावी हो गया। रावण के हाथ में कटे धनुष की मूठ बची थी। भगवान का बाण उसपर बरसता रहा। जब उसने मूठ फेंक दी तो भगवान ने निहत्थे पर बाण चलाना बन्द कर दिया। वृन्दावन के यज्ञरत ब्राह्मण की पत्नियों पर कृपा तथा मालाकार दर्जी एवं कुब्जा आदि निहंतुकी कृपा के उदाहरण हैं।

मूलमंत्र “ॐ नमो नारायणाय” का नमः मेरा तेरा के मोह से छुटकारा दिलाता है। भगवान ही प्रेरक बनकर अपनाते हैं। “उर प्रेरक रघुवंश विभूषण। उ का 112।1।” “ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। गी 18।61।” “हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो। साधन धाम देव दुर्लभ तनु मोहि कृपा कर दिन्हों।” विनय पत्रिका 102।”

शुकदेव जी की छाया में वृक्ष भी सचेत रहते थे।

ब्रह्मसूत्र 2।3।39 “तद्गुणसारत्वात्तु तदव्यपदेशः प्राज्ञवत्” के इस गुण के कारण पूतना एवं शिशुपाल को मोक्ष मिला। पुण्य भगवान को प्रिय है तथा पाप अप्रिय है। भगवान की कृपा अकारण होती है। भागवत के अनेकों दृष्टान्तों का उद्धरण पुस्तक में द्रष्टव्य है। कुछेक यहाँ उद्धृत हैं।

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्यै यद् यो यथा कुरुते कार्यते च।

परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ।। भा 6।4।30

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद् यस्यै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा।

भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् । भा 7।9।20

यत्र येन यतो यस्य यस्यै यद् यद् यदा यदा। स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ।। भा 10।85।4

“दातुं नालं वशंगतः” यानी भक्त के देने योग्य जब भगवान के पास कुछ नहीं रहता है तब वे भक्त के वस में हो जाते हैं। भगवान का सर्वस्व भक्त का है तथा भक्त का सर्वस्व भगवान का है।

5। मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा तथा रामरहस्य (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी (तृतीय खण्ड)।

वाल्मीकि रामायण के कतिपय श्लोकों के वृष्टिपूर्ण अर्थ वाली कुछ टीकायें उपलब्ध हैं जो भगवान राम को मांस भक्षण हेतु वनवास काल में जंगली मृगों का शिकारी दर्शाती हैं। आम आदमी भगवान को हिंसक मानकर मात्र एक मर्यादापुरुष ही मानता है न कि भगवान। इस पुस्तक में इसी भ्रम को दूर करते हुए रामजी को भगवान के अहिंसक करुणाकर मंगल स्वरूप से सम्पन्न साक्षात् नारायण का अवतार सिद्ध किया गया है। वर्तमान सार संक्षेप सं 2043 यानी ई 1986 में श्रीपराङ्कुश प्रेस हुलासगंज से प्रकाशित द्वितीय संस्करण पर आधारित है। पुस्तक के पूर्वार्द्ध का विषयवस्तु ‘वाल्मीकि रामायण’ पर आधारित ‘मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा’ है तथा उत्तरार्द्ध में ‘रामचरितमानस’ पर आधारित ‘रामरहस्य’ का वर्णन है। ‘रामरहस्य’ वाले भाग का एक स्वतंत्र प्रकाशन सं 2016 यानी ई 1959 में साधना प्रेस पटना से मुद्रित द्वितीय संस्करण उपलब्ध है जो ज्यादा विस्तृत है तथा है विषयसूची एवं शुद्धिपत्र को छोड़कर 72 पृष्ठों की पुस्तक है। यहाँ उपर्युक्त दोनों पुस्तकों से मिलाकर ही ‘रामरहस्य’ वाले भाग का सार संक्षेप प्रस्तुत किया गया है। ‘मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा’ वाला भाग हुलासगंज से प्रकाशित ई 1986 पर आधारित है।

हुलासगंज से प्रकाशित पूर्वोक्त ई 1986 वाली पुस्तक कुल 56 पृष्ठ की है तथा इसकी विषयसूची है :

‘दो शब्द पृ 1।’ ‘भ्रमात्मक शब्दार्थ पृ 3।’ ‘प्राग्वक्तव्य पृ 5।’ ‘अवतार हेतु पृ 10।’ ‘भगवान श्रीरामजी का कुलधर्म परिचय पृ 11।’ ‘परमभागवत नामावली हारीत संहिता पृ 12।’ ‘महाभागवत का लक्षण पृ 12।’ ‘कौशल्या द्वारा रंगनाथ भगवान की अनवरत आराधना पृ 13।’ ‘मर्यादा पुरुषोत्तम पृ 14।’ ‘रामरहस्य पृ 33।’

क। ‘दो शब्द’ भगवद् स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज के हैं जिसमें दैवी प्रकृति एवं आसुरी प्रकृति के लक्षण बताये गये हैं “दैवी सम्पदविमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव। गी 16।5।” दैवी प्रकृति वालों को रामजी भगवान दिखते हैं जबकि आसुरी वाले उन्हें हिंसक एवं प्राकृत मनुष्य देखते हैं। कंस वध के समय भगवान कृष्ण को लोगों ने अपने संस्कारवश विभिन्न रूपों में देखा था।

शास्त्र के शब्द कल्पद्रुम होते हैं पुण्यात्मा अमृत मांगते हैं तथा पापी विष। वाल्मीकि रामायण में आये कुछ शब्दों के कई अर्थ हो सकते हैं। प्रसंग एवं मुख्य विषय के अधिनायक के मूल चरित्र के आधार के समरूप ही अर्थ लेना उचित होता है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही भ्रमात्मक शब्द की सारणी बनी है और उनके ग्रहण करने योग्य अर्थ निघण्टु, अथर्ववेद, शब्दार्थ कौस्तुभ, मेदिनी, शब्दार्थ पारिजात, भावप्रकाश, अमरकोष आदि की सहायता से दिये गये हैं। ग्राह्य अर्थों के कुछ उदाहरण : “आमिष यानी राजभोग” “एण यानी ऊन” “कुक्कुट यानी नागरमोथा” “गौ यानी चावल” “छाग यानी निर्मल” “बलि यानी नैवेद्य” “वाराह यानी वाराहीकन्द” “मदिरा यानी आप्रवृक्ष” “मत्स्य यानी सोमलता” “मांस यानी फल का गुद्दा भीतरी भाग” “शृंग यानी जीरा” “सुरा यानी पंचामृत सुन्दर स्वादवाला”।

ख। प्राग्वक्तव्य में सदग्रन्थों के रहस्य समझने के लिये सहृदयता भावुकता एवं तन्मयता से ओतप्रोत रहने की आवश्यकता पर बल दिया गया है “पिवत भागवतं रसमालयं मुहुर्हो रसिका भुवि भावुकाः। भा 1।1।3।” वाल्मीकि रामायण का मूलाधार गायत्री के चौबीस अक्षर हैं जिसके प्रतीक में इसमें 24000 श्लोक हैं। इसे गायत्री का भाष्य तथा वेदस्वरूप कहते हैं। वेदवेद्य नारायण के रामजी के स्वरूप में अवतरित होने पर वेद भी रामायण बनकर प्रकट हुए।

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः। वा रा युद्ध का 116।43

बुराई करने वाले का बदला बुराई से नहीं देते। अपने आचार की रक्षा ही चरित्र का अलंकार है।

पापानां शुभानां वा वधार्हानां प्लवंगम्। कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति। वा रा युद्ध का 116।44।

श्रेष्ठ जन पापी वधयोग्य अपराधी पर दया करते हैं क्योंकि ऐसा कोई नहीं है जिसने अपराध न किया हो। ऐसा सीताजी हनुमान जी को समझाती हैं। इसीलिये वाल्मीकि जी ने सीताजी को महान बताया है “..... सीतायाश्चिरंतं महत् । वा रा बाल का 4।7।” श्री रामानुज स्वामी ने अपने आचार्य से अठारह बार रामायण पढ़ी। सात्विक ग्रंथ को सात्विक भाव से ही देखना चाहिये। भगवान राम को मर्यादापुरुषोत्तम होते हुए मांसभक्षी बताना सर्वथा गलत है। किसी पद्य के अर्थ में प्रसंग अधिकारी एवं पूर्वापर विषयों का समन्वय आवश्यक है। यह ग्रंथ की उत्तमता, ग्रंथ लेखक एवं ग्रंथ अधिनायक की उत्तम वृत्ति पर आधारित है। वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के पूर्व पद्मकल्प में राजा सत्यव्रत की अंजलि से मत्स्यावतार हुआ। सत्यव्रत ही स्वायंभुव मनु हुए। मनु ने ही दशरथ रूप में श्रीरामजी को पुत्र रूप में प्राप्त किया। वाल्मीकि रामायण के रचयिता स्वयं एक तपस्वी थे तथा उनका हृदय करुणापूर्ण था “भा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः । वा रा बा का 2।15। पक्षी की हत्या देख उन्होंने एक बहेलिये को शाप दे डाला।

ग। अवतार हेतु : “गो द्विज धेनु बिप्र हितकारी कृपासिन्धु मानुष तनुधारी । मानस सु का 38।2।” “प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया । गी 4।6।” “धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे । गी 4।8।” भगवान एवं लक्ष्मी जी दोनों साथ साथ लोक कल्याण करते हैं। “अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा । वा रा सु का 21।15।” “गिरा अर्थ जलबीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । बन्दौ सीतारामपद जाके परम प्रिय खिन्न । मानस वा का 18।”

घ। भगवान श्रीरामजी का कुलधर्म परिचय : श्रीमन्नारायण से उत्पन्न ब्रह्मा नारद वशिष्ठ नैमिषारण्यवासी शौनकादि महर्षि तथा इक्ष्वाकु कुल के दिलीप आदि चक्रांकित श्रीवैष्णव थे। पद्म पुराण उत्तर खण्ड 67 एवं 68 श्लोक में इसका उल्लेख है “एवमुक्तवा विधातरं तस्मै मंत्र ददौ स्वयम्।”

च। परमभागवत नामावली हारीत संहिता

वशिष्ठं वामदेवञ्च व्यासं शौनकमेव च । मार्कण्डेय चाम्बरीषं दत्तात्रेयं पराशरम् ।

भरद्वाजं बलिं भीष्ममुद्धवाकूरपूर्वकम् । गुहं सुतञ्च वाल्मीकिं स्वाम्भुवमनुं ध्रुवम् ।

नन्दञ्च वसुदेवञ्च दिलीपं दशरन्तथा । कौशल्याञ्चैव जनकं भक्ता इत्यादिकं ध्रुवम् ।

छ। महाभागवत का लक्षण : “अर्थपंचक तत्त्वज्ञाः पंचसंस्कारसंस्कृताः । नवभक्तिसमायुक्ता महाभागवता स्मृताः ।”

“तापं पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रयागस्तु पञ्चमः । महाभारद्वाज संहिता” । इक्ष्वाकु से लेकर रामजी तक में महाभागवत के सभी लक्षण मिलते हैं।

ज। कौशल्या द्वारा रंगनाथ भगवान की अनवरत आराधना : “श्रीरंगनाथशयिनं सौम्यमिक्ष्वाकुल दैवतम् । सप्रीत्या प्रददौ तस्मै रामो राजीव लोचनः । पद्मोत्तर खंड अ 211।” यानी भगवान राम के कुलदेवता रंगनाथ भगवान थे जिन्हें उन्होंने कृतज्ञतावश विभीषण को दे दिया था। कौशल्याजी इनकी पूजा करती थीं “प्रभाते त्वकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी ।” “पूजा हेतु कीन्ह पकवाना । मानस वा का 200।2।।”

झ। मर्यादा पुरुषोत्तम : लोक संग्रह शिष्टाचार के लिए कुल धर्मानुसार भगवान राम उर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाते थे “भाले दधानं सितमूर्ध्वपुण्ड्रं पीतश्रियं मध्यविराजमानम् । अगस्त्य संहिता ।” बालकाल से ही तिलक धारण करते थे मानस बालकाण्ड “तिलक ललाट पटल दुतिकारी । 146।2।” “नासा तिलक को वरने पारा । 198।4।” जनकपुरवासियों ने रामजी के माथे पर उर्ध्वपुण्ड्र का उल्लेख किया है “तिलक रेख शोभा जनु चांकी । 218।4।” “भाल तिलक श्रमविन्दु सुहाए । 232।2।” “भाल विशाल तिलक झलकाहीं । 242।3।”

भगवान कुलधर्म के रक्षक थे। नारद जी से जब वाल्मीकि ने सोलह गुण से संपन्न पुरुष का परिचय पूछा था तो नारद जी ने कहा था “इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । वा रा बा का 1।8।”

वाल्मीकि रामायण के अनुसार कुछ लोग रामजी को मांस भक्षी बताने का दुःसाहस करते हैं। वे अज्ञान के गर्त में हैं तथा उन्हें सद्गुरु से रामायण पढ़नी चाहिए। कैकेयी की आज्ञा थी “चीराजिन जटाधारी रामोभवतु तापसः। वा रा अयो का 11।26।” कैकेयी के वचनानुसार तपस्वी बनकर रहना है तो फिर मांस खाना तो विरोधाभास है। रामजी का वचन है मुनियों की तरह रहूँगा फल मूल खाकर रहूँगा। “मधुमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्। वा रा अयो का 20।29।” “आसेवमानो वन्यानि फलं मूलैश्चवर्तयन्। वा रा अयो का 20।31।”

वनगमन के समय रामजी ने प्रतिज्ञा की थी “फलानि मूलानि च भक्ष्यन्वने। वा रा अयो का 34।59।”

ताड़का सुबाहु रावण आदि आसुरी वृत्ति वाले का वध धर्म की रक्षा है। “पावन मृग मारहिं जिय जानी। मानस वा का 204।1।” विष्णुसहस्रनाम “पवनः पवनोऽनलः” की तरह उक्त चौपाई में ‘पावन’ वाच्य रामजी हैं तथा हिंसक जन्तुओं को दुर्बल जन्तुओं की रक्षा के लिए मारते हैं।

रामजी को पशु पक्षियों से प्रेम था “हित अनहित पशु पक्षिउ जाना। बाधक बधिक विलोकि पराहि। मानस अयो का 263।2।” जड़ वस्तु भी रामजी से प्रेम करते हैं “सरिता सर गिरि औघट घाटा। पति पहिचानि देहि बर बाटा। मानस अरण्य 6।2।” “सब फल फलै राम हित लागी। ऋतु अनऋतु काल गति त्यागि। मानस लंका 4।3।”

भगवान राम ने वन में दशरथ जी को पिण्ड इंगुदी फल एवं वैर चूर्ण के मिश्रण से दिया था “ऐङ्गुदं बदरीमिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे। वा रा अयो का 102।29।” क्योंकि जो व्यक्ति जो खाता है वही अपने इष्टदेव को अर्पित करता है “यदन्नः पुरुषो भवति तदान्नास्तस्य देवताः। वा रा अयो का 102।30।” भगवान स्वयं शुद्ध वैष्णव धर्म का पालन करते थे स्वयं भोग लगाकर ही प्रसाद पाते थे “भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्ति आत्माकारणात्। गी 3।13।” भगवान की कृपा की कमी के कारण ही कोई व्यक्ति उनमें दोष देखता है। “दिव्यं ददामि ते चक्षुः। गी 11।8।

“तुम्हरी कृपा पाव कोइ काई। मानस कि 20।3।” “सो जानई जेहि देहु जनाई। मानस अयो 126।2। शुद्ध सात्विक ज्ञान के लिये भगवान की कृपा ही परमोपाय है। वाल्मीकि रामायण के निम्नांकित प्रसंगों के अर्थ शुद्ध सात्विक भाव से ही समझे जा सकते हैं।

।1। “मधुमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्। वा रा अयो का 20।29।” यहाँ ‘आमिष’ का अर्थ राजभोग समझना है। भगवान माता कौशल्या को वचन देते हैं कि राजभोग सुखादि छोड़कर मुनि की तरह फल मूल मधु का सेवन करूँगा।

।2। “सुराघट सहस्रेण मांसभूतौदनेन च। यक्ष्ये त्वां प्रयतां देवि पुरीं पुनरुपागता। वा रा अयो का 52।89।”

वन के रास्ते गंगा तट पर सीता जी गंगा से प्रार्थना करती हैं कि सकुशल अयोध्या लौटने पर आपकी पूजा हजार घड़े पंचामृत या देवदुर्लभ प्रसाद तथा मांसभूतौदन यानी तिल लावा दही यव हरिद्रा मिश्रित भात से करूँगी। हारीत वचन है “विष्णोर्निवेदत अन्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्” यानी भगवान के चढ़े प्रसाद से ही अन्य देवों की पूजा करे। भगवत् प्रसाद देवदुर्लभ है। वैद्यक शब्द सिन्धु के अनुसार “तिल लाजा दधि यव हरिद्रायुक्त ओदनम्। भूतौदनं सु सम्प्रोक्त गुणाः सर्वे पदार्थवत्।” ब्रह्मसूत्र 2।4।21 के अनुसार “मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च।” भौम यानी पृथ्वी के अन्न से मांस विष्टा तथा मन का निर्माण होता है उसी तरह शब्दों से भी भिन्न भिन्न कार्य या अर्थ लिये जाते हैं। मरीचि संहिता में कहा है “मांसोक्ते पौष्टिक ग्राह्यम्” यानी मांस शब्द से फल का गुहा हुआ।

।3। “स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेत् मे पतिव्रतम्। यक्ष्ये त्वां गो सहस्रेण सुराघटशतेन च। वा रा अयो का 55।20।”

यमुना जी से सीता जी प्रार्थना करती हैं कि यदि मेरे पति का व्रत पूरा हुआ यानी वनवास निर्विघ्न पूरा हो जायेगा तब मैं एक हजार गौयें दान करूँगी तथा एक सौ घड़ा पंचामृत से पूजा करूँगी।

।4। “कोशमात्रं ततो गत्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। वहून्मेध्यान् मृगान्हत्वा चेरतुर्यमुनावने। वा रा अयो का 55।33।”

एक कोश यमुनावन में चलकर भगवान ने पवित्र गजकन्द भोजन किया। मृग गजकन्द के लिये है। 'हत्वा' का 'ह' एवं 'तु' निश्चयार्थक है तथा आ उपसर्ग चरेतु विधिपूर्वक भोजन करने से सम्बद्ध है।

। 5। “ऐणेयं मांसमाहत्य यक्ष्यामहे वयम्। कर्तव्यं वास्तु शमनं सौमित्रे चिर वासिभिः। वा रा अयो का 56।22।”

चित्रकूट में नवीन पर्णशाला की वास्तुशांति के लिये ऐणेयं यानी सुगन्धित वस्तुविशेष तथा वाराही कन्द की व्यवस्था करने को कहते हैं। वास्तुशांति भगवान अपनी पूजा की बात करते हैं जैसे कृष्णजी ने गोवर्धन पूजा में अपनी पूजा करायी।

“मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण। वा रा अयो का 56।23।” मृग गजकन्द के लिये है। हत्वा का ह एवं तु निश्चित बोधक है। शुभेक्षण यानी अच्छे गजकन्द की पहचान में चतुर लक्ष्मण जी।

“ऐणेयं श्रपयस्व एतत् शाला यक्ष्यामहे वयम्। त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो अपि अयम्। वा रा अयो का 56।25।” पूजा के लिये भगवान वाराहीकन्द का पाक शीघ्र बनाने को कहते हैं क्योंकि स्थिर लग्न में पूजा सम्पन्न होनी है।

“सलक्ष्मणः कृष्ण मृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्। अथ चिक्षेप सौमित्रः समिद्धे जातवेदसि। वा रा अयो का 56।26।” लक्ष्मण जी काला गजकन्द उखाड़ लाये एवं आज्ञानुसार आग में पकने के लिये रखे।

“तं तु पक्वा समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम्। लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत्। वा रा अयो का 56।27।” आग में दिये हुए कन्द का जब रस सूखने लगा तब लक्ष्मण ने भगवान से कहा।

“अयं कृष्णः समाप्तांगः श्रुतः कृष्णमृगो मया। देवतां देव संकाश यजस्व कुशलो ह्यसि। वा रा अयो का 56।28।” समाप्तांगः यानी जिससे समस्त अंग पुष्ट हो जाते हैं ऐसा काला गजकन्द पक कर तैयार है। आप यज्ञ के अधिकारी हैं पूजन करें। भगवान राम जब दशरथ जी को इंगुदी फल एवं बैर चूर्ण से पिण्ड कर रहे थे तो यह भी कहा था कि जो व्यक्ति जो भी खाता है उसी से देवता की पूजा करता है। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान कन्द मूलादि ही आहार करते थे।

“वन्यैर्माल्यैः फलमूलैः पक्वैर्मसियथाविधि। अदभिर्जपैश्च वेदोक्तैर्दभैश्च ससमित्कुशैः। वा रा अयो का 56।34।”

भगवान ने फूलमालाओं कन्दमूलों फलों पके फलों के भीतर का सार यानी पके केले इत्यादि जल वैदिक मंत्रों का जप कुश समिधा आदि से वास्तुशान्ति की।

। 6। तिष्ठन्तु सर्वे दाशाश्च गंगामन्वाश्रितां नदीम्। बलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः। वा रा अयो का 84।7।” भरत जी के चित्रकूट गमन के समय निषादराज अपने लोगों को कन्द मूल फल खाकर बलपूर्वक गंगाघाट की रखवाली की आज्ञा देते हैं। “इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च। अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः। वा रा अयो का 84।10।” स्वयं निषादराज मत्स्य यानी सोमरस, कन्द तथा मधु यानी अन्य श्रमहारी पुष्परसों के साथ भरत जी से मिलने गया। “अस्ति मूलं फलं चैव निषादैः समुपाहृतम्। आर्द्र मांसं च शुष्कं च अन्य चोच्चावचं महत्। वा रा अयो का 84।17।” उच्च कोटि के रसवाले तथा सूखे कन्द मूल फल निषादराज द्वारा लाया गया। यहां मांस राजभोग का भी सूचक है। भरत जी राजा हैं तथा निषादराज प्रजा हैं अतः राजभोग की सामग्री भी उपयुक्त है।

। 7। “अन्याः श्रवन्तु भैरेयं सुरामन्यासुनिष्ठताम्। वा रा अयो का 91।15।” भरत जी की आगवानी में भारद्वाज जी नदियों को आह्वान कर भैरेय सुरा यानी धूप में सन्धानित द्राक्षा एवं धावा पुष्प के मिश्रित उत्तम पेय प्रस्तुत करने को कहते हैं। इनका अर्थ मदिरा कभी हो ही नहीं सकता है क्योंकि न भरत जी न भारद्वाज जी मदिरा सेवन करते थे। “... सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च। वा रा अयो का 91।21।” चांद से मुनि कहते हैं कि उत्तम पंचामृत पेय तथा राजभोग उपलब्ध करायें। “सुराः सुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षितः। अयो का 91।52।”

नारी रूप में आये वृक्षों से मुनि पंचामृत तथा खीर उपलब्ध कराने को कहते हैं। “मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यावदिच्छथ। अयो का 91।53।” पके हुए पवित्र फल या राजभोग इच्छा भर लोग ग्रहण करें। “आजैश्चापि वाराहैनिष्ठानवर संचयैः। अयो का 91।68।” आजैः यानी अज संज्ञानि बीजानि अर्थात् अखरोट पिस्ता मूंगफली चिरौंजी मेवा आदि पदार्थ तथा कन्द फल दिये गये। आजैः का अर्थ बकरी के घी से पके पदार्थ भी हैं क्योंकि बकरी का घी क्षयादि रोगहर रसायन होता है। “वाप्ये भैरेय पूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः। प्रतप्त पिठैश्चापि मार्गमायूर कौक्कुटैः। अयो का 91।71।” मुनि के आश्रम की सभी वापियां उत्तम द्राक्षारस से भरी थीं तथा पके सुस्वादु फलों के ढेर लगे थे। यहां मार्ग शब्द यानी मृग कस्तूरी, मायूर यानी मयुरशिखा औषधि नागरमोथादि, तथा कौक्कुट यानी काकोली क्षीरकोली पौष्टिक पदार्थ के लिये प्रयुक्त हैं। “तथैव मत्ता मदिरौल्लटा नरास्तथैव दिव्यागरूचन्दनोक्षिताः। अयो का 91।84।” भरद्वाज मुनि के आश्रम से सभी अप्सराओं स्वागतकर्ताओं के चले जाने के बाद भी भरत जी के लोग पुष्ट कन्दमूल फल द्राक्षादि रसों का पान कर हृष्ट पुष्ट सानन्द महसूस कर रहे थे।

।8। “तां तथा दर्शयित्वा तु भैथिली गिरि निम्नगाम्। निषसाद गिरि प्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन् ।।

इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना। एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः।। वा रा अयो का 96।1 तथा 2।” रामजी सीताजी को मन्दाकिनी की शोभा दिखाकर एक पत्थर पर बैठ गये तथा उनके द्वारा पकाये गये कन्द मूलों के स्वाद की प्रशंसा करने लगे। यहाँ रामजी को धर्मात्मा कहा है। ऐसी स्थिति में मांस पकाने का अर्थ घोर विरोधाभासक होगा।

।9। “पायसं कृशरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः। गुरुश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः। वा रा अयो का 75।30।”

भरत जी कहते हैं : अगर रामजी उनकी सम्मति से जंगल गये हों तब उनको सब पाप लगे जो भगवान को बिना चढ़ाये खीर खिचड़ी तुलसी की मंजर पत्ती खाने से लगता है। यहाँ छाग का अर्थ है निर्मल वृक्ष कीटाणुनाशक तुलसी आदि से है।

।10। “न मांसं राघवो भुंक्ते न चापि मधुसेवते। वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पंचमम्। वा रा सु का 36।41।”

सुन्दर काण्ड का यह श्लोक हनुमान जी द्वारा सीता जी के प्रश्न के उत्तर में कहा गया है। भगवान सुग्रीव का राजभोग भी ग्रहण नहीं करते न पुष्टिकारक पुष्पों के रस यानी न द्राक्षारस ही पीते हैं। दिन के पांचवें पहर में मात्र कन्दमूल खाते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि.....

(श्री स्वामी जी की पुस्तकें भाग)

रामरहस्य

एक बार तरेत में परमहंस स्वामी जी महाराज उस मंडप में विराज रहे थे जहाँ आज दिव्य मंदिर बना है। प्रायः तुलसी दास जी रचितरामचरितमानस से गान बजान कार्यक्रम चलता था। एक बार पाली के रामलखन शर्मा जी ने मानसउत्तर कांड दोहा 45 “औरो एक गुप्त मत सबही कहउँ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।” तथा बालकांड दोहा 110 चौपाई 2 “यह मैं रामरहस्य अनेका।” पर परमहंस स्वामी जी को प्रकाश डालने के लिये निवेदन किया। मानस में ‘रहस्य’ शब्द कई प्रसंगों में प्रयुक्त हुए हैं। परमहंस स्वामी जी महाराज ने

सभी प्रसंगों का सुन्दर विवेचन किया है इससे मानस का समझना सुलभ हो गया है। इस पुस्तक के रामरहस्य भाग में पैंतालीस प्रसंगोंके सार संक्षेप प्रस्तुत हैं।

प्रसंग 1। “रामरहस्य ललित विधि नाना। उ का 113।1।” गोपनीयतथ्य को रहस्य कहते हैं और एकान्त में इसे परम अधिकारी को बताया जाने का विधान है। यह गुप्त तथा प्रकट दोनों तरह का होता है। “औरो रामरहस्य अनेका। बा का 110।2।” “यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोय। उ 116।” रामजी के हृदय की बात है। “यह जनि कतहँ कहेसि सुनु माई। बा 201।4।” “लछिमनहुं यह मर्म न जाना। अर 23।3।” अनधिकारी को नहीं बताये। “कहिये कतहुं सठहि हठ सीलहि। उ 127।2।” अधिकारी को ही बताये। “पाई उमा यह गोप्यमयि सज्जन करहिं प्रकाश। उ 69।” “गूढो तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहीं। बा 109।1।”

प्रसंग 2। “यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोय। उ 116।” नारी रूपिणी माया नारी स्वरूपा भक्ति को नहीं ठग सकती जबकि पुरुष रूप ज्ञान माया से ठगा जाता है। भक्ति की ज्ञान पर प्रधानता ही रहस्य है। मनु शतरूपा को भगवान ने राम जानकी के वेष में मानवी देह से दर्शन दिया क्योंकि रावण को मनुष्य के हाथ ही मरना था। ये सब हैं जो पहले शीघ्र समझ में नहीं आता।

प्रसंग 3। “निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना। बाल 200।1।” वर्तमान गोरखपुर से प्रकाशित संस्करण में ‘पकवाना’ को ‘स्नाना’ कर दिया गया है। भगवान पकवान खा गये हैं। कौशल्या जी भगवान विष्णु एवं रामजी में अन्तर समझती थीं इसीलिये रामजी पकवान खा गये हैं।

प्रसंग 4। “निगम नेति शिव पार न पावा। ताहिधरै जननी हठ धावा। बाल 202।4।” दशरथ जी ज्ञान के प्रतीक थे भगवान भाग गये परन्तु भक्तिमति माता ने उन्हें पकड़ लिया। ईश्वर में यह रहस्य है।

प्रसंग 5। “जननी भवन गये पुनि चले नाइ पदशीश। बाल 208।” विश्वामित्र मुनि की यज्ञ रक्षा हेतु चलने के पूर्व भगवान माता जी का नमन करते हैं। माता ने कोई रोक टोक नहीं किया परन्तु पिता दशरथ जी ने शुरू में मना कर दिया था “देह प्राण ते प्रियकछु नाहीं। सो मुनि देखें निमिष एक माहीं। बाल 207।2।” जन्म के समय तथा बाद में पूजा के पकवान खाकर के भगवान ने माता को अपना स्वरूप दिखा दिया था और दशरथ जी को इसका ज्ञान नहीं था। वे भगवान को नारायण नहीं समझ पाये थे परन्तु माँ जानती थीं। इसलिये माता ने नहीं रोका परन्तु पिता अनभिज्ञ थे।

प्रसंग 6। “यह जनि कतहँ कहेसि सुनु माई। बा 201।4।” भगवान रंगनाथ की पूजा का पकवान खाते हुए भगवान ने माता को अपना स्वरूप पुनः दिखाया परन्तु किसी को कहने से मना इसलिये किया कि कहीं प्रचार न हो जाये कि रामजी भगवान विष्णु हैं और रावण मनुष्य से नहीं अपितु विष्णु भगवान से मारा गया है। हनुमान जी को भी पहली भेंट में अपना परिचय “कोसलेश दशरथ के जाए। कि 1।1” कहकर दिया।

प्रसंग 7। मारीच को बिना फर के बाण से समुद्र पार फेंक दिया मारा नहीं। रहस्य है कि मारीच लीला सहायक था और आगे की लीला बाकी थी।

प्रसंग 8। “जो पांचहिं लागै मत नीका। हरषि करहु रघुनाथहि टीका। अयो 4।2।” राजा दशरथ ने स्वयं निर्णय क्यों नहीं लिया कारण कि कैकेयी से विवाह के समय अश्वपति राजा को दशरथ ने यह वचन दिया था कि

कैकेयी का पुत्र ही राजा होगा। रामजी ने भी इसीलिये कहा कि “बिमल वंश यह अनुचित एका। बन्धु बिहाय बड़ेहि अभिषेका। अयो 9।2।”

प्रसंग 9। “तुम पावक महँ करहु निवासा। अर 23।1।” सीता जी को रामजी ने अग्नि में क्यों रखा इसलिये कि अग्नि सीता जी के परनाना थे। सम्बन्ध ऐसे है कि ईश्वर से आकाश तब आकाश से वायु और वायु से अग्नि फिर अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। सीता जी धरती की बेटी थीं इसलिये अग्नि उनके नाना हुए। अपना निजी सम्बन्धी ही ज्यादा विश्वासी होता है।

प्रसंग 10। “जबहि राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी। अर 23।2।” रहस्य है कि भगवान ने सब क्या बताया। पाँच बातें रामजी ने कही ‘मारीच के आने पर मृग लाने कहना’ ‘भगवान का जाना’ ‘मारीच का भगवान जैसा बोलना’ ‘सीता जी का लक्ष्मण को भेजना’ तथा ‘रावण का सीता जी को ले जाना’।

प्रसंग 11। “अस्थि समूह देखि रघुराया। अर 8।3।” “निसिचर हीन करौं महि...अर 9।” वाल्मीकि रामायण में दिया है कि सीता जी ने भगवान को सभी निशाचरों को मारने से मना किया। भगवान नहीं माने। तब सीता जी यह सोच कर लंका गयीं कि अकेले रावण को समझाने से अन्य निशाचरों को नाश से बचाया जा सकता है। रावण नहीं माना। रामजी की प्रतिज्ञा पूरी हुई निश्चरगण मारे गये। “लछिमनहुं यह मर्मन जाना। अर 23।3।” यही सब बातें लक्ष्मण जी को नहीं पता था।

प्रसंग 12। “तब रघुपति जानत सब कारन। चले हरषि सुर काज सँवारन। अर 26।3।” “.....हरि प्रेरित लछिमन मन डोला। अर 27।3।” “असम्भवम् हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।” भगवान सब कारण जानते हैं। सोने का मृगा का होना असम्भव है और रावण को उन्हें मौका देना था जिससे लीला आगे बढ़े। इसीलिये सीता जी ने भी लक्ष्मण को दुर्वचन कहा। ऐसा भी भाव मिलता है कि लक्ष्मण जी को दुर्वचन कहना एक भक्त का अनादर था और सीता जी को लंका का कष्ट झेलना पड़ा।

प्रसंग 13। “नाथ दशानन यह गति कीन्हा। सो खल जनक सुता हर लीन्हा। अर 30।1।” “तिन कर किया यथोचित निज कर कीन्हीं राम। अर 32।” भक्त का देह भगवान को प्रिय है यही रहस्य है। भगवान का अवतार वेद धर्म की रक्षा के लिये होता है। इसीलिए भगवान ने सारे दाह कर्म किये। गीधराज को चारो मुक्ति मिली। “तनु तजि तात जाहु मम धामा। अर 30।5।” से सालोक्य। “गीध देह तजि धरि हरि रूपा। अर 31।1।” से सारूप्य। “मम उर बसउ सो समन संसृति...। अर 31।छन्द 4।” से सामीप्य। धाम में पहुँचने पर सामीप्य से ही सायुज्य मिल गयी।

प्रसंग 14। “को तुम तीन देव मह कोउ। नर नारायण की तुम दोउ। किष्क चौपाई 5।” हनुमान जी से पहली भेंट में पूछने पर भगवान ने अपने अवतार का रहस्य बनाये रखा तथा हनुमान जी को बताया “कोसलेश दशरथ के जाए। कि 1।1।”

प्रसंग 15। “पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ। किष्कदोहा 4।” अग्नि की साक्षी इसलिये दी कि अग्नि सीता जी के परनाना यानी नाना के पिता थे नजदीकी थे। अग्नि के प्रकोप से धोखा देने पर सुग्रीव लूला लंगड़ा या प्राणहीन हो सकता है।

प्रसंग 16 | “बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाई पूछत अस भयउ।” “ की तुम्ह स्यामल गौर शरीरा। छत्रिय रूप फिरहु बन बीरा।” किष्क चौपाई 3 एवं 4।” ब्राह्मण होकर क्षत्रिय को हनुमान जी का प्रणाम करने का रहस्य क्या है। कारण है :। क। हनुमान जी ब्रह्मचारी रूप में थे परन्तु भगवान तपस्वी के रूप में बानप्रस्थ आश्रमी थे। बानप्रस्थ का स्थान ब्रह्मचारी से ऊपर होता है।। ख। रामजी हनुमान जी को भगवान दिखते थे।। ग। भगवान के अप्राकृत शरीर से प्रभावित होकर।

प्रसंग 17 | “लछिमन बान सरासन आनू। सु 57।1।” क्या रहस्य है कि भगवान ने समुद्र की पहले स्तुति की पुनः धमकाया भी। कारण कि क्षुद्र देवता कल्याण नहीं करते। इसीलिये भगवान को छोड़कर किसी अन्य देवता की पूजा न करे। नारद जी ने ध्रुव को समझाया है “धर्मार्थ काममोक्षार्थ य इच्छेत् श्रियमात्मनः। एक एव हरिस्तत्र कारणं पादसेवनम्। भा 4।8।41।”

प्रसंग 18 | “राम राम हा राम पुकारी। मम दिसि देखि दीन्ह पट डारी। कि 4।3।” सुग्रीव की ओर कपड़ा गिराने का रहस्य है कि सीता जी को भागवत की पहचान थी। हनुमान जी के आगे बानरों के प्रधान सुग्रीव के बैठने से समझ गयी कि सुग्रीव भक्त हैं। सीता जी दक्षिण दिशा में जा रही थीं अतः यह रामजी के लिये मार्गदर्शन का भी काम करेगा कि सीता जी सुग्रीव के स्थान से भी दक्षिण की ओर गयी हैं।

प्रसंग 19 | “अब प्रभु चरित सुनावहु मोहि। उ 1।7।” हनुमान जी से भरत जी के ऐसा कहने पर हनुमान जी ने “कहे सकल रघुपति गुन गाथा। उ 1।8।” क्या रहस्य है कि चरित सुनाने के बदले हनुमान जी ने रामजी के सब गुणों का बखान किया। भगवान के सारे व्यवहार उनके दिव्य गुणों के कारण होते हैं। जैसे शरण्य गुण के कारण विभीषण एवं सुग्रीव को शरण में लेना। उदार गुण के कारण “जो संपति शिव रावनहि दीन्ह दिये दस माथ। सो सम्पदा विभीषण ही सकुच दीन्ह रघुनाथ। सु 49।0।” मोक्षप्रदत्व गुण के कारण “कहहि विभीषण तिन कर नामा। देहि राम तिन कह निज धामा। लं 44।1।” तेज गुण से “तासु तेज प्रभु वदन समाना। सुर नर सकल असंभव माना। लं 70।4।” “श्रीरघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरहिं पाषाण। लं 3।0।” “गीध देह तजि धरि हरि रूपा। अर 31।1।” धर्म पालन कर्ता से “तिनकर किया यथोचित निज कर कीन्ही राम। अर 32।” शील गुण तथा पतित पावनता से शवरी कोल किरात आदि से प्रेम करना।

प्रसंग 20 | “अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा की खानी। उ 2।5।” रहस्यात्मक बात है कि अयोध्या तो जड़ है फिर इसे रामजी के आगमन का आभास कैसे हुआ। प्रकृति जड़ है जैसा सुन्दर कांड 58।2 में कहा है “गगन समीर अनल जल धरनि। इनकी नाथ सहज जड़ करनी।” अन्य प्रसंगों में कहा है “सरिता सर गिरि अवघट घाटा। पति पहिचान देहि वर बाटा। अर 6।2।” “भूतल भावन होत भरत को। अचर सचर चर अचर करत को। अयो 237।3।” अयोध्यापुरी दिव्य है क्योंकि यह वैकुण्ठ से रंगनाथ भगवान के साथ इक्ष्वाकु को मिली। इसे भगवान के लौटने का दिव्य ज्ञान होना स्वाभाविक है। ‘पर’ वासुदेव रूप, ‘अर्चा’ रूप श्रीरंगनाथ भगवान तथा ‘वैभव’ रूप रामजी सब एक ही हैं।

प्रसंग 21 | **22** | “अमित रूप प्रगटे तेहि काला। उ 5।3।” “छन मह सबहि मिले भगवाना। उ 5।4।” रहस्य है कि “धाइ धरे गुरु चरन सरोरूह। उ 4।2 से लेकर “सीता चरन भरत सिर नावा। उ 5।1।” तक एक एक कर भगवान गुरु तथा माता एवं भाइयों से मिलते हैं परन्तु समस्त नगरवासियों से एकही बार अनेको स्वरूप धरकर में क्यों मिलते हैं। परिजनों से मिलने में भगवान लोक रीति की मर्यादा की रक्षा करते हैं

परन्तु अयोध्यावासियों से एक ही बार में मिल कर उन सबों के हृदय में भगवान से अगाध प्रेम की उत्कण्ठा की समानता का सम्मान करते हैं।

प्रसंग 23 | “प्रेरित मंत्र ब्रह्म सर धावा। अर 1।1।” रहस्य है कि ब्रह्मास्त्र ने जयन्त जैसे निर्मम अपराधी को छोड़ क्यों दिया। कारण कि जयन्त का अपराध सीता जी के साथ था और वे मातृत्व गुण के कारण क्षमाशील हैं “वधार्थमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालय। वा रा अयो । “कुपुत्रो जायेत क्वचदपि कुमाता न भवति।”

प्रसंग 24 | क्या रहस्य है कि कौशल्या जी को भगवान ने अपना अलौकिक स्वरूप दो बार दिखाया परन्तु पिता दशरथ को एक बार भी नहीं। कौशल्या जी सती साध्वी पति परायण थी परन्तु दशरथ जी ने एक से ज्यादा रानी के साथ विवाह किया था। जब कौशल्या जी सती होने चलती हैं तब भरत जी रोक देते हैं “गहि पद भरत मातु सब राखी। अयो 169।1।”

प्रसंग 25 | “निज उरमाल वसन मनि बालितनय पहिराइ। बिदा कीन्ह भगवान तब बहु प्रकार समझाइ। उ।8।” अंगद को विदा करते समय अनेक प्रकार से समझाने का क्या रहस्य है। 1। भगवान ने अंगद को समझाने की जरूरत इसलिये महसूस की कि अंगद के मन में यह था कि उसके पिता की हत्या सुग्रीव ने कराई थी। घर लौटने पर दोनों में कहीं शत्रुता न उभर उठे। इसी कटुता को दूर करने के लिये भगवान ने अंगद को भली भाँति समझाया। 2। बाली सुग्रीव से शक्तिशाली था तथा उसने बलपूर्वक सुग्रीव की पत्नी रूमा पर अपना अधिकार जमा लिया था। सुग्रीव दुन्दुभि के भय से भागा था उसे राजलोभ न था परन्तु सभासदों ने उसे हठपूर्वक राजा बना दिया। 3। रूमा पर बलात् अधिकार करने के कारण बाली के अपराध की सजा थी प्राणदंड और इससे वह नरकगामी होने से बच गया। 4। अंगद की माँ सती साध्वी नारी थी। उसने बाली को समझाया “सुनु पति जिन्हहि मिला सुग्रीवा। ते दोउ बन्धु तेज बल सींवा। कि 6।14।” पूरे क्षेत्र के राजा भरत हैं और मैं उनके प्रतिनिधि की तरह वहाँ था परन्तु अभिमानवश समझ नहीं सका फिर भी उसे अपने धाम में भेज दिया हूँ। बाली के पाप की ताप से तुम सन्तप्त मत होना। 5। राज का अधिकारी विजेता होता है और विजेता मैं था। सुग्रीव तुम से बड़े थे इसलिये हमने उनको राजा बनाया और तुमको युवराज बनाया। राज मुख से आज्ञा का अधिकारी होता है परन्तु कार्यान्वयन का श्रेय तो युवराज को होता है। 6। बाली को अपने प्रतिद्वन्दी का आधा बल मिल जाता था इसलिये उसके शत्रु अवसर देख आघात कर सकते हैं। आवश्यकतानुसार मैं इसमें तुम्हारा सहायक बनूँगा। 7। विभीषण की शरणागति में मैंने उसके दोष को भी अपना लिया था। पुनः भरत जी के उदाहरण से समझाते हैं कि भरत ने कहा था “आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अयो 300।2।” अन्यो के घर पहुँचने पर उसके परिवार सानन्द रहेंगे परन्तु तारा तुम्हारी अनुपस्थिति से दुःखी रहेगी। इसलिये मेरी आज्ञा मानकर जाओ और तारा को आश्वस्त रखो। मेरा नाम अच्युत है अर्थात् मुझे प्राप्त करने वाले की च्यति नहीं होती। 8। अंगद ने कहा “मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयेउ तुम्हारेहि कोंछे घाली। मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहीं तजि पद जलजाता।।..... राखहु सरन जानि जन दीना।। उ 17।1,2,3।” भगवान ने पुनः समझाया तुम्हारे नाते तुम्हारे परिवार का दायित्व मुझ पर है। विभीषण के नाते रावण मेरा भाई हुआ और मेरे कहने से विभीषण ने उसका दाह संस्कार किया। मेरी सेवा यही है कि तुम घर जाओ और तारा की रक्षा करो। 9। भगवान ने अपने शरीर का वस्त्र एवं माला अंगद को पहनाया था। उन वस्तुओं की याद कराते हुए उन्होंने उसे समझाया जैसे वस्त्र शरीर की रक्षा करते हैं उसी तरह मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा और जैसे माला का स्थान हृदय पर है उसी तरह तुम हमारे हृदय में रहोगे। 10। भगवान ने अन्यो को कहा “अब गृह जाहु सखा सब.....। उ 16।” परन्तु अंगद को स्नेह एवं सम्मान दिखाते हुए “विदा कीन्ह भगवान तब...। उ

16।” जाते जाते अंगद को लगा कि “मन अस रहन कहहिं मोहि रामा। उ१८।२।” परन्तु भगवान ने अंगद को विदा किया। श्रीकागभुसुंडी जी कहते हैं कि भगवान को कौन समझे ये वज्र से भी कठोर एवं फूल से भी कोमल हैं “कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि। वित्त खगेश रामकर समुझि परइ कहु काहि। उ१९।”¹¹। बाली के मरते समय तारा ने भगवान से भक्ति का वर मांगा था “उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लिहैसि परम भक्ति वर मांगी। कि०।३।” भगवान ने गीता में कहा है “... मदभक्ति लभते पराम्। गी०।१८।५४।” रहस्य यही है कि भगवान ने भक्ति की रक्षा के लिये अंगद की एक नहीं मानी तथा तारा को प्राथमिकता दी।

प्रसंग 26 : “मन्त्रिन सहित यहाँ एक बारा। बैठि रहेऊ कछु करत विचारा। कि०।४।२।” क्या विचार रहे थे यही रहस्य की बात है। बाली के डर से त्राण के लिये सूर्य इन्द्र आदि से सहायता पर विमर्श चल रहा था। किसी ने कहा इन्द्र तो पापात्मा है। गौतम मुनि के शाप से उसके शरीर पर हजारों भग हैं। किसी ने ब्रह्मा का नाम लिया तो बात आयी कि मधुकैटभ से उनकी रक्षा भगवान ने की थी। शंकर जी ने उनका पाचवाँ सिर काट लिया था। वे क्या दूसरे की रक्षा करेंगे। जब शंकर जी की बात चली तो हुआ कि उनकी भी वृकासुर से रक्षा तो विष्णु भगवान ने की थी। अतः एक नारायण ही रक्षक हैं अन्य कोई नहीं। उनकी सहेतुकी कृपा तो बहुत कठिन है और निर्हेतुकी कृपा पर ही आधारित रहा जाय। उसी समय “राम राम हा राम पुकारी। मम दिसि देख दीन्ह पट डारी। कि०।४।३।”

प्रसंग 27 क : “अतिलालसा सबहि मन माही। नाम ग्राम पूछत सकुचाही।। जो तिन मह वय वृद्ध सयाने। तिन करि युक्ति राम पहिचाने।। अयो० 109।२।” रहस्य है कि जब भगवान जंगल के रास्ते से जा रहे थे तो ग्रामीण पता पूछने से सकुचा क्यों रहे थे तथा वृद्ध लोगों ने किस तरीका से पता पता लगाना चाहा जो भगवान को पहले ही पता चल गया। भगवान तपस्वी के वेष में धनुषधारी स्वरूप में थे जो वानप्रस्थी का प्रतीक है। प्रायः वानप्रस्थी तथा सन्यासी से नाम पता नहीं पूछा जाता इसीलिये लोग संकोच में थे। एक वृद्ध ने छोटे बच्चों के सहारे पता करना चाहा तो भगवान पहले ही समझ गये एवं सबकुछ बता दिया कि अयोध्या नरेश पिता की आज्ञा से वन को जा रहे हैं।

प्रसंग 27 ख : “को साही सेवक ही निवाजी। आप समान साज सब साजी।। अयो० 298।३।” चित्रकूट में भरत जी भगवान राम की महानता बता रहे हैं कि वे स्वयं अपने सेवक का सारा साज समान स्वयं तैयार कर देते हैं। रहस्य है कैसे करते हैं। जटायु जी का उदाहरण “गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।। स्याम गात बिसाल भुज चारी। अर० 31।१।” “भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च। ब्र० सू० 4।४।२1।” यानी भोग में जीव को समानता दी गयी है। अपने समान बनाने वाले एकमात्र भगवान ही हैं।

॥ रामरहस्य भाग 2 ॥

यह भाग “रामरहस्य” के स्वतंत्र प्रकाशन से लिया गया है। इसके पूर्व का भाग “मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा तथा रामरहस्य” पुस्तक से लिया गया था।

प्रसंग 28 : “राम सिये तन सकुन जनाये। फरकही मंगल अंग सुहाये। अयो० 6।४।” गुरु वशिष्ठ के आज्ञानुसार अभिषेक की पूर्व सन्ध्या सीता जी के साथ भगवान राम नियमपूर्वक अपने कुलदेवता श्रीरंगनाथ भगवान के मन्दिर में बिताये थे। वहाँ शुभ शकुन हुआ। रामजी का दायाँ अंग तथा सीता जी का बायाँ अंग फड़का। क्या रहस्य है कि शुभ शकुन के बाद भी उन्हें जंगल जाना पड़ा। जब अभिषेक की जानकारी रामजी को

मिली थी “राम हृदय अस विस्मय भयउ। अयो 9।2।” कारण कि भरत को राज देने के लिये कैकेयी से विवाह के समय ही दशरथ वचनबद्ध हो गये थे परन्तु वे वैसा कर नहीं रहे थे। भगवान ने जब जंगल जाने का प्रस्ताव सुना तब “नव गयंद रघुवंश मणि राज अलान समान। छूट जानि वन गमन सुनि उर अनंद अधिकान। अयो 51।” यानी जैसे जब नया हाथी सीकड़ के बंधन से छूटता उसी तरह हर्षित हुए। कारण कि भगवान धर्म की रक्षा चाहते थे। पिता के पूर्ववचन की रक्षा हुई और “भरत प्रानप्रिय पावही राजू। विधि सब विधि भा सम्मुख आजु। अयो 41।1।” प्यारा भाइ राजा बना इससे प्रसन्नता हुई। भगवान को होनेवाली प्रसन्नता ही शुभ शकुन का संकेत था। दशरथ जी ने भी कैकेयी को कहा था रामजी “धर्म धुरीन विषय रस रूखे। अयो 49।2।” भगवान के वन जाने से ‘अंग अंगी’ यानी भगवान के अंग स्वरूप सीता जी के गुणों का विकास हुआ तथा अंगी भगवान के भी अनन्य गुणों से सबों को लाभ हुआ। जैसे 1। सीता जी के सतीत्व गुण का प्रकाश “प्रभा रहै कहँ भानु बिहाई। अयो 96।3।” जयन्त को क्षमा करने से सीता जी के शरण्य गुण तथा लंका वनवास से पक्षी सुग्गी के वचन का पालन। 2। सुमित्रा तथा लक्ष्मण जी के प्रसंग से सुमित्रा जी के मातृत्व गुण का तथा लक्ष्मण जी के शेषत्व गुण का प्रकाशित होना। 3। जड़ वृक्षों का प्रेम प्रकाशित हुआ अयोध्या के वृक्ष मुरझाये परन्तु वन के वृक्ष “सब तरु फलै राम हित लागी। लं 4।3।” 4। गंगा पार करने पर रथ के घोड़े पशुओं का प्रेम “देखि दक्षिण दिसि हय हिहिनाहीं। अयो 141।4। न तृन चरही न पियही जल। अयो 142।” 5। निपाद राज का प्रेम। 6। भरत जी का प्रेम “भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही। अयो 217।4।” भरत जी के पूर्व पादुका का महत्व अज्ञात था। पादुका पूजन उन्हीं का चलाया हुआ है। भरत जी की महिमा कहने में वशिष्ठ जी भी समर्थ नहीं हैं “भरत महा महिमा जल राशि। मुनि मति तीर ठार अवला सी। अयो 256।1।” 7। वनवासियों का प्रेम। 8। सुतीक्ष्ण मुनि का प्रेम। 9। जटायु जी का प्रेम। 10। शवरी की भक्ति।

प्रसंग 29 : “सृंगी ऋषिही वशिष्ठ बुलावा। पुत्र लागि शुभ यज्ञ करावा।। बाल 188।2।” गुरु वशिष्ठ के रहते श्रृंगी मुनि को बुलाने का रहस्य है कि अथर्ववेदाधिकारी यह काम कर सकते थे और वे अथर्व वेद के अधिकारी थे परन्तु वशिष्ठ जी अथर्व के अधिकारी नहीं थे क्योंकि वेद का अधिकार ऋषियों में बँटा हुआ था।

प्रसंग 30 : “प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहीं पाछिल बाता। अर 42।4।” नारद जी को भगवान समझाते हैं। पीछे की बात का रहस्य है कि माता के आहार के कारण उसके दूध का प्रभाव शिशु पर पड़ता है। बच्चे को सदा गोद में रख रोग के उपचार हेतु दवा पिलाती है। बच्चे को आग सॉप आदि का अज्ञानवस भय नहीं होता माता बचाती है। बच्चे पर संगति दोष लगने का भय रहता है माता बचाती है। बच्चे की उम्र बढ़ जाने पर इन सारी पिछले दायित्वों से माता निश्चिन्त हो जाती है।

प्रसंग 31। क। : “जे ज्ञान मान विमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी। ते पाय सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरि। उ 12।छ 4।” वन से लौटने पर यह राज्याभिषेक के समय वेद की स्तुति का प्रसंग है। “यद गत्वा न निवर्तन्ते। गी 15।6।” वहाँ से नीचे गिरने का क्या रहस्य है। आत्म अनुभव से शवरी सम्पन्न थी और इसे कैवल्य पद प्राप्त होना कहते हैं। “साधन धाम बिबुध दुर्लभ तनु मोहिं कृपा करि दीन्हैं।” यहाँ ‘पद’ तथा ‘धाम’ दोनों मनुष्य शरीर वाचक हैं। मानव शरीर देवगन भी नहीं पाते। इसी से मोक्ष की प्राप्ति संभव है। “सुर दुर्लभ सुख करी जग माहीं। अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं। उ 14।2।” इसलिये इसे पाने के बाद भगवान की भक्ति छोड़ देने पर इससे नीचे गिरना यानी कीट पतंग का शरीर मिलने का डर बना रहता है।

प्रसंग 31 | ख । ४ “काजु हमार तासु हित होई । रिपु सन करब बत कही सोई । लं 16 | 4 ।” इसमें क्या रहस्य है कि अगर रामजी रावण का हित ही चाहते थे तब ‘रिपु’ यानी शत्रु क्यों कहा तथा अंततः मारे क्यों । अंगद को रावण के पास दूत भेजने का यह प्रसंग है । हनुमान जी ने रावण को सचेत कर दिया था “राम विरोध न उविरहु सरन विष्णु अज ईस । सु 56 । वन में रामजी से मिलने जाते समय भरत जी कहते हैं “अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा । अयो 182 | 3 ।” अंगद जी को भेजते समय रामजी चाहते हैं कि विभीषण का भाई होने के नाते रावण का हित होना चाहिये । अंगद जी ने भी भरपूर कोशिश की परन्तु रावण माना नहीं “सादर जनक सुता करि आगे । एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे । लं 19 | 4 ।”

प्रसंग 32 । ४ सुन्दर काण्ड का सुन्दर होने का क्या रहस्य है । 1 । जामवान जी ने कहा कि “राम काज लागि तव अवतारा । कि 29 | 3 ।” यह शरीर रामजी के काम के लिये है यह सुन्दर ज्ञान है । 2 । “राम काज करि फिरि में आवौं । सीता की सुधि प्रभु ही सुनावौं । सत्य कहउँ मोहि जाने दे माई । सु 1 | 2 ।” विध्न डालने वाली से चतुरतापूर्वक छुटकारा का उपाय सुन्दर है । 3 । राम काज सब करिहु तुम बल बुद्धि निधान । सु 2 । सुरसा का यह आशीष सुन्दर है क्योंकि भगवान का काम पूरा होने का सुनकर हनुमान जी प्रसन्न हो गये । 4 । अस में अधम सखा सुनु मोहु पर रघुवीर । किन्ह कृपा सुमरि गुण भरे विलोचन नीर । सु 7 । दो भागवतों का मिलना तथा रामजी की कृपा को याद कर आँख में जल भर जाना सुन्दर भक्ति है । 5 । रामचन्द्र गुण बरनै लागा । सुनतहि सीता कर दुख भागा । सु 12 | 3 । श्रवणामृत जेहि कथा सुनाई । सु 12 | 4 । भगवान के गुण एवं कथा सुन्दर हैं । 6 । बुझत विरह जलधि हनुमाना । भयहु तात मो कहु जलजाना । सु 13 | 1 । भाव है कि हनुमान जी विरह में डूबने से निकालने वाले आधार हैं । भक्त का आधार सुन्दर है । 7 । रघुपति बान कृसानु निसचर निकर पतंग सम ।जरहि निसाचर जानु । सु 15 । उदाहरण सुन्दर है तथा इस तरह का विश्वास सुन्दर है । 8 । आशीष दीन्ह रामप्रिय जाना । होहु तात गुण ज्ञान निधाना । सु 16 | 1 । अजर अमर गुणनिधि सुत होहु । सदा करहि रघुनायक छोहु । सु 16 | 2 । भगवान पर अचल विश्वास होना तथा उनपर ही निश्चिन्त रहने का भाव सुन्दर है । 9 । अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता । सु 16 | 3 । अपने को धन्य धन्य मानने का ज्ञान सुन्दर है । 10 । केतिक बात प्रभु जातु धान की । रिपुहि जीति आनिय जानकी । सु 31 | 2 । विह्वलता में इस तरह का ढाढस बंधाना चतुर एवं सुन्दर बुद्धिमानी है । 11 । सुनु कपि तोहि समान उपकारी । कोउ नहीं सुर नर मुनि तनुधारी । प्रति उपकार करौं का तोरा । सन्मुख होइ न सकै मन मोरा । पुनि पुनि कपिहि चितव सुर त्राता । लोचन नीर पुलकि अति गाता । सु 31 | 3 एवं 4 । सीता माता के आशीष से ही तत्क्षण रामजी के कृपागुण का सुन्दर विकास है । 12 । चरण परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत । सु 32 । हनुमान जी का सुन्दर समर्पण है । 13 । प्रभु पद पंकज कपि कर सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीशा । सु 32 | 1 । रामजी के चरणारविन्द पर हनुमान जी का सिर एवं उनके सिर पर भगवान के कर कमल को याद कर महादेव जी मग्न हो गये । सेव्य सेवक भाव सुन्दर है । 14 । कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा । कर गहि परम निकट बैठावा । जामवान जी का सुन्दर उपदेश “राम काज लागि तव अवतारा” यानी जन्म का फल भगवद् कैकर्य ही है । इसका फल मिल गया जब भगवान ने हनुमान जी को हृदय से लगाया । 15 । नाथ भक्ति अति सब सुख दायिनी । देहु भक्ति मोहि प्रभु अनपायिनी । सु 33 | 1 । भगवान ने पूर्व में कहा था कि मैं हनुमान से उद्धरण नहीं हो सकता इसलिये हनुमान जी द्वारा भक्ति के वर की मांग से भगवान के भार को कम कर देने का भाव सुन्दर है । यह सब सुन्दर काण्ड की सुन्दरता है ।

प्रसंग 33 । ४ “प्रभु पद पंकज कपि कर सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीशा । सु 32 | 1 ।” हनुमान जी पर रामजी की कृपा से महादेव जी क्यों प्रसन्न हुए । अच्छे लोग दूसरे के लाभ को अपना लाभ समझते हैं “पर दुख दुख सुख सुख देखे पर । उ 37 | 1 ।” कुछ लोग हनुमान जी को रूद्रावतार मानते हैं । महादेव जी इसीलिये प्रसन्न हुए

कि ग्यारहो रुद्र के सिर पर भगवान की ऐसी कृपा नहीं हुई जैसी हनुमान जी पर हुई। भगवान के कृतज्ञता एवं उदारता के गुण का अतिशय विकास देखकर महादेव जी अपने स्वामी के इस स्वभाव को याद कर मग्न हो गये।

प्रसंग 34। ४ “वरु अपयश सहतेउ जगमाहीं। नारि हानि विशेष छति नाहीं। लं 60।6।” विवाह के समय पति पत्नी एक दूसरे की छाया बनकर रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। अगर रामजी सीता जी को वन में नहीं लाते तो विवाह की प्रतिज्ञा भंग का अपयश होता। भाव है कि नहीं लाने से अपयश होता परन्तु लंका की लड़ाई का संयोग नहीं होता और वनवास काल में सीता जी की अनुपस्थिति से कोई विशेष क्षति नहीं होती। दूसरा भाव है कि लक्ष्मी जी के बिना भगवान रहते हैं परन्तु शेष जी के बिना नहीं रहते। सीता जी के कारण अगर लड़ाई नहीं करते तो सीता जी अंततः प्राण त्याग देती पर लक्ष्मण जी यानी शेष जी को खोने का अपयश नहीं मिलता।

प्रसंग 35। ४ “दीन जानि प्रभु निज पद दीन्हा। वा 208।3।” मारीच एवं सुबाहु जैसे बलवान पुत्र की माँ होने पर भी ताड़का को दीन क्यों कहा। पति के न रहने पर विधवा का जीवन दीन का जीवन है। पाप योनि होने पर भी भगवान ने उसे अपना लिया।

प्रसंग 36। क। ४ “अस्थि शैल सरिता नस जारा। रोमावली अष्टदस भारा। लं 14।4।” यद्यपि भार शब्द तौल एवं परिमाण वाचक है परन्तु प्रसंगवश यह संख्यावाचक है। इस पद से “द्वादश कोटि वृक्षवन लक्ष तीस सुन लीजै। सोरह सत अरू आठ एक तेहि भार गनीजै।” यानी 12,30,01,608 की संख्या को एक भार कहते हैं। कहा है कि “चार भार वन पुष्प चार फलफूल विराजै। षड़ बेली भू भार चार सिर कंटक राजै।” यानी पुष्पों की कुल जाति प्रकार की संख्या चार भार यानी 49,20,06,432 है। इसी तरह से फलों, लता, एवं कांटा की प्रजातियों की कुल संख्या चार भार, छः भार, एवं चार भार समझना चाहिये।

प्रसंग 36 ख। साधनालिका भेद शक्ति ‘षोडश भक्ति विधि’

आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शंखचक्रांकणं हरेः धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मंत्राणां परिग्रहः।

अर्चनं च जपो ध्यानं तन्नाम स्मरणं तथा कीर्तनं श्रवणं चैव वन्दनं पाद सेवनम्।

तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदित भोजनं तदीयानां च सेवा च द्वादशी व्रतनिष्ठितम्।

तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः भक्ति षोडशधा प्रोक्ता भवबन्ध विमुक्तये।

अर्थात् 1। गुरु से शंख चक्रांकित होना। 2। तिलक धारण। 3। गुरु से मंत्र ग्रहण। 4। पूजा अर्चना। 5।

मंत्र जाप। 6। भगवत ध्यान। 7। भगवत नाम स्मरण। 8। लीला कीर्तन। 9। भगवत कथा श्रवण।

10। भगवत वंदना। 11। भगवतचरण सेवा। 12। चरणामृत ग्रहण। 13। भगवत प्रसाद ग्रहण। 14। वैष्णव

सेवा। 15। व्रत करना। 16। तुलसी सेवा।

अष्टविध भक्ति ॥ मद भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम्। स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे दम्भवर्जनम्। मत्कथाश्रवणं प्रीतिः

स्वनेत्रांगेविक्तया। ममानुसरणं नित्यं यच्च मां नोपजीवति। अर्थात् 1। भक्तों से प्रेम। 2। पूजा में प्रसन्नता। 3।

अर्चना। 4। वैष्णवों का सम्मान। 5। कथा श्रवण। 6। रोमांच एवं ऑसू बहाना। 7। नाम स्मरण।

8। लीलागुण का मनन करते हुए जीवन बिताना।

नवविध भक्ति ॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमालनिवेदनम्। भा 7।5।23। यानी

1। कथा श्रवण। 2। लीला कीर्तन। 3। नाम स्मरण। 4। चरण सेवा। 5। पूजा। 6। स्तुति। 7। कैकर्य।

8। मित्रता या कोई सम्बन्ध रखना। 9। आत्मसमर्पण।

मानस की नवधा भक्ति ० अरण्य दो 34।4 से 35।3 तक ०

प्रथम भगति संतन कर संग। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा। 34।4।

गुरु पदपंकज सेवा तीसरि भगति अमान। चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान। दो 35।

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।

छठ दम शील विरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा। 35।1।

सातवें सम मोहि मय जग देखा। मोते अधिक सन्त पर लेखा।।

आठवें यथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहि देखइ पर दोषा। 35।2।

नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना। 35।3।

प्रसंग 37। “उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही। सु 48।3।” विभीषण जी की शरणागति का प्रसंग है। विभीषण जी के पूर्व की कौन सी कामना थी जिसका अंत हो गया। वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग के श्लोक 28 एवं 29 से स्पष्ट है कि भगवान ने इक्ष्वाकु कुलदेवता यानी श्रीरंगनाथ भगवान को विभीषण जी को देकर लंका विदा कर दिया था। रास्ते में कावेरी के निकट भगवान रुक गये लंका नहीं गये। विभीषण जी वहाँ पूजा करने आते थे। पूर्व के जन्मों से ही शरीर छोड़ने पर वैकुण्ठ में जाकर भगवान के चरण कमल की सेवा की कामना थी “तेहि मागेउँ भगवन्त पद कमल अमल अनुराग। मानस बा 177।” जब भगवान राम से साक्षात्कार हुआ तब वैकुण्ठनाथ यानी रामजी का चरणकमल मिल गया और पूर्व की वासना का अंत हो गया।

प्रसंग 38। “भवानीशंकरो वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्। मानस बाल काण्ड प्रारम्भ श्लोक 2।” श्रद्धा एवं विश्वास होने पर अन्तःकरण में व्याप्त विना रूप वाले अप्रत्यक्ष ईश्वर को आँखें कैसे देख सकती हैं। क्या रहस्य है। गुरु के उपदेश में श्रद्धा एवं विश्वास होने पर ईश्वर में भक्ति होती है और भक्ति होने पर भक्त के हृदय वाले व्यापक ब्रह्म मूर्तिमान हो जाते हैं। वन के रास्ते वाल्मीकि जी ने रामजी से कहा “तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक। अयो 127।4।”

प्रसंग 39। “जब सठ किन्ह राम कर निन्दा। मानसलंका 31।1।” अंगद जी रावण के दरबार में रामजी का दूत बनकर विराजमान हैं। रावण ने भगवान की निन्दा की। निन्दा का अर्थ यहाँ मिथ्या दोष यानी गलत आरोप लगाना है। रावण ने कहा “...बल प्रताप बुधि तेज न ताकें। लं 30।4।” जबकि मानस में बा का 291।1। में जनक जी का दूत राजादशरथ को धनुष यज्ञ का समाचार बताते समय कहता है “जाके बल प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।” रावण और भी गलत आरोप लगाता गया “अगुन अमान विचारि तेहि दीन्ह पिता वनवास। सो दुख अरु जुवती विरह पुनि निसि दिन मम त्रास। लं 31।” जिनके चरण कमल के लिए ब्रह्मा इन्द्र रुद्र तरसते हैं उन्हें अमान कहता है। “जाके डर अति काल डराइ। सो सुर असुर चराचर खाई। सु 21।5।” उनको डरा हुआ कहता है यही मिथ्या दोष है जो निन्दा के समान है।

प्रसंग 40। “औरो एक गुप्त मत सबहि कहउँ करजोर। संकर भजन बिना नर भक्ति न पावै मोर। उ 45।” क्या शिवजी के भजन बिना राम भक्ति नहीं मिल सकती है? क्या यही नियम है? इस संदर्भ में निम्नांकित ध्यानदेने योग्य है। 1। “तात भगति मम सब सुखमूला। मिलइ जो सन्त होहिं अनुकूला। मानस अर 15।2।” भगवान राम लक्ष्मण जी को समझा रहे हैं कि सन्तों के माध्यम से ही हमारी भक्ति मिलती है। ध्रुव एवं प्रह्लाद के उदाहरण इसके प्रमाण हैं। 2। “अविरल भक्ति विशुद्ध तव श्रुति पुराण जो गाव। जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद जो पाव। मानस उ 84 क।” कागभुसुन्दी जी ने कहा है कि भगवान की प्रसन्नता से भक्ति मिलती है। पुनः वे ऐसे

ही भक्ति का वर भगवान से मांगते हैं “सोइ निज भक्ति मोहिं प्रभु देहु दया करि राम | मानस उ 84 | ख |” और भगवान इसकी पुष्टि करते हैं “एवमस्तु कहि रघुकुलनायक | मानस उ 84 | 1 |”

| 3 | कागभुसुन्डी जी के लिये लोमस ऋषि का भी ऐसा ही वचन है “राम भगति अविरल उर तोरे | बसहि सदा प्रसाद अब मोरे | | मानस उ 112 | 8 |” संत की प्रसन्नता से भक्ति दृढ़ होने का प्रमाण है। 4 | गरुड़ जी को कागभुसुन्डी जी ने कहा कि भक्तिरूपी मणि रामजी की कृपा से ही मिलती है। “सो मनि जद्यपि प्रगट जग अहई | राम कृपा बिनु नहीं कोई लहई | मानस उ 119 | 6 |” | 5 | भक्ति मणि कैसे मिलती है और इसमें सन्त कृपा की आवश्यकता है “भाव सहित जो खोजइ प्रानी | पाव भगति मनि सब सुख खानी | मानस उ 119 | 8 |” “सब कर फल हरि भगति सुहाई | सो बिनु सन्त न काहूँ पाई | 119 | 9 |” “अस विचारि जो कर सतसंगा | राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा 119 | 10 |” | 6 | राम की कथा सुनने से भक्ति मिलती है “मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास | जे यह कथा निरन्तर सुनिहिं मनि विश्वास | मानस उ 126 |” | 7 | भरद्वाज मुनि ने भरत जी से अयोध्यावासियों की स्वाभाविक भक्ति का संकेत किया है “राम भगति अब अमिय अगाधू | किन्हेसु सुलभ सुधा सब काहू | अयो 208 | 3 |” | 8 | अन्य सभी साधनों से अर्जित पुण्य से भक्ति बदली जाती है जैसा शरभंग जी के साथ हुआ “जोग यज्ञ तप ब्रत कीन्हा | प्रभु कह देई भगति वर लीन्हा | अर 7 | 4 |” | 9 | सुतीक्ष्ण जी स्वाभाविक भक्ति के उदाहरण हैं “अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई | प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई | अर 9 | 7 |” | 10 | जटायु जी ने अविरल भक्ति का वर मांगा “अविरल भक्ति मांगी वर गीध गयेउ हरि धाम | अर 32 |” | 11 | हनुमान जी को सीता जी ने भक्ति का आशीर्वाद दिया “भगति प्रताप तेज बल खानी | आशिष दीन्ह रामप्रिय जानी | सु 16 | 1 |” | 12 | हनुमान जी ने भगवान से भी भक्ति मांगी “नाथ भगति तव सब सुखदायिनी | देहु कृपा करि सो अनपायनी | सु 33 | 1 |” | 13 | नारद जी ने रामजी से ही भक्ति मांगी “राका रजनी भक्ति तब राम नाम सोई सोम | अपर नाम उडगन बिमल बसहु भक्त उर ब्योम | | एवमस्तुमुन सन कहेउ..... | अर 42 |”

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से सिद्ध होता है कि भक्ति का कारण शंकर भजन नहीं है वल्कि शंकर शब्द ‘शम् कल्याणं करोति इति शंकरः’। अर्थात् राम नाम तस्य भजनम् तेन विना भक्तिः न भवति। राम नाम के विना भक्ति नहीं मिलती है। संदर्भित दोहा में ‘गुप्त’ श्रीरामजी के अवतार का द्योतक है। “गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गये जान सब कोई | वा 48 |” दोहा का अर्थ है कि शंकर अर्थात् कल्याण करने वाला जो हमारा राम नाम है उसके भजन विना हमारी भक्ति कोई नहीं पा सकता है। यह भी एक गुप्त रहस्य है।

प्रसंग 41 : “कहिये न सठहि हँठहि हठ सीलहीं | नहिं मन लाय सुनिहिं हरि लीलहीं | उ 127 | 2 |” इन चारों से भगवान की कथा कभी नहीं कहने का क्या रहस्य है। कारण कि जब तक वेद ब्रह्मा अन्य देवगण तथा मुनि लोग तक सीमित था तो वे लोग उसके माध्यम से भगवत धर्म ही बताते थे परन्तु जब राक्षस एवं दैत्य लोगों ने भी वेद पढ़ा तो उनलोगों ने पाषण्ड मत का जन्म दिया “भयउ यथा अहि दूध पिलाये | उ 105 | 3 |” यानी सर्प दूध पीकर विष ही बनाते हैं। इसीलिये रामकथा अनधिकारी के लिये नहीं है वे रामजी को प्राकृत राजपुत्र ही मान लेंगे। “जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः | गी 4 | 9 |” न तस्य प्राकृतमूर्तिः मांसमेदोस्थिसंभवा | |”

यहाँ से अंत तक के सभी प्रसंगों पर प्रश्न गोपाल पुर निवासी वैद्य माधवाचार्य जी द्वारा पूछे गये थे।

प्रसंग 42 : “तेहि अवसर तापस एक आवा | तेज पुंज लघु वयस सुहाबा | | कवि अलखित गति बेष बिरागी | मन कम बचन राम अनुरागी | अयो 109 | 4 |” भगवान के जंगल के रास्ते भरद्वाज जी के दर्शन के बाद आगे की ओर चित्रकूट की तरफ जा रहे हैं। रास्ते में कौन तपस्वी मिलने आये यही रहस्य है। कोई कोई कहते हैं कि यह

चौपाई क्षेपक हैं जो मूल में नहीं थे। कुछ अन्य का कहना है कि तापस हनुमान जी थे तो कुछ कहते हैं अग्नि तापस वेष में आये थे। वास्तविक रहस्य है कि तुलसीदास जी के क्षेत्र से होते हुए भगवान वन के रास्ते में थे तो तुलसीदास जी ने अपने पिता का मानसिक स्मरण किया और वे भगवान के दर्शन स्वागत को प्रकट हो गये। पिता जी तो वैकुण्ठ में सदा किशोरवस्था में रहने वाले मुक्तों की तरह भगवद् कैंकर्य में थे इसीलिये उसी रूप में आये और भगवान का दर्शन किया। जैसे प्रह्लाद जी ने अपने पिता के लिये भी कल्याण मांगा तो भगवान ने “.....कुले जातो भवान् वै कुल पावनः। भा 7 | 10 | 18।” उनके कारण संपूर्ण कुल को पावन पवित्र कर दिया उसी तरह तुलसीदास जी के कारण पिता जी उनकी ईच्छा के अनुसार रामजी के पास आ गये। कुल की प्रशंसा का दोष नहीं लगे इसलिये तुलसीदास जी ने नाम नहीं खोला।

प्रसंग 43 : “मंत्री विकल विलोकि निषादू। कहि न जाय जस भयउ बिषादू।। अयो 141 | 4। तुम पंडित परमारथ ज्ञाता। धरहु धीर लखि विमुख विधाता।। विविध कथा कही कही मृदु वानी। रथ वैठारेउ बरबस आनी। अयो 142 | 1 तथा 2।” जब भगवान नहीं लौटे तब सुमंत जी को निषादराज ने गंगा किनारे अनेकों कथा कह समझाकर लौटाया। वे कथायें क्या थीं यही रहस्य है। अज्ञानी लोग सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होते हैं “सुख हरषहि जड़ दुख बिलगाही। दोउ सम धीर धरहि मनमाही।। अयो 149 | 4।” राजा सगर ने एक ही साथ साठ हजार पुत्र खोकर भी धैर्य नहीं खोया। राजा हरिश्चन्द्र सत्य से विचलित नहीं हुए। राजा मयूरध्वज ने अपने हाथ अपने पुत्र का मस्तक चीर डाला। पिता की आज्ञा पूरीकर रामजी चौदह साल वन में बिताकर लौटेंगे। अतः आप धैर्य धरें एवं अयोध्या लौट जायें। रामजी को दुःख सुख का द्वन्द नहीं है। जंगल में उनको कोई दुःख नहीं है। वे परमात्मा हैं “राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना। बा 115 | 4। सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई। बा 116 | 3।”

प्रसंग 44 : “अंगद कहे जाउँ मैं पारा। जिय संशय कहु फिरती बारा।। कि 29 | 1।” यहाँ ‘कहु’ शब्द के अनेकों भाव हैं। कहते हैं कि रावण एवं बाली में पूर्व में तो वैर था परन्तु बाद में मित्रता हो गयी थी। तारा एवं मन्दोदरी में भी आपस में बहुत प्रेम था। अंगद को सन्देह हुआ कि कहीं उनके स्नेह में मैं वहाँ से लौट नहीं सकूँ। ऐसी भी कथा है कि अक्षयकुमार को शाप था कि समुद्र के उत्तर जाने पर अंगद के हाथ उसका बध होगा। इसीतरह अंगद के लिये था कि समुद्र के दक्षिण अक्षय उन्हें मार देगा। एक और बात है कि सीताजी की खोज के लिये चलते समय रामजी ने अंगूठी हनुमान जी को दी थी तब सागर पार जाना मेरा अनाधिकार प्रयास एवं प्रयत्न है “पाछे पवनतनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा।। परसा सीस सरोरूह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।। बहु प्रकार सीतहि समुझायहु। कहि बल विरह वेति तुम आयहु।। कि 22 | 5 एवं 6।”

प्रसंग 45 : “नर बानर हि संग कहु कैसे। कही कथा संगति भये जैसे। मु 12 | 6।” यह चौपाई अशोक वाटिका में सीता जी एवं हनुमान जी के संवाद का है। इस चौपाई के पूर्व चौपाई 3 में ही है “.....। आदिहु ते सब कथा सुनाई।” तब नर एवं बानर का आपस में मिलान कैसे हुआ इसका प्रश्न कैसे उठा। यह हनुमान जी की परीक्षा का समय है। नर एवं बानर शब्द का प्रयोग शुद्ध हृदय से हुआ है कोई दुर्भावना नहीं है। हनुमान जी ने अपने जन्म की कथा सुनाई जो माता अंजना ने उन्हें बतायी थी। उनके पिता को संतान की सम्भावना नहीं थी। भगवान वेंकटेश्वर ने अंजना को दो हजार वर्ष तक आराधना कराने के बाद हनुमान जैसा एक पुत्र दिया। अंजना माता को अपने पर गर्व था कि कयाधु सुमित्रा तथा सुनीति की तरह उनका भी पुत्र भगवद् भक्त है। किसी कुँए में बच्चे को गिर जाने के बाद उसकी माता उसको बचाने हेतु कुँए में कूद जाती है। उसी तरह भगवान जीव के उद्धार हेतु दिव्यसूरी से सेवित परमव्योम त्रिपादविभूति छोड़कर अवधपुरी में

अवतार लिये “.....देत ईश बिनु हेतु सनेही । उ 43 । 3 ।” जीवों पर भगवान का प्रेम अकारण स्वयंमेव ही होता है । रामजी विष्णु तथा हनुमान जी नित्य पार्षद हैं । अंगद जी ने रावण को डांटा “कस रे सठ हनुमान कपि..... । लं 26 ।” यानी हनुमान कोई साधारण बानर नहीं हैं वे भगवान के परमप्रिय पार्षद हैं ।

6 । महाप्रयाण (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी (चतुर्थ खण्ड) ।

भगवान के चरणारविन्द ही इस संसार सागर से पार करने की नाव है । भक्तलोग भगवान की षड्विध¹ शरणागति लेकर उनके चरणारविन्द के सहारे इस संसार को गोपद की तरह लांघ जाते हैं ।

“त्वयि अम्बुजाक्ष अखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशित चेतसैके ।

त्वदपादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् । ।

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।

भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् । । भा 10 । 2 । 30 एवं 31 । ”

श्री परमहंस जी महाराज तीसरी बार सम्पूर्ण भारत के तीर्थों की पैदल यात्रा कर तरेत में विराजते रहे तथा भक्तों को सतत कालक्षेप में भगवान के चरण को परम आश्रय मानने का उपदेश करते रहे । गुरु के वचन ही भक्तों के लिये नौका का काम करते हैं । वे पापान्तर यानी श्रुति स्मृति से विरुद्ध आचरण तथा उपायान्तर यानी भगवान को छोड़ अन्य पर भरोसा रखना एवं तीन तरह के मनुष्य देहाभिमानी धनाभिमानी तथा जनाभिमानी की संगति से दूर रहने का परामर्श देते रहे ।

श्रीरंग करिशैलमज्जनगिरौ शेषाद्रि सिंहाचलम् । श्रीकुर्म पुरुषोत्तमञ्च बदरीनारायणं नैमिषम् ।

श्रीमद्वारवती प्रयाग मथुरा अयोध्या गया पुष्करम् । शालिग्रामनिवासिनो विजयते रामानुजोऽयं मुनिः । ।

श्रीरामानुज स्वामी के बाद श्री वरवरमुनि स्वामी ने अष्टगद्दी की स्थापना की जिसमें एक अण्णन गद्दी है जो गोवर्द्धन गद्दी भी कहा जाता है और यह वृन्दावन में है । इसी गद्दी के पीठाधीश्वर श्रीरंगदेशिक स्वामी ने श्रीरंगमन्दिर बनवाया और उन्हीं के कृपाशास्त्र शिष्य श्री राजेन्द्रसूरि परमहंस स्वामी जी तरेत में पधारकर श्रीवैष्णव धर्म के सबल संरक्षक हुए ।

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय का यही नियम है कि भगवान की सन्निधि में जाकर कहा जाता है कि 'श्रीमन्नारायण स्वामिन् शठकोपं प्रदेहि मे' । भगवान के चरणकमल श्रीशठकोप स्वामी हैं । भगवान से प्रार्थना में उनका चरणकमल माँगा जाता है जो भक्तों का उपजीव्य है । श्रीशठकोप स्वामी की सन्निधि में जानेपर 'रामानुजं प्रदेहि त्वं शठकोप मुनीश्वर' ऐसा कहा जाता है । अर्थात् हे शठकोप स्वामी आप मुझे श्रीरामानुज स्वामी को दीजिये । श्रीशठकोप स्वामी के चरणकमल श्रीरामानुज स्वामी हैं । जब श्रीरामानुज स्वामी की सन्निधि में जाते हैं तो कहते हैं कि 'हे रामानुज सौम्यजामातृ वरवर मुनिं देहि' अर्थात् हे रामानुज स्वामी मुझे सौम्यजामातृवरवर मुनि दीजिये जो श्रीस्वामी रामानुज स्वामी के चरण कमल हैं । श्रीवरवरमुनि स्वामी का चरणकमल 'मामका देशिका स्युः' अपने आचार्य माने जाते हैं । इस प्रकार इस सम्प्रदाय के रक्षणहेतु भगवान से लेकर अपने आचार्य तक की रक्षकों की परम्परा श्रृंगबलावद्ध है । ”

श्री परमहंस स्वामी जी के दैनिक कार्यकलाप एवं भक्तों के साथ कालक्षेप में यह स्पष्ट होने लगा था कि वे वैकुण्ठ में भगवान के दर्शन को अतिशय लालायित दिख रहे हैं ।

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसिपरे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेमनगरे ।

महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरेसमासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम् । । वैकुण्ठ स्तव 1 । हे भगवन् ! वह समय कब आयेगा जब प्रकृति मण्डल आवरण से परे अति विस्तृत विरजा नदी के पार आरंगहृद सरोवर से परे चित्रविचित्र मणियों से जटित परम मनोहर सुवर्णपुरी श्रीवैकुण्ठ महानगर में अत्यंत रमणीय सर्वोच्च स्थान श्रेष्ठमणियों से प्रकाशित रत्नमणि मंडप में सहस्र फणयुक्त शेष शय्या पर नित्यमुक्तों से सम्मिलित होकर मुख से बैठे हुए आपके दोनों चरणकमलों की परिचर्या मैं करूँगा ।

¹ अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम् । रक्षतीति च विश्वासः गोप्यत्ववरणं यथा । आत्मनिक्षेप कार्पण्यम् षड्विधा शरणागतिः । ।

² भा 10 । 2 । 30 यानी श्रीमद्भागवत महापुराण स्कंध 10 अध्याय 2 श्लोक 30

महासिन्धोः नीरे विगत कलुषो दिव्य गुणको हरे सदगात्रोऽमानव परिसरेऽलंकृत तनुः ।

भवेयं संश्लाघ्योऽभरनिकरसम्मानित भवन् । कदाहं संरुद्धो वर गरुडयाने समचरन् । । वैकुण्ठ स्तव 2 । हे हरे ! कब वह समय आवेगा जब मैं लीलाविभूति से छूटकर विरजा नदी के जल स्पर्श से सूक्ष्म प्रकृति एवं सूक्ष्म वासना रहित दिव्यगुण युक्त होकर आपके दिव्यविग्रह अमानव भगवान की सन्निधि में दिव्य वस्त्र एवं आभूषण से अलंकृत होकर नित्यमुक्तों से सम्मानित गरुडयान से आपके चरणों में पहुँचूँगा ।

द्रक्ष्यामिनूनं सकोपलनासिकं स्मितावलोकारुणञ्जलोचनम् ।

मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः । । भा 10 । 38 । 9 । । अकूर जी भगवान को मथुरा पधारने के लिये निमंत्रण लेकर वृन्दावन पहुँच रहे हैं तथा मन ही मन भगवान के सुन्दर नाक से सुशोभित झूलते वालों के गुच्छे वाले मुस्कराते मुखमंडल के दर्शन होने को निश्चित मानते हैं क्योंकि वे मृगों को अपने से दाहिने जाते देखते हैं ।

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।

रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्षे ममासन् उषसः सुदर्शनाः । । भा 10 । 38 । 14 । लक्ष्मी से सुशोभित तीनों लोक के आश्रय एवं गुरु जिनके सुन्दर स्वरूप के दर्शन से आँखें महोत्सव मनाती हैं के आज शुभदर्शन को अकूर जी अपने जीवन की आनेवाली सभी उपाकाल को मंगलमय मानते हैं ।

अपि अङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्य धास्यन् निज हस्त पङ्कजम् ।

दत्त अभयं काल भुजाङ्ग रहंसा प्रोद्धेविजितानां शरणैषिणां णृनाम् । । भा 10 । 38 । 16 । जब मैं उनके चरणों पर अपना माथा रखूँगा तो समय रूपी काल से निडर बनाने वाले सुकोमल हाथ वे हमारे माथे पर रखेंगे ।

वि संवत् 1972 यानी ई सन् 1915 के वैशाख मास के प्रारंभ में परमहंस स्वामी जी ने अपने प्रियतम शिष्य श्रीपराङ्कुशाचार्य जी को जो बाद में सरौती स्थानाधीश हुए बताया कि आतिवाहिक परमपद में ले जाने के लिये आने लगे हैं । श्रद्धालु भक्तों को व्याकुल होते देख स्वामी जी सबों को यही बताते थे ‘तरेत ही तीर्थ राज है तथा राघवेन्द्रभगवान ही उभयविभूति नायक हैं । मात्र एकात्मिक निष्ठा चाहिये ।’ परमहंस स्वामी के मुख से दिन में दो तीन बार तुलसीदास जी के पद के गुण गुनाने की ध्वनि मिलने लगी थी ।

“कबहि दिखाइहों हरि चरण ।

समन सकल कलेस कलिमल सकल मंगल करन ।

सरदभव सुन्दर तरुणतर अरुण वारिज बरन ।

लच्छिलालित ललित करतल छवि अनूपम धरन ।

गंग जनक अनंग अरिप्रिय कपट वटु बलि छरन ।

विप्रतिय नृग बधिक के दुख दोष दारुन हरन ।

सिद्ध सुर मुनि वृन्द वन्दित सुखद सब कह सरन ।

सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन तरन ।

कृपासिन्धु सुजान रघुवर प्रणत आरत हरन ।

दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन । विनय पत्रिका 218 ।”

एक दिन परमहंस स्वामीजी का आदेश हुआ और नाव की व्यवस्था से इनके साथ छः श्रीवैष्णव जन 1 । पं श्री रामसुन्दर जी । 2 । श्री सीताराम जी आलवार तिरुनगरी निवासी । 3 । श्रीकमलनयन जी पुजारी जिला कानपुर । 4 । श्री नन्दकिशोर जी । 5 । श्री माधव जी विद्यार्थी गाजीपुर जिला निवासी । 6 । श्री पराङ्कुशाचार्य जी लेखक सरौती स्थानाधीश । 6 । अहिरौली ग्राम के एक श्रीवैष्णव नहर के रास्ते सोन नदी के लिये प्रस्थान कर गये । जाने के पूर्व परमहंस स्वामी जी ने राघवेन्द्र भगवान के सामने प्रणिपात करते हुए कहा ‘दास से आपका मन्दिर नहीं बन सका । अब अपने भक्तों से बनवा लीजियेगा ।’ उस दिन नाव गंगा के रास्ते दीघा से थोड़ी दूर पश्चिम चलकर रात्रि विश्राम के लिये रुक गयी । बालुका की ऊंचीवेदी पर चांदनी तानी गयी तथा स्वामी जी महाराज ने अन्य श्रीवैष्णवों को तदीयाराधन का आदेश दिया परन्तु स्वयं तीर्थ ही ग्रहण किये तथा भगवान की कथा सुनाने के बाद शयन का आदेश मिला । दूसरे दिन के नित्यक्रिया के बाद नाव गंगा के उत्तरी छोर से पश्चिम को बढ़ने लगी । कामवन के क्षेत्र में जहाँ महादेव जी ने कामदेव को जलाया था संतमहात्माओं की सेवा में अन्नादि दिया गया । पुनः वहाँ से बढ़कर नाव नृसिंह क्षेत्र हल्दी छपरा पहुँची । यहाँ भगवान के लिये

मध्याह्नकाल के तदीयाराधान का आदेश हुआ। श्रीवैष्णवजन प्रसाद बनाकर भगवान को अर्पित किये परन्तु परमहंस स्वामी जी ने अल्पमात्र वेल फल का प्रसाद ही ग्रहण किया। यहाँ से नाव आगे बढ़ी और संध्या में गंगा सरयू के संगम पर जाकर टिकी। रात्रि में भगवान का तदीयाराधन हुआ परन्तु परमहंस स्वामी जी ने मात्र तीर्थ ही ग्रहण किया। भगवद कथा के बाद विश्राम हुआ। ब्राह्ममुहूर्त में परमहंस स्वामी जी के मुखारविन्द से कुरेश स्वामीकृत 'अतिमानुष स्तव' की स्तुति की ध्वनि सुनाई पड़ी जो धीरे धीरे मन्द होती गयी।

वज्रध्वजाङ्कुश सुधाकलशातपत्र

पङ्केरूहांक परिकर्मपरीतमन्तः।

आपादपङ्कज विश्रृङ्खल दीप्रमौलेः

श्रीरङ्गिणश्चरणयोर्युगं आश्रयामः॥।

बादमें द्वयमंत्र के उच्चारण के साथ कपालभेदन का शब्दगूँज उठा। संवत् 1972 के मीन के सूर्य में वैशाख कृष्णपक्ष षष्ठी सोमवार ज्येष्ठा नक्षत्र तदनुसार 5 अप्रैल ई सन् 1915 के ब्राह्ममुहूर्त में परमहंस स्वामी जी ब्रह्मरंध के मार्ग से निकलकर परमपद में श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान के चरणों की सेवा के लिये महाप्रयाण कर गये। महर्षि हारीत के वचनानुसार "केशवार्पितसर्वाङ्ग शशिभं मंगलाद्वयम्। न वृथा दाहयेद्विद्वान् ब्रह्ममेधविधिं विना।" उनके पार्थिव शरीर का ब्रह्ममेध संस्कार से दाह किया के पश्चात् नारायणबली श्राद्ध तथा आचार्य सम्मेलनादि पूरा किया गया। अब श्री परमहंस स्वामी जी महाराज इस संसार में नहीं रहे किन्तु उनके बताये मार्ग असंख्य जीवों के उद्धार के लिये पर्याप्त हैं।

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि.....

(श्री स्वामी जी की पुस्तकें भाग 2)

7। श्रीसीताराम परिचय व मानस शंका समाधान ।

स्वामी जी महाराज की आज्ञा से सेवा सुमन के रूप में इस पुस्तक का प्रकाशन डा कुञ्जविहारी शर्मा ओबरा ने भद्रेनी प्रेस वाराणसी से छपवाकर किया । 148 पृष्ठ की इस पुस्तक के मुखपृष्ठ को वाला जी का सुन्दर चित्र सुशोभित कर रहा है । डा कुञ्जविहारी शर्मा जी के 'दो शब्द' के बाद पुस्तक के विषय वस्तु : 1। यह क्यों? 2। भूमिका । 3। मुद्रण शुद्धि सारणी । 4। रामजी विष्णु भगवान हैं पृ 1 । 5। रामायण में क्या है? पृ 18 । 6। रामायण शब्द की व्युत्पत्ति पृ 19 । 7। रामायण में द्वय मंत्र पृ 24 । 8। रामायण द्वारा अर्थपञ्चक पृ 26 । 9। अनन्यताकिञ्चनता पृ 27 । 10। मानस के 24 चुने हुए विशेष प्रकरण पृ 29 से 148 तक ।



प्रमाण में लिये गये ग्रन्थों की सूची 'दो शब्द' के पहले ही पुस्तक के प्रारम्भ में दी गयी है : 1। सामवेद भाष्य । 2। नारदीय पुराण । 3। वाराह पुराण । 4। आदि पुराण । 5। अग्नि पुराण । 6। ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण खण्ड । 7। विष्णु पुराण पराशर कृत । 8। पद्म पुराण । 9। ब्रह्म पुराण । 10। मत्स्य पुराण । 11। विष्णुधर्मोत्तर पुराण व्यासकृत । 12। कूर्म पुराण । 13। श्रीमद्भागवत पुराण । 14। ईश्वर संहिता । 15। बृहद् हारीत संहिता । 16। बृहद् ब्रह्म संहिता । 17। स्कन्द पुराण । 18। महाभारत शान्तिपर्व । 19। हरिवंश विष्णुपर्व । 20। वैकुण्ठ वर्णन । 21। वाल्मीकि रामायण । 22। अध्यात्म रामायण । 23। तुलसीकृत रामायण । 24। हनुमान नाटक । 25। ब्रह्माण्ड पुराण ।

शुरू में ही चार पृष्ठों में शुद्धि सारणी दी गयी है ।

यह क्यों? : श्रीस्वामी जी महाराज ने इसमें बताया है कि यद्यपि वाल्मीकि रामायण तथा तुलसीकृत रामायण में श्रीरामचन्द्र जी के लिए 'परब्रह्म' 'परमात्मा' 'ईश्वर' आदि अनेक पर्यावाचक शब्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु पापात्मा लोग रामजी को प्राकृत मनुष्य या राजकुमार मानते हैं । जब यह विषय मेरे सामने आया तो वाल्मीकि रामायण एवं अन्य ग्रन्थों से वस्तु तथ्य संग्रह किया जो रामजी को भगवान के ऐश्वर्य से युक्त बताते हैं ।

भूमिका : भगवान राम के बारे में कई तरह की मान्यतायें हैं । कुछ लोग रामजी को प्राकृत मनुष्य मानते हैं जबकि कुछ लोग इन्हें ईश्वर का अवतार मानते हैं । कुछ अन्य लोग इन्हें अवतारी मानते हैं यानी विष्णु आदि इन्हें से अवतार लिये हैं ऐसा मानते हैं । इसी तथ्य का निर्णय इस पुस्तक का विषय वस्तु है । ईश्वर के अनन्त नाम हैं परन्तु इनसे व्यक्तित्वबोध में कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि एकही ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं । तत्त्वद्रष्टा ऋषियों ने मत्स्य कूर्मादि अवतार की नारायणादि नाम से स्तुति की है । श्रीरामजी को 'भवान्नारायणो देवः' कहा है । वराह भगवान को 'वयमीश निवृत्ताः' कहा है । मत्स्यावतार को 'नूनं त्वं भगवान् साक्षात् हरिनारायणोऽव्ययः । अनुग्रहाय लोकानां धत्सेरूपं जलौकसाम् । अर्थात् नाम रूपों में भेद रहते हुए भी ईश्वर तत्त्व सर्वों में एक ही रहता है । वेद की

संहिताओं तथा अन्य ग्रन्थों में ईश्वर की सर्वव्यापकता को विष्णु शब्द से सम्बोधित किया है। कहीं कहीं वायु एवं इन्द्र के लिए भी विष्णु शब्द का प्रयोग हुआ है। मुक्तजीव को भी विष्णु कहा है 'स विष्णुरेव भवति' इत्यादि।

श्रीसीताराम परिचय :

पुस्तक के प्रारम्भ के 10 पृष्ठों में विभिन्न ग्रन्थों के उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि नारायण विष्णु तथा राम एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। स्थानाभावके कारण पुस्तक के कुछ ही उद्धरण दिये जा रहे हैं। सभी के लिये मूल पुस्तक देखा जाय। यथा:

“देवो नारायणः साक्षाद्रामो ब्रह्मदि वन्दितः। प्रद्युम्नो भरतो भद्रे शत्रुघ्नो ह्यनुरुद्धकः।। नारदीय पु उ ख अ 75।” हे भद्रे ब्रह्मादि देवों की प्रार्थना पर नारायण ही राम हुए। प्रद्युम्न भरत हुए तथा अनिरुद्ध शत्रुघ्न हुए।

“जामदग्नेय रामेण त्वया भूत्वा सकृत्प्रभो। पुनश्च रावणो रक्षः क्षपितं क्षात्रतेजसा। वाराह पु अ 1।” हे प्रभो आपने एकवार परशुराम होकर दुष्ट क्षत्रियों का नाश किया तथा पुनः राम होकर क्षात्र तेज से रावण का नाश किया।

“तस्यपुत्र स्वयं जज्ञे रामनामा महाबली। चतुर्धा सो अव्ययो विष्णुः परितुष्टो महामुने।” हे महामुने स्वयं अव्यय विष्णु ही यज्ञ से सन्तुष्ट होकर महाबली राम लक्ष्मणादि चार रूपों से व्यक्त हुए। “चित्रकूटे गिरौ विष्णुः राघवश्च प्रकीर्त्यते”। चित्रकूट के ऊपर जो विष्णु हैं वही राघव भी कहलाते हैं।

वाल्मीकि रामायण के कुछेक प्रसंग :

वा रा बाल काण्ड सर्ग 15: “एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपायतो महाद्युतिः। शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः। वा रा बाल 15। 16¹।” महाप्रकाशमान शंख चक्र गदा आदि आयुधों से सुशोभित पीताम्बरधारी जगत्पति विष्णु प्रकट हुए। देवताओं ने विनती की “त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णोः लोकानां हितकाम्यया। श्लो 18।” लोक हित के लिये आपको नियुक्त करना चाहता हूँ। “अबध्यं दैवतैर्विष्णोः समरे जहि रावणम्। श्लो 21।” देवताओं से न मारा जाने वाले रावण का आप नाश करें। “एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान्। श्लो 29।” देवों को ऐसा ही वर देकर विष्णु अन्तर्ध्यान हो गये।

वा रा बाल काण्ड सर्ग 16: “स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्रय च पितामह। श्लो 10।” पितामह ब्रह्मा को बुलाकर विष्णु ने कहा।

वा रा बाल काण्ड सर्ग 17: “पुत्रत्वं तु गते विष्णो राज्ञस्तस्य महात्मनः। श्लो 1।” विष्णु भगवान के राजा दशरथ के पुत्र रूप में अवतीर्ण होने पर ब्रह्मा ने देवताओं से कहा “विष्णोः सहायबलिनः सृजध्वं कामरूपिणः। श्लो 2।” भगवान विष्णु की सहायता के लिए बलवान एवं स्वेच्छानुसार रूप धरने वाले प्राणियों की सृष्टि कीजिये।

वा रा बाल काण्ड सर्ग 76 : परशुराम जी भगवान को कहते हैं “अक्षयं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्। श्लो 17।” हे राम आपका क्षय न हाता है तथा देवताओं के नाश हैं एवं मधुदैत्य का नाश करने वाले हैं यह मैं जानता हूँ।

वा रा अयोध्या काण्ड सर्ग 1 : “स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः। अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः। श्लो 7।” वह सनातन विष्णु देवताओं की प्रार्थना पर रावण के वध के लिये अवतीर्ण हुए हैं।

वा रा अरण्य काण्ड सर्ग 1 : “शरण्यं सर्वभूतानां सुसंसृष्टाजिरं सदा। श्लो 3।” “दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्ष यः। श्लो 10।” सभी प्राणियों को शरण देने वाले रामजी को देखकर दिव्यज्ञान से सम्पन्न मुनिलोग स्वागत के लिये तैयार हुए। सर्ग 5। “अक्षय नरशार्दूलमयालोकाः जिताश्शुभाः। ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान्। श्लो 31।” शरभंग मुनि ने रामजी से कहा कि ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक को जीतकर आपको समर्पण करता हूँ आप

¹वा रा बाल 15। 16। वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड सर्ग 15 श्लोक 16।

स्वीकार करें। “अहमेव आहरिष्यामि सर्वलोकान् महामुने। श्लो 33।” मैं सबलोकों को स्वयं ग्रहण करूँगा। सर्ग 74। “चक्षुषा तव सौम्येन पूतास्मि रघुनन्दन। गमिष्याम्यक्षयान्लोकांस्वत्प्रसादादरिन्दम। श्लो 13।” शवरी ने भगवान से कहा कि आपकी दृष्टि पड़ते ही मैं पवित्र हो गयी हूँ और आपके कृपाप्रसाद से मैं अब अक्षय लोक को प्राप्त करूँगी।

वा रा किष्किन्धा काण्ड सर्ग 4। “सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुराः। श्लो 20।” लक्ष्मण जी हनुमान जी को कहते हैं कि रामजी पूर्व में सबों के शरण देने वाले रहे हैं। सर्ग 15। “निवासवृक्ष साधूनां आपन्नानां परागतिः। श्लो 19।” साधुओं एवं आपदग्रस्तों के आश्रय हैं। “गुणानामाकरो महान्। श्लो 21। गुणों के खान हैं।” सर्ग 24। “तमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधार्मिकश्च। अक्षय्यकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः। श्लो 31।” तारा कहती है कि आपका वेद भी पार न पा सकते तथा अन्यगुणों से सम्पन्न पृथ्वी के समान क्षमाशील हैं।

वा रा युद्ध काण्ड सर्ग 117। ब्रह्मा जी ने लंका में भगवान की स्तुति करते हुए कहा “भवन्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुध प्रभुः। श्लो 13। सभी आयुध वाले नारायण हैं।” “अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव। श्लो 14। आप कभी न नाश होने वाले सत्य स्वरूप हैं। आपका आदि अन्त नहीं है।” “विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः। 15।” “विष्णुः कृष्णश्चैव। 16।” “उपेन्द्रो मधुसूदनः। 17।” इसी तरह से युद्ध काण्ड के सर्ग 27 आदि सर्गों से उद्धरण दिये गये हैं जो नारायण विष्णु तथा राम राघव के पर्यायवाची हैं। सर्ग 114। “मानुषं वपुरास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः।। “शंखचक्रगदाधरः।।”

वा रा उत्तर काण्ड सर्ग 110। ब्रह्मा ने रामजी को वैकुण्ठ में जाते समय कहा “आगच्छ विष्णो भद्रं ते। श्लो 8।” “वैष्णवीं तां महातजो। श्लो 10।” “विवेश वैष्णवं तेजः। श्लो 12। रामजी विष्णु के तेज में प्रवेश कर गये।” “ततो विष्णुमयं देवं ...। श्लो 13। सभी देवता विष्णुमय रामजी की पूजा करने लगे।” “अथ विष्णु महातेजाः...। श्लो 16। भगवान ने ब्रह्मा से साथ पहुँचने वालों के लिये उचित स्थान तय करने को कहा और उनलोगों को सन्तानक लोक में स्थापित किया गया।” सर्ग 111। अपनी प्रजाओं को यथानुकूल स्थापित कर विष्णु भगवान अपने लोक वैकुण्ठ में जैसे पहले थे उसी तरह से चले गये “ततः प्रतिष्ठतो विष्णुः स्वर्गलोके यथापुरम्। श्लो 2।”

अध्यात्म रामायण के कुछेक प्रसंग :

अ रा बालकाण्ड सर्ग 2 : “शंखचक्रगदापद्मवनमाला विराजितम्। श्लो 11।” “श्रिया भूम्या च सहितं गरुड़ोपति संस्थितम्। श्लो 12। ब्रह्मा एवं अन्य देवों की स्तुति पर शंख चक्र कमल एवं वनमाला से सुशोभित श्री एवं भू देवी के साथ गरुड़ पर भगवान प्रकट हुए। “कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन ते। श्लो 25। स इदानीं दशरथो भूत्वा ...। तस्यां पुत्रतामेत्य कौशल्यायां शुभे दिने.....इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः ब्रह्मा देवानथाब्रवीत्। श्लो 26। 27। 28।” भगवान ने कहा कश्यप को पुत्र होने का वचन दिया था वे अभी दशरथ से हैं। उन्हीं का कौशल्या तथा अन्य दो रानियों का चारो अंश से पुत्र बनकर आउँगा तथा इतना कह अन्तर्धान हो गये। सर्ग 4। “शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत...। जातौ भरतशत्रुघ्नौ शंखचक्रे गदाभृतः। श्लो 17। 18।” वशिष्ठ जी ने दशरथ जी को समझाया है कि शेष जी लक्ष्मण बनकर उनके साथ रहेंगे तथा शंख भरत एवं चक्र शत्रुघ्न बनकर आये हैं।

अ रा युद्ध सर्ग 11। “सद्यो रामस्य विष्णोः सुरवरविनुतं याति वैकुण्ठमाद्यम्। श्लो 87।” किसी तरह का पापी जीव जब भगवान से अंत में भी सम्बन्ध बना लेता है तब विष्णुरूप भगवान राम के देवेन्द्रवन्दित आदिस्थान वैकुण्ठ को चला जाता है।

तुलसीकृत रामायण के कुछेक प्रसंग :

“बंदौ मुनिपदकंज रामायण जिन निर्मयऊ। बा 14।” इससे वाल्मीकि रामायण तथा “व्यास आदि कवि पुंगव नाना। बा 13।²।” से व्यास जी द्वारा अन्य पुराणों का उल्लेख रामचरितमानस में मिलता है। इन दोनों मुनियों के ग्रन्थों से रामजी विष्णु तथा जानकी जी लक्ष्मीसिद्ध होते हैं। यह रामचरितमानस के कुछेक उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है। “एवमस्तु कहि रमानिवासा। अर 11।1।” “सो राम रमानिवास। अर 31।छ 4।” “प्रणमामि निरन्तर श्रीरमणम्। उ 13।10।” “राम रमेश नित्यं भजामहे। उ 12।छ 4।” “.....सुजान राम रमापति। लं 120। छं 1।” “छविधाम नमामि रमासहितम्। लं 110।6।” “रमानाथ जहँ राजा। उ 29।” उक्त उद्धरणों में ‘रमा’ यानी ‘लक्ष्मी’ के नाथ या पति या उनके साथ ‘रमासहित’ आदि से विष्णु ही राम हैं सिद्ध होता है तथा सीता जी रमा हैं।

“सिन्धुसुता प्रियकन्ता। बा 185। छंद1।” के उद्धरण से लक्ष्मी जी के पति विष्णु भगवान से देवताओं के कल्याणार्थ अवतार लेने की प्रार्थना है। नारद जी ने विष्णु भगवान को ही शाप दिया था और वे रामजी बनकर आये “नारद वचन सत्य सब करिहैं। परम सक्ति समेत अवतरिहैं। बा 186।3। नारद जी दण्डकारण्य में सीता जी के अपहरण के बाद रामजी को देखकर दुःखी हो रहे हैं “मोर शाप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुःख भारा। अर 40।3।” “प्रकट भये श्रीकन्ता.....। निज आयुध भुजचारी। बा 191।छं।” से स्पष्ट है कि शंख चक्र धारी विष्णु भगवान ही राम हुए। भृगु ऋषि के चरण चिह्न धारण किये रामजी “विप्र चरण देखत मनलोभा। बा 198।3।” अहिल्या की स्तुति में विष्णु भगवान का ही नाम लिया गया है जिनके चरणजल को शिव जी ने सिर पर रखा और गंगा निकली तथा जिसकी पूजा ब्रह्मा करते हैं “जेहि पद सुर सरिता युगल पुनीता प्रकट भई शिवशीश धरी। सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरि। बा 210।छं 4।” परशुराम जी ने कहा “राम रमापति कर धनु लेहु। बा 283।4।” वाल्मीकि जी ने वनगमन के रास्ते कहा “श्रुतिसेतुपालक राम तुम जगदीस माया जानकी...। अयो 125।छं 1।” चित्रकूट में वनवासियों ने कहा “पयपयोधि तजि अवध बिहाई। अयो 138।3।” भरत जी की बुद्धि को सरस्वती को भेजकर खराब करने के प्रसंग में इन्द्र को देवों के गुरु बृहस्पति ने कहा कि अम्बरीष के कष्ट के कारण दुर्वासा ऋषि भगवान विष्णु के चक्र की महिमा जानते हैं “यह महिमा जानहि दुरवासा। अयो 217।3। अत्रि मुनि ने रामजी की स्तुति में कहा “नमामि इन्दिरापतिं.....।। शचीपति प्रियानुजम्। अर 3।2।” इन्दिरा यानी लक्ष्मी के पति तथा शची के पति यानी इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र यानी रामजी के रूप में विष्णु भगवान को नमन करता हूँ। शरभंग मुनि वैकुण्ठ गये वैकुण्ठाधिपति विष्णु भगवान है “राम कृपा वैकुण्ठ सिंधारा। अर 8।1।” सुतीक्ष्ण जी के साथ भगवान की लीला “भूप रूप जब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा। अर 9।9।” मन्दोदरी रावण को समझाती है “जो बली बांधिसहस्रभुजमारा। सो अवतरेउ हरण महि भारा। लं 5।4। हिरण्याक्ष भ्राता सहित...। जो मारेउ सो अवतरेउ...। लं 48।” इन्द्र का रथ युद्ध के बाद लौट गया तथा देवगण रामजी की स्तुति करने लगे “मीन कमठ सूकर नरहरि। बामन परशुराम

²बा 13।1। मानस के बाल काण्ड दोहा 13 के बाद चौपाई 1।

बपुधरि । लं 109 । 4 । ” राज्याभिषेक के समय शिव जी ने स्तुति में कहा “बार बार मांगउ हर्षि देहु श्रीरङ्ग । उ 14 । ” फणीन्द्र यानी शेष जी से सेवित विष्णुभगवान ही तो हैं “.....फणीन्द्र सेव्यमनिशम् । सुन्दर कांड अस्तुति । ” मनुशतरूपा न देखा “उर श्रीवत्स रूचिर वनमाला । बा 146 । 3 । भृगुपद चित्त को ही श्रीवत्स कहते हैं । ”

मनु शतरूपा की तपस्या का प्रसंग है “उपजहिं जासु अंश ते नाना । शंभु विरज्जि विष्णु भगवाना । बा 143 । 3 । लोग भ्रमवश इसका गलत अर्थ करते हैं कि रामजी के अंश से अनेकों शिव ब्रह्मा विष्णु उत्पन्न होते हैं । यह नितान्त अनुचित है क्योंकि इस तरह का कहीं प्रमाण नहीं मिलता । इसका अर्थ है कि विष्णु भगवान के अंश से ही अनेकों शिव एवं ब्रह्मा उपजते हैं । इसी तरह से लक्ष्मी जी के बारे में त्रुटिपूर्ण अर्थ किया जाता है “बाम भाग शोभित अनुकूला । आदिशक्ति छबि निधि जगमूला । । ” “उपजहिं जासु अंशगुणखानी । अगनित उमा रमा ब्रह्माणी । । बा 147 । 2 । ” भगवान के बायें भाग में शोभने वाली अनगिनत गुणों के खान रमा यानी लक्ष्मी जी हैं जिनके अंश से उमा तथा ब्रह्माणी हुआ करती हैं । “रामवामदिशि सीता सोई । बा 147 । 2 । रामजी की बायीं ओर वही लक्ष्मी सीता जी हैं ।

हनुमन्नाटक पृष्ठ 114 पर कहा है “जानामि रामं मधुसूदनस्य । ” वही विष्णु राम को मैं जानता हूँ ।

रामायण में क्या है

भगवान नारायण के अनन्त गुण रूप वैभव अवतार एवं विभूतियों की तरह उनके अनन्त नाम एवं लीलायें हैं । रामावतार उन्हीं अनन्त अवतारों में से एक है । कल्प भेद से इनके चरित्र में कुछ अन्तर मिलता है जैसे 1 । परशुराम जी का कभी विवाह के पूर्व तथा कभी बाद में मिलना । 2 । अहिल्या का कभी जनकपुर के पास तो कभी बक्सर के पास रहना । भगवान के चरित्रों को ब्रह्मा जी प्रचार करते हुए महादेव जी तथा नारद जी को सुनाते हैं । नारद जी से वाल्मीकि सुनकर चौबीस हजार श्लोकों में रामायण की रचना करते हैं तथा समयानुकूल लव कुश को पढ़ाते हैं । लय में गाकर उनलोगों ने मुनियों के बीच इसे लोकप्रिय बनाया और श्रोताओं ने कहा कि बीती हुई कथायें भी प्रत्यक्ष घटती जैसी लगती हैं “चिरं निवृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम् । । ”

रामायण की अनेकों व्युत्पत्तियां हैं । 1 । ‘रामः ईयते प्राप्यते अनेन’ यानी राम जिससे मिल जायें वह साधन प्रेम है और वही रामायण है । 2 । ‘रामस्य अयनं’ यानी राम जहाँ प्राप्त हों वह रामायण है । रामजी की प्राप्ति के लिये रामायण का प्रेम पूर्वक अध्ययन साधन है । रामायण द्वारा केवल राम जी का चरित्र ही नहीं समझना है । रामजी श्रीनिवास हैं इसलिये रामायण लक्ष्मी यानी सीता जी के चरित्र का भी बोध कराता है “सीतायाः चरितं महत् । बा रा 4 । 17 । ” श्रीरामानुज स्वामी के अग्रगण्य शिष्य श्रीकुरेश स्वामी के पुत्र श्री पराशर भट्ट स्वामी ने लक्ष्मी जी पर ‘श्रीगुणरत्नकोष’ स्तुति लिखी है उसके श्लोक 14 में दिया है “श्रीमद्रामयणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे” यानी वाल्मीकि रामायण भी आपके चरित्र का गान करता है । महाभारत रामायण एवं भागवत के अध्ययन के लिये एक प्रचलित कहावत है “प्रातः द्यूतप्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसंगतः । रात्रौ चोरप्रसंगेन कालो गच्छति धीमताम् । यानी प्रातः महाभारत का कृष्ण प्रसंग तथा दोपहर सीताजी का चरित्र यानी रामायण एवं सायंकाल कृष्णचरित्र यानी भागवत के अध्ययन में बुद्धिमान लोग समय लगाते हैं । रामजी के अवतार के पीछे अनेकों कारण हैं जैसे मनु शतरूपा को वरदान या

देवताओं की रक्षा आदि परन्तु सीता जी के अवतार के पीछे कोई कारण नहीं है। वे तो निर्हेतुकी कृपा के कारण ही पृथ्वी से प्रकट हुई। अयोध्या का राजसुख छोड़कर रामजी के साथ जंगल गयीं तथा राक्षसों को सुधारने हेतु लंका गयीं। रामजी के चरित्र से इनके चरित्र की यह विशेषता है। मानस के प्रारम्भ के मंगलाचरण में कहा “...सीतारामगुणग्राम...” यानी रामायण सीता जी एवं रामजी दोनों के गुणों का संग्रह है। । 3। “रामस्य अयनं भक्तजनः तस्य चरितं रामायणं” यानी भक्तों के हृदय में रामजी बसते हैं और उन्हीं भक्तों का चरित्र रामायण है। वाल्मीकि जी ने भी मानस में ऐसे भक्तों के लक्षण को बताया है और उनके हृदय में भगवान को बसने की विनती की है “निदरहिं सिन्धु सरित सर बारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी।। जिनके हृदय सदन सुखदायक। बसहु लखन सिय सह रघुनायक।।जाही न चाहिये कबहुँ कछु तुम सन सहेज सनेह। बसहु निरन्तर तासु उर सो राउर निज गेह। अयो दोहा 127 से लेकर 131 तक।” सागर तट पर विभीषण जी की शरणागति के समय भगवान ने स्वयं कहा है “तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरेउ देह नहीं आन निहोरे। सु 47।4।” भरत जी के बारे में कहा है कि रामजी को संसार भजता है परन्तु वे भरत जी को भजते हैं “जग जपु राम राम जपु जेहि। अयो 217।4।” अर्थात् भगवान भक्तों को अपना बनाकर उनके हृदय में बसते हैं। माता सुमित्रा जी की रामजी के प्रति भक्तिलक्ष्मण को कही हुई बात से मिलती है “रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजं। वा रा अयो 40।9। यानी राम जी को पिता दशरथ तथा जानकी जी को मुझे यानी माँ समझो।” श्रृंगवेर पुर में रामजी लक्ष्मण जी एवं सीता जी का अयोध्या लौटने से मना कर देने पर सुमन्त जी की दशा से उनकी भक्तिका आभास होता है “भये विकल जनु फणिमनिहीना।नयन न सूझ सुनै नहीं काना। अयो 98।2।” । 4। ‘रामः अयनं यस्य’ यानी जिन सबों के आधार राम हैं उन सबों का बोध रामायण से होता है। भगवान विभीषण से कहते हैं कि वाल्मीकि भरद्वाज अत्रि अनुसूया सरभंग सुतीक्ष्ण कुम्भज जटायु शवरी हनुमान सुग्रीव अंगद मनु शतरूपा इत्यादि जैसे भक्तों को वे अपने हृदय में रखते हैं “अस सज्जन मम उर वस कैसे। लोभी हृदय बसत धन जैसे। सु 47।4।”

। 5। रामायण से द्वयमंत्र “श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः।” व्यक्त होता है। बालकाण्ड में सीता राम विवाह से लक्ष्मी के साथ होने यानी ‘श्रीमत्’ का बोधक है। अयोध्या का गुण वर्णन ‘नारायण’ पद के लिये है। अरण्य काण्ड में भगवान के स्वरूप के वर्णन से उनके विग्रह यानी ‘चरणौ’ का बोध होता है। किष्किन्धा एवं सुन्दर से ‘शरणम्’ का बोध होता है। लंका काण्ड से ‘प्रपद्ये’ का बोध होता है तथा उत्तर काण्ड से मंत्र के उतरार्द्ध ‘श्रीमते नारायणाय नमः’ का बोध होता है।

वाल्मीकि रामायण के विभिन्न प्रसंगों से भगवान के शरण्य गुण का बोध होता है। ‘त्वं गतिः परमो देव सर्वेषां नः परंतप’ देवताओं ने शरणागति ली। लक्ष्मण जी ‘स भ्रातुश्चरणौ गाढं.....सीतामुवाचातियशा राघवञ्च महाव्रतम्। अयो 31।2।’ भगवान का चरण पकड़ सीता जी से कहते हैं जो पुरुषाकार शरणागतिका बोधक है यानी सीता जी का अनुमोदन मिलता है। त्रिजटा जानकी जी का शरण लेती है क्योंकि रामजी से राक्षसों का भय है “अभियाचमानं वैदेहीमेतद्धि...। सुन्दर 27।41।

भरत जी भगवान को मनाने के लिये कुश पर पड़कर अनशन करते हैं “शेष्ये पुरस्ताच्छलाया...। अयो 111।14।” “.....यावन्मे न प्रसीदति। अयो 111।13।” । जयन्त एवं दण्डकारण्य में मुनियों की रक्षा का प्रसंग शरण्य गुण

का प्रकाशक है। सुग्रीव अञ्जलीबद्ध हो लक्ष्मण जी को मनाते हैं ‘अञ्जलीबद्धता’ शरणागति बोधक है। विभीषण पुत्र पत्नी को छोड़कर रामजी के पास गये। सर्वस्व त्यागने से ही शरणागति मिलती है। लक्ष्मण जी ने वनगमन के पूर्व कहा सभी अवस्थाओं में कैंकर्य करूंगा “अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते। अयो 31।27।” लक्ष्मण जी ने जीव के शेषत्व भाव को बताया “कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते। अयो 31।24। हमें अपना अनुचर बनाइये इसमें कोई धर्म हानि नहीं है।” वशिष्ठ जी को भरत जी ने जीव की परतन्त्रता का बोध कराया यह कहकर कि यह राज्य तथा मैं दोनों रामजी का हूँ “राज्यं च अहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि। अयो 82।12।”

6। अर्थपञ्चक का ज्ञान : रामजी से पर स्वरूप। लक्ष्मण से जी स्व स्वरूप। शरणागति से उपाय स्वरूप। विभीषणादि के कैंकर्य से फलस्वरूप। रावणादि के व्यवधान से विरोधी स्वरूप का ज्ञान मिलता है।

7। अनन्य अकिञ्चनता : रक्षा नहीं कर सके देवगण रावण की, मातापिता जयन्त की, भाई विभीषण की, दशरथ पुत्र की, अतः केवल एक भगवान ही रक्षक हैं। परमात्मा की शरणागति के लिये पुरुषाकार यानी अनुमोदन करने वाले की आवश्यकता होती है। अनुमोदन करने वाले में दया तथा भगवान पर स्वाभाविक परतन्त्रता का पूर्ण आभास एवं भगवान ही में अनन्यभाव के गुण होने चाहिये। ये सभी गुण सीता जी में हैं। पंचवटी से लंका तक उन्होंने दया गुण का प्रकाश किया। गर्भावस्था में एकदिन वाटिका में विहार करते हुए भगवान ने सीता जी से उनकी ईच्छा जाननी चाही “किमिच्छसि वरारोहे...। वा रा उ 42।32।” सीता जी ने कहा कि कम से कम एक रात कन्द मूल फल खाने वाले तपस्वियों की भूमि में रहना चाहती हूँ “तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव...अपि एक रात्रिं काकुत्स्थ निवेशयं तपोवने। वा रा उ 42।33 से 35। इससे परतन्त्रता गुण का आभास होता है। नैमिषारण्य यज्ञ में रामजी द्वारा पूछने पर सीता जी पृथ्वी से स्थान मांगती हैं एवं धरती के फटने से एक दिव्यसिंहासन के प्रकट होने पर उस पर विराजमान हो पृथ्वी में समा जाती हैं “यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये तथापि मे माधवी देवी विवरं दातुर्म हति.....भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम्। वा रा उ 97।14 से 17।” यह सीता जी के अनन्यार्हत्व को प्रकाशित करता है। संश्लेष या विश्लेष में सतत लक्ष्मी जीव का कल्याण ही चाहती हैं। इसी विषय का प्रतिपादन रामायण करता है।

8। मानस के चुने हुए विशेष प्रकरण

8।1। “गिरा अरथ जलबीचि सम कहियतभिन्न न भिन्न। बन्दौ सीतारामपद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न। मानस वा 18।” इस दोहे में सीता जी एवं रामजी को भिन्न एवं अभिन्न यानी अलग अलग तथा एक बताया गया है। ‘गिरा यानी वाणी’ स्त्रीलिंग वाचक है तथा ‘अर्थ यानी तात्पर्य’ पुल्लिंग है जो परस्पर सीताजी एवं रामजी के लिये प्रयुक्त हुआ है। पहले माँ की पूजा के बाद ही पिता की पूजा करते हैं। उपासकों के लिये सीताजी माता है तथा रामजी पिता हैं।

दोनों में भिन्नता है कि रामजी से सीता जी छः वर्ष छोटी हैं। रामजी अयोध्या के सीताजी जनकपुर की। सीताजी वशवर्तिनी तथा रामजी सर्वस्वतन्त्र। सीताजी पृथ्वी में प्रवेश कीं परन्तु रामजी विमान से गये। इसी तरह से गिरा एवं अर्थ में भी भिन्नता है। ‘गिरा’ वाचक है तथा ‘अर्थ’ वाच्य है जैसे सूर्य वाचक है तथा प्रकाश वाच्य। मुँह से

केवल वाचक ही प्रकट होता है वाच्य नहीं। अग्नि कहने से मुँह नहीं जलता जबकि अग्नि वाचक है एवं उसकी उष्णता वाच्य है।

‘जल’ एवं ‘बीचि’यानी जल एवं उसके तरंग कहकर दोनों की भिन्नता को दूर किया गया है। जल पुल्लिङ्ग रामजी के लिये तथा बीचि स्त्रीलिङ्ग सीताजी के लिये प्रयुक्त है। सीताजी ने हनुमान जी से अशोकवाटिका में कहा “अनन्याराधवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा। वा रा सुन्दर 21।16। इसीतरह से रामजी ने युद्ध पश्चात सीताजी की अग्नि परीक्षा के उपरान्त कहा “अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा। वा रा युद्ध 120।19 या किसी संस्करण में 118।19।” वनगमन के पूर्व रामजी से सीता जी कहती हैं “प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई। मानस अयो 96।3।” अतः दोनों की अभिन्नता सिद्ध है। भगवान वैकुण्ठ छोड़कर वाराहादि रूपों में जनकल्याण हेतु आते हैं वैसे ही लक्ष्मी भी वैकुण्ठ त्यागकर धरती से प्रकट होती हैं। राम एवं सीता दोनों एक दूसरे के परस्पर आधार हैं। भगवान को ‘श्रीनिवास’ कहते हैं यानी “श्रियाः निवासः श्रीनिवासः” या “श्रियां निवासो यस्य सः श्रीनिवासः” से दोनों में अभिन्नता स्पष्ट है। उपर्युक्त दोहे में सीताजी का नाम पहले कहने से शरणागति के लिये ‘पुरुषाकार स्वरूप लक्ष्मी’ की महत्ता को आलोकित किया गया है। ‘बन्दौ सीतारामपद’ से चरण एवं अन्तःकरण में एकता दिखायी गयी है। किसी के चरण पकड़ते ही उसका हृदय द्रवित हो जाता है। सीताराम जी के चरण पकड़ने पर उनका हृदय पिघलेगा ही। ‘परमप्रिय खिन्न’ में ‘खिन्न’ अकिंचन के लिये प्रयुक्त है यानी जिसके पास भगवान को छोड़कर कोई उपाय नहीं है। एक नवजात शिशु का आधार उसकी माँ हैं। यह शिशु की परगत शरणागतिका उदाहरण है। ज्ञानी एवं प्रौढ़ स्वगत शरणागति वाले हैं अर्थात् वे अकिंचन नहीं हैं। “परम अकिंचन प्रिय हरि केरे। वा 160।2। “जेहि दीन पियारे वेद पुकारे। वा 185।छंद 4।” श्रीयामुनाचार्य स्वामी ने स्तोत्ररत्न आलवंदार श्लोक 22 में कहा है “अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्य त्वदपादमूलं शरणं प्रपद्ये।”

8।2। “ब्रह्मनिरूपण धर्मविधि वरणहि तत्त्वविभाग। कहहिं भक्ति भगवंत की संयुत ज्ञानविभाग। मानस वा 44।” प्रसंग प्रयागराज में मकर स्नान के समय भगवान की कथा का है। दोहा के शब्द ‘ब्रह्मनिरूपण’ ‘धर्मविधि’ ‘तत्त्वविभाग’ ‘भक्ति भगवंत की’ तथा ‘ज्ञानविभाग’ के पृथक् पृथक् विवेचन दिये गये हैं। ब्रह्म यानी ईश्वर हैं या नहीं है या हैं तो उनके लक्षण क्या हैं आदि पर विचार करना ही ब्रह्मनिरूपण है। सांख्यशास्त्र प्रकृति को ही ईश्वर मानता है। मीमांसा शास्त्र के अनुसार कर्माधीन ही सबकुछ हुआ करता है। व्याकरण शास्त्र से आदिअन्त रहित नित्य शब्द ही ब्रह्म है। न्यायशास्त्र के अनुसार भूमि वायु अग्नि एवं जल से ही चैतन्य का निर्माण होता है। स्वर्गादि एवं ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है। चार्वाक सिद्धान्त के अनुसार मोक्षादि कुछ नहीं है। वैदिक कर्म मूर्ख एवं उद्योगहीन पंडितों के जीवका अर्जन के लिये हैं। पंचदेव के उपासक ब्रह्मा विष्णु महेश गणेश एवं सूर्य को ईश्वर मानते हैं। श्रुति कहती है जिससे सभी जीवों की उत्पत्ति पालन तथा संहार होता है वह ब्रह्म है। जिस एक के ज्ञान से सबकुछ ज्ञात हो जाता है वह ब्रह्म है। जो सर्वज्ञ सर्वव्यापक है वह ब्रह्म है आदि आदि। “ब्रह्मशब्दस्य मुख्यार्थो नृहरिः पुरुषोत्तमः। नारायण परब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः” यानी नारायण में ब्रह्म के सभी लक्षण मिलते हैं। नारायण ही रामजी बनकर आये तथा वेद वाल्मीकि रामायण बनकर आये “वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना।”

‘धर्मविधि’में अनेक मत हैं। जो इस लोक में सर्वोदय करे एवं परलोक में कल्याण करे वह धर्म है। जो वेद स्मृति में लिखा है तथा सत्पुरुष जिसका आचरण करते हैं और अपनी आत्मा का संतोषकारक हो वह धर्म है। ‘रामोविग्रहवान्धर्मः’ यानी रामजी धर्म के स्वरूप विग्रह हैं। “कृष्णं धर्मं सनातनम्।” शास्त्र में भगवदुपासना को ही धर्म कहा है। “पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। गीता 9।26। के अनुसार उपासना अर्चा मूर्ति की ही सुगम है। श्रीरंग वेंकटेश बदरीनारायण जगन्नाथ शालिग्राम आदि स्वयंव्यक्त अर्चा विग्रह हैं। मंत्र से स्थापित अर्चा विग्रह अन्य मंदिरों में हैं।

‘तत्त्व विभाग’में रामजी ईश्वर तत्त्व हैं तथा जानकी जी माया तत्त्व हैं एवं लक्ष्मण जी जीव तत्त्व हैं। ईश्वर तत्त्व के पाँच भेद हैं : पर व्यूह वैभव अर्चा एवं अन्तर्यामी। माया के दो भेद हैं : जड़ एवं अजड़ यानी चैतन्य। जीव के पाँच भेद हैं : नित्य मुक्त बद्ध कैवल्य और मुमुक्षु।

‘भक्तिभगवन्त की’ यानी परमात्मा की ही भक्ति करनी चाहिये अन्य देवों की नहीं “अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयो हरि धाम। अर 32।” कई प्रकार की भक्ति कही गयी है उसमें प्रह्लाद जी द्वारा बतायी गयी नवधा भक्ति है “श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्। भागवत 7।5।23।” कथा सुनना श्रवण भक्ति है। भगवान का भजन करना कीर्तन है। भगवान भागवत गुरु एवं मुनियों के वचन को याद रखते हुए लाचार एवं दुःखी को सहायता पहुँचाना ही स्मरण भक्ति है। पादसेवन भक्ति में भगवान के चरण एवं गुरुजनों की सेवा है। अर्चना भक्ति में सोलह उपचार से पूजा करना तथा शरणार्थी एवं भूखों प्यासे रोगियों को सहायता और निर्बोध को बोध देना आदि हैं। वन्दन भक्ति से भगवान के चरणों को बार बार नमन करना है। दास्यभक्ति से अपने को परमात्मा का सेवक समझते हुए जनकल्याण अपने को तथा धन को लगा देना है। सख्यभक्ति में परमात्मा से किसी प्रकार का सम्बन्ध बना लेना है। सांसारिक लोग जीवन में एक सम्बन्ध बन जाने पर जीवन भर निभाते हैं तब भगवान के साथ के सम्बन्ध भगवान भी कभी नहीं छोड़ेंगे। आत्मनिवेदन भक्ति शरणागति है। पाञ्चरात्र में शरणागति के छः रास्ते बताये गये हैं “अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षतीति विश्वासः गोप्तृत्वं वरणं यथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागति। लक्ष्मी तन्त्र 17।59 से 61।” यानी भगवत्प्राप्ति के लिये 1। अनुकूल का संकल्प। 2। प्रतिकूल का त्याग। 3। रक्षक भगवान में पूर्ण विश्वास। 4। गोप्तृत्व वरणम् यानी रक्षा का काम भगवान को सौंप देना। 5। आत्मनिक्षेप यानी आत्मसमर्पण। 6। कार्पण्यम् यानी कातरता विनम्रता एवं पारतंत्र्यता भाव से उद्भूत रहना।

ज्ञानविभागसे ऐसे ज्ञान को प्राप्त करना है जिससे यह समझ में आ जाये कि भगवान पूर्ण प्रकाश हैं हम उनके अंश हैं। जिससे परमात्मतत्त्व का ज्ञान हो वही ज्ञान है बाकी सब अज्ञान है। भगवत्प्राप्ति के लिये संसार से विराग होना आवश्यक है जैसे राजा भरत को हुआ। तुलसीदास जी ने कहा है “जहाँ काम तहँ राम नहीं जहाँ राम नहीं काम। तुलसी दोउ न होत है रवि रजनी इक ठाम। तुलसी सतसई 1।44।” “यह जग से छत्तीस ‘36’हो रामचरण छवतीन ‘63’। तुलसी सोई चतुरता सोई परम प्रबीन। तुलसी सतसई 3।7।” संख्या 36 का 3 एवं 6 की तरह अलग थलग रहे यानी संसार से 36 का नाता रखें। भगवान के चरण के साथ 63 की तरह रहें यानी आमने सामने लिपट कर रहें।

8।3। “पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग विहार।माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु।बा 37।” भगवान की कथा सुनने तथा स्मरण से रोमाञ्चित हो जाना एवं आनन्दातिरेक से आँखों से जल बहना परम भक्ति के लक्षण हैं। भगवान की कथा से उत्पन्न रोमाञ्चादि अवस्था को वाटिका बाग तथा वन की श्रेणी में रखा गया है। इससे उत्पन्न सुख की अनुभूति ही वाटिका बाग तथा वन में बसने वाले पक्षीगण संत मुनि आदि होते हैं। भक्त ही माली है जो अपने प्रेम रूपी अश्रु जल से सींचकर वाटिका बाग तथा वन को हरा भरा बनाये रखता है। कथाश्रवण या मनन से उत्पन्न रोमाञ्चादि की दृश्यावली में चारो तरफ से वन बाग को घेरे हुए है तथा बाग के केन्द्र में अत्यंत हरा भरा वाटिका स्थित है। वन के पक्षी ब्रह्मा रुद्रादि हैं। बाग के पक्षी वाल्मीकि व्यास आदि हैं तथा वाटिका के पक्षी सुतीक्ष्ण आदि हैं “...पुलक शरीर पनस फल जैसा।अर 9।8।” वाटिका के वृक्ष लतादिक सुकोमल हैं जिन्हें नियमित रूप से सींचने की आवश्यकता है। जबकि बाग में दृढतर वृक्षादि रहते हैं और वन में दृढतम वृक्षादि हैं जो प्रकृति प्रदत्त जल से ही हरे भरे रहते हैं। कथा से आनन्दित होकर रोमाञ्च का होना तथा अश्रु का बहना वाटिका का बोधक है जिसमें भगवत् माधुर्य भाव प्रधान है। केवल रोमाञ्चित होना वन का प्रतीक है जिसमें भगवत् ऐश्वर्य की प्रधानता है। बाग माधुर्य तथा ऐश्वर्य के बीच के भाव का द्योतक है। मानस से कुछेक उदाहरण : 1। सजल रोमावली वाले वाटिका स्थानिक भक्त भरत जी “सुनि तन पुलक नयन भरि बारि।बोले भरत धीर धरि भारी।अयो 292।1।” अहिल्या “अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा युगल नयन जल धार बही।बा 210।छं 1।” जनकपुर में सीता जी को सखियों द्वारा देखना “तासु दशा देखि सखिन पुलकगात जल नैन।बा 228।” राजा दशरथ “वारि विलोचन वॉचत पाती।पुलकगात आई भारी छाती।बा 289।2।” जनकपुर में महादेव जी “पुलकगात लोचन सजल उमा सहित त्रिपुरारि।बा 315। अयोध्यावासियों का जनकपुर बारात पस्थान के समय राम लखन के दर्शन की लालसा “सबके उर निर्भर हरष पूरित पुलक शरीर।बा 300।” कौशल्या जी वनगमन काल में “बार बार मुख चूमति माता।नयन नेह जल पुलकित गाता।अयो 51।2।लखन लाल जी वन जाने के लिये “कम्प पुलकतनु नयन सनीरा।गहे चरण अति प्रेम अधीरा।अयो 69।1।वनगमन के रास्ते एक तपस्वी रामजी से मिलते हैं “सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेव पहिचानी।अयो 110।” भरत जी का वनगमन काल में “तन पुलके अति हर्ष हिये वेनि वचन अनुकूल।अयो 205।” “पुलक शरीर सभा भय ठाड़े।नीरज नयन नेह जल बाढ़े।अयो 259।2।” “अस कहि प्रेमविवस भये भारी।पुलक शरीर विलोचन वारी।अयो 300।3।जंगलवासियों से भरत जी के आगमन की पूर्व सूचना पर भगवान राम “सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।सरद सरोरुह नयन तुलसी भरे सनेह जल।अयो 226।” चित्रकूट के मार्ग में ग्रामवासी “एहि विधि पूछहि प्रेमवश पुलकगात जलनैन।अयो 112। पादुका की आज्ञा से राज काज भरत जी चला रहे हैं “पुलक गात हिय सिय रघुवीरा।जीह नाम जप लोचन नीरा।अयो 325।1।” रामजी के अयोध्या वापसी की भरत जी को सूचना देने हनुमान जी अयोध्या पहुँचते हैं और भरत जी को देखकर “देखत हनुमान अति हरषे।पुलकगात लोचन जल बरषे।।दोनों के मिलन में.....मिलत प्रेम नहीं हृदय समाता।नयन स्रवत जल पुलकित गाता।उ 1।1 एवं 5।” भरत जी एवं रामजी का मिलन “श्यामलगात रोम भये ठाढ़े।नवराजीव नयन जल बाढ़े।उ 4।4।”। विभीषण जी शरणागति के पूर्व सागर किनारे “नयननीर पुलकित अतिगाता।मन धरि धीर कहि मृदु बाता।सु 44।3।” गरुड़ जी को

कथा सुनाते समय कागभुसुंडी “पुलकगात लोचन सजल मन हरषे अति काग । उ 69 ।” रामजी से सनकादिकों का मिलन “तिनकर दसा देखि रघुबीरा । स्रवत नयन जल पुलक शरीरा । उ 32 । 3 ।”

वन सदृश उदाहरणः शिव जी के उदाहरण से वन के सदृश दृढ़ता दिखती है “चले जात शिव सती समेता । पुनिपुनि पुलकत कृपानिकेता । वा 49 । 2 ।” जहाँ अश्रुसिंचन का अभाव है । मैत्रेय मुनि की स्थिति शुकदेव जी कहते हैं “प्रहृष्ट रोमा भगवत् कथायाम् । भा 3 । 13 । 5³ ।”

कंस वध के पहले पहलवानों से मल्लयुद्ध करते असमान प्रतियोगी के स्थिति में कृष्ण वलराम की कोमलता एवं आकर्षक स्वरूप देख मथुरा के लोग गोपीजनों के भाग्य की प्रशंसा करते हैं । यह गोपीजनों की ‘वाटिका जैसी’ स्थिति का चित्रण करता है “या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्ख इङ्खना अर्भरुदिता उक्षणमार्जनादौ । गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठया धन्याव्रजस्त्रिय उरुकमचिन्तयाना । । भा 10 । 44 । 15 ।” गाय दूहते दही महते घर साफ करते गडशाला में तथा अन्य कहीं भी अश्रुपूरित आँखों से भगवान कृष्ण के अनुराग में मग्न स्थिति का स्मरण कराते हैं ।

भगवद् अनुसंधान में स्वतः उत्पन्न हर्षातिरेक की स्थिति में रोमाञ्चित होना वन की स्थिति है । किसी भागवत के उपदेश के पश्चात् आनन्द की स्थिति को प्राप्त होना वाटिका एवं बाग की स्थिति है क्योंकि वन स्वतः लगते हैं जबकि वाटिका एवं बाग किसी के लगाने पर लगते हैं ।

‘सुविहंग’ शब्द सुखरूपी भिन्न भिन्न पक्षियों के प्रतीक हैं । वाटिका में रायमुनि पक्षी वगैरह तथा बाग में कोयल आदि एवं वन में मोर हंस आदि के उदाहरण हैं । मानस के इस दोहे में भगवद् अनुसंधान के सुख एवं सुख के स्थान वाटिका बाग एवं वन को ‘सुविहंग’ से ही दर्शाया गया है ।

8 । 4 । जेहि अग बधेउ व्याध जिमि बाली । सोइ सुकंठ पुनि कीन्ह कुचाली । वा 28 । 3 । सोई करतूति विभीषण केरी । सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी । । वा 28 । 4 ।” कौन सा अपराध बाली का था जिसके कारण उसका वध हुआ परन्तु उसीकी पुनरावृत्ति सुकंठ यानी सुग्रीव तथा विभीषण ने की परन्तु रामजी ने उसकी उपेक्षा कर दी और ये दोनों भगवान के प्रिय बने रहे । इसकी विवेचना में विभिन्न रामायणियों के विभिन्न दृष्टिकोण रहे हैं । जब बाली दुंदुभि राक्षस से लड़ने गुफा में गया था तब सुग्रीव को गुफा द्वार पर ही रोक कर उसने कहा था “परखेहू मोहि एक पखवारा । कि 5 । 3 ।” परन्तु सुग्रीव वहाँ “मास दिवस तहँ रहेउ खरारी । निसरा रूधिर धार तहँ भारी । कि 5 । 4 ।” कुछ लोग मास दिवस का अर्थ तीस दिन करते हैं परन्तु मास तो बारह हैं अतः सुग्रीव बारह दिन ही गुफाद्वार पर रुके । अतः वे वचनभंग के दोषी हुए । बाली ने इसीलिये अपने छोटे भाई सुग्रीव की पत्नी रूमा को बलात् अपने पास रख लिया तथा भाई को देश निकास कर दिया । जब रामजी से सुग्रीव की मैत्री हुई तो उन्होंने रूमा के साथ दुर्व्यहार के कारण ही बाली को दोषी पाया था और बाली के वध के बाद रामजी ने उसे बताया कि क्यों तुम्हारा हमने वध किया “अनुजबधू भगिनी सुतनारी । सुनु सठ ये कन्या सम चारी । । इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधे कछु पाप न होइ । कि 8 । 4 ।” कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि सुग्रीव ने भी तो बाली की पत्नी तारा को अपने पास रख लिया था तब वह पापी हुआ परन्तु तारा सती नारी थी और भगवान को प्रिय थी । बाली वध के उपरान्त उसे रामजी ने

³भा 3 । 13 । 5 यानी भागवत स्कन्ध 3 का अध्याय 13 एवं श्लोक 5 ।

ज्ञान देकर भक्ति का वर दिया था “तारा विकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ह माया।। उपजाज्ञान चरण तब लागी। लीन्हेंसि परम भक्ति वर माँगी।। कि 10।2 एवं 3।” अतः तारा कभी कुलटा बन ही नहीं सकती थी इसलिये सुग्रीव को दोषी बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। एक दोष ऐसा है जो वाली एवं सुग्रीव दोनों को साथ लगता है वह है मद एवं अभिमान का। वाली को अपनी शक्ति का मद था क्योंकि तारा के मना करने पर भी वाली सुग्रीव के ललकारने पर उसे मारने के लिये दौड़ पड़ा था “अस कहि चला महा अभिमानी। तृण समान सुग्रीवहि जानी। कि 7।1।” रामजी ने जब सुग्रीव को राजा बना दिया तब वह भी राजमद में आकर रामजी के काम को भूल गया था जिसे ठीक करने के लिये रामजी ने लक्ष्मण जी को किष्किन्धा भेजा था “सुग्रीवहिं सुधि मोरि बिसारी। पावा राजकोष पुरनारी। कि 17।2।” परन्तु रामजी ने सुग्रीव को भय दिखवाकर रास्ते पर लाया था जो वाली नहीं कर सका था। अभिमान एवं मद के दोषी विभीषण भी हुए थे। इसतरह की कथा पदम पुराण में है। एकवार एक साधु को अपने पैर से कुचल कर मार दिया था। अन्य साधु लोग विभीषण का भी वध करना चाहते थे और उसे बन्दी बना लिया था। रामजी के हस्तक्षेप से विभीषण छूट सके थे परन्तु उनके बदले साधु के ब्रह्म हत्या दोष से निवारणार्थ रामजी ने तपस्या की थी। अतः अभिमान के दोष से सुग्रीव एवं विभीषण दोनों को रामजी ने बचा लिया था क्योंकि वे उनकी बात मानने वाले भक्त थे परन्तु वाली ऐसा नहीं था तारा ने कहा था “सुनु पति जाही मिला सुग्रीवों। ते दोउ बन्धु तेज बल सीवों। कि 6।14।” तारा तेजबल से नारायण का संकेत कर रही थी परन्तु वाली नहीं माना।

8।5। “बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा।। माँगहु वर बहुभौति लोभाये। परमधीर नहीं चलहिं चलाये।। बा 144।1।” मनु शतरूपा पुत्र के लिये तपस्या रत थे। ब्रह्मा विष्णु महेश के अनेकों बार आने पर भी वे उनसे वर नहीं माँगे। उन्हें परमधीर की उपाधि से क्यों विभूषित किया गया यही इस प्रसंग में विवेचित है। नियम है कि भगवान अगर अन्य देवों के साथ देवालय में रहें तब भी उनका तीर्थ प्रसाद नहीं करना चाहिये। अनन्य भक्ति में भगवान को छोड़कर किसी अन्य के प्रति लगाव नहीं रहता। मनु “ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय” द्वादशाक्षर मंत्र का जप कर रहे थे “द्वादशाक्षर मंत्रवर जपहि सहित अनुराग। बा 143।” अतः सबके साथ विष्णु भगवान का आना उनकी अनन्यता की परीक्षा थी। सतयुग का समय था। त्रेता में भगवान को रामजी बनकर आना था अतः राम रूप में दर्शन देकर मनु को कृतार्थ किये हैं। कुछ लोग षडाक्षर मंत्र ‘ॐ रामाय नमः’ दोनों दम्पति द्वारा जपे जाने के कारण दोनों को मिलाकर द्वादशाक्षर हुआ ऐसा अर्थ भी लगाते हैं। “पुर वैकुण्ठ जान सब कोई। कोई पयोनिधि बस प्रभु सोई।। हरि व्यापक सर्वत्र समान। प्रेम से प्रकट होहीं मैं जाना। बा 184।1 एवं 3।” भगवान के अनेकों नाम में एकत्व का ही बोध होता है। भगवान ने तो स्वयं कहा है कि कश्यप अदिति के तपस्या के वर के कारण तथा अब मनु शतरूपा को वर देकर जो दशरथ कौशल्या बनकर आयेंगे उनके पुत्र बनकर आउंगा। नारद जी के शाप को भी पूरा करूँगा। इससे भगवान विष्णु एवं रामजी में एकत्व सिद्ध होता है। अतः द्वादशाक्षर एवं षडाक्षर में कोई भेद नहीं है।

8।6। “जाके सुमिरन ते रिपुनाशा। नाम शत्रुह्न वेद प्रकाशा। बा 196।4। बालकाण्ड में चारो भाई के नामकरण के प्रसंग में वशिष्ठ जी ने यह नाम दिया है। शत्रु तो मात्र जीवन भर ही रहते हैं। मृत्यु के उपरान्त शत्रुता का नाश हो

जाता है जैसे विभीषण का रावण के मरने पर हुआ था। प्रश्न है कि ऐसी कौन शत्रुता का नाश शत्रुघ्न जी करेंगे। मथुरा में लवणासुर को अपना परिचय देते हुए शत्रुघ्न जी ने कहा शत्रुओं को मारनेवाला शत्रुघ्न मेरा नाम है “शत्रुघ्नो नित्य शत्रुघ्नः॥ वा रा उ 68।11।” यानी जन्म मरण तथा संसार रूपी सतत शत्रु का नाश ही इनके नाम जपने से होगा। काम तथा क्रोध भी नित्य शत्रु हैं “काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः॥ गी 3।37। सुदर्शन चक्र के अवतार के कारण ऐसा होना स्वाभाविक है। सुदर्शन तो भगवान की प्रेरणा से ही चलता है। उदाहरण में गजग्राह एवं शिशुपाल आदि हैं।

7।7 “लक्षणधाम रामप्रिय सकल जगत् आधार। गुरु वशिष्ठ तेहि राखेउ लक्ष्मण नाम उदार। वा 197।” यहाँ तीन बातों पर बल दिया गया है ‘लक्षणधाम’ यानी चेतनों के लक्षण के खजाना तथा सबका ‘आधार’ एवं ‘उदार’। लक्ष्मण जी के चरित्र से उनकोलक्षणों का खजाना होना सिद्ध होता है। उदाहरण के लिये ‘अनन्यशेषत्व’ ‘अनन्यभोग्यत्व’ तथा ‘अनन्यपारतन्त्र्य’ चेतन के लक्षणों में सर्वोपरि हैं। ये सभी लक्ष्मण जी के साथ मिलते हैं। चेतन प्राणी भगवान का शेष यानी अंश है तथा उन्हीं के भोग यानी सेवा के लिये है तथा भगवान के अधीन है यानी परतन्त्र है। शेषत्व गुण को श्री यामुनाचार्य स्वामी ने कहा है “निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातप ...। स्तोत्र रत्न 40।” शेषत्व धर्म से राम प्रिय होता है। अयोध्या से वन तक सतत भगवान की सेवा में तत्पर रहे। पर व्यूह वैभव एवं अर्चारूप में भी लक्ष्मण जी सदा भगवान के साथ रहते हैं।

‘आधार’ का अर्थ है नीचे रहकर अवलम्ब प्रदान करना जो शेष बनकर लक्ष्मण जी सतत करते रहते हैं। समस्त संसार के आधार शेष जी ही हैं। प्रलयकाल में भी शेषजी भगवान के शय्या बनकर अपने पेट से शीतल वायु का सेवन कराते रहते हैं। राम मंत्र के साथ लक्ष्मण मंत्र से ही भक्तों का कल्याण होता है “लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः...। वा रा वा 18।27।” “बन्दौ लक्ष्मण पद जलजाता। शीतल सुभग भक्त सुखदाता। वा 16।3।”

‘उदारता’ का अर्थ है कि जो बिना मांगे या कहे ही सहायता के लिये तत्पर रहता है “प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा। तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजौ मुनि।” सतयुग में अनन्त शेष रूप में तथा त्रेता में लक्ष्मण बनकर एवं द्वापर में बलराम के रूप में और कलियुग में लक्ष्मण जी ही निर्हेतुकी कृपा से रामानुज स्वामी बनकर मानवसमूह का कल्याण किये हैं। ‘रामानुज’ कहने भगवान भागवत तथा आचार्य सब का एक साथ ही बोध होता है जो उदारता गुण के ही कारण है।

8।8। “विनयप्रेम वश भई भवानी। खसी माल मूर्ति मुसकानी। वा 235।3।” जनकपुर में विवाह के पहले सीता जी द्वारा यह गौरी पूजन के प्रसंग में है। इस के अर्थ में रामायणियों के भिन्न भिन्न भाव हैं। चर्चा होती है कि माला कैसे एवं क्यों गिरी तथा कौन सी मूर्ति मुसकाई। कुछ कहते हैं कि गौरी के साथ शंकर जी की भी मूर्ति थी। माला गिरने पर शंकर जी की मूर्ति मुसकरायी है। इस प्रसंग में अन्य चौपाईयों से स्पष्ट होता है कि यह केवल भवानी यानी गौरी जी का ही मन्दिर था शंकर जी वहाँ नहीं थे “गिरिजापूजन जननी पठाई...227।1...। सरसमीप गिरिजा गृह सोहा...227।2। गई मुदित मन गौरी निकेता...227।3।गई भवानी भवन बहोरी। 234।2।” कुछ के मत हैं कि भवानी की मूर्ति बोलने वाली थी “सुनि सिय सत्य असीस हमारी। पूजहिं मनकामना तुम्हारी।। नारद वचन सदा शुचि सौंचा। सो वर मिलहि जाही मन रौंचा। 235।4।” अतः भवानी प्रसन्न होकर स्वयं सीता जी को माला पहनाने

लगीं और प्रेमविभोर होने के कारण माला उनके हाथ से गिर गयी। एक और भाव है कि सीताजी के हृदय में भगवान राम की मूर्ति विराज रही थी “...चली राखि उर श्यामल मूरति । 234।1।” अतः भवानी को स्मरण हो आया कि माला रामजी के लिये हो जायेगी जो सतीधर्म के विरोध में होगा। अतः माला हाथ से छूटकर नीचे गिर गयी। इतना तो स्पष्ट है कि माला किसी ने गिरायी नहीं है यह स्वयं गिरी है। अतः युक्तिसंगत भाव यह प्रतीत होता है सीताजी की पूजा के भाव से प्रसन्न होकर प्रसाद के रूप में भवानी स्वयं माला सीताजी को पहनाने लगी हैं परन्तु प्रेम विभोर होने के कारण सुध बुध खो बैठीं एवं माला हाथ से छूट गयी। सुध बुध आने पर भवानी मुसकार्यीं। सीताजी ने प्रसाद समझ कर माला को उठाकर पहन लिया “सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ। बोली गौरी हर्ष हियें भरेऊ। 235।3।”

8।9। “अनुरूप वर दुलहिन परसपर लखि सकुचि हिय हर्षहिं। सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगण वर्षहिं।। सुन्दरी सुन्दर वरन वर सह एक मण्डप राजहिं। जनु जीव अरु चारिउ अवस्था विभुवन सहित विराजहिं।। वा 324।छंद 4।”

जनकपुर में विवाह मंडप का प्रसंग है। चारो दुलहिन एवं चारो दुलहा विराजमान हैं। दर्शक दीर्घा में ऋषि मुनि देवगण आदि भी उपस्थित हैं। वर के अनुरूप यानी समान दुलहिन हैं। संकोच भी है एवं आनन्द भी है। माधुर्य एवं ऐश्वर्य रस समान रूप से आनन्द दे रहे हैं। माधुर्य रस के आनन्द के लिये दिव्य चक्षु चाहिए और ऐश्वर्य तो चर्म चक्षु से ही आनन्द दे रहा है “जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखहिं तिन तैसी। वा 240।2।” रामजी श्यामल मूर्ति हैं “नीलसरोरुह नील मणि नील नीरधर श्याम। अंग अंग पर वारिये कोटि कोटि शतकाम। वा 146।” “...इनसे लहि द्युति मरकत सोने। अयो 115।4।” भगवान की श्यामता से ही नीलमणि नीलामेघ नीलकमल को रंग मिला है। रामजी की सुन्दरता के सामने करोड़ों कामदेव की सुन्दरता फीकी है। रामजी स्वयं अप्राकृत हैं “यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। तैत्तिरिय संहिता ब्रह्मांडवल्ली 2।4।” इसी प्रकार सीता जी “हिरण्यवर्णा ...। चन्द्रां प्रभासां ज्वलन्तीं ...। आदित्यवर्णे ...। श्रीसूक्त। स्वर्ण को रंग एवं लावण्य सीता जी से ही मिला है। रामजी एवं सीता जी सर्वथा एक दूसरे के अनुरूप हैं। एक से मणि को सुन्दरता मिली तो दूसरे से स्वर्ण कान्तिमान हुआ। युगल सरकार सबों को आकर्षित कर आनन्दित कर रहे हैं। लक्ष्मी भगवान के वक्षस्थल पर रेखा स्वरूप में सदा विराजती हैं। भगवान ने लक्ष्मी को समुद्रमंथन से प्राप्त किया था। जनकपुर में विवाह के पूर्व छ वर्ष की अवधि के लिये सीता जी भगवान से दूर रहीं अन्यथा सर्वदा वैकुण्ठ में साथ रहती हैं। इसी को स्मरण कर सकुचा रहीं हैं परन्तु मण्डप में साथ विराजने से हर्षित भी हैं। इसीतरह से देवतागण भी सकुचा रहे हैं। इसके पूर्व भगवान के अवतार तो कई हैं जैसे मछली कछुआ सूकर नरसिंह वामन आदि परन्तु विवाह तो रामावतार में ही हो रहा है और इसका आनन्द सबों को मिल रहा है। भगवान सभी देवगणों के पिता हैं इसलिये पिता के विवाह में हर्ष तो है परन्तु संकोच भी हो रहा है कि कहीं संतान अपने पिता के विवाह में कैसे सम्मिलित होगा।

जीव की चार अवस्थाएँ हैं जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति एवं तुरीय। मंडप की चारों दुलहिन मानो जीव की चारों अवस्थाओं को एक ही साथ दर्शा रहीं हैं और साथ में चारों भैया सभी अवस्थाओं के स्वामी के प्रतीक हैं। माण्डवी एवं भरत जी जाग्रत अवस्था को तथा उर्मिला एवं लक्ष्मण जी स्वप्नावस्था को और श्रुतिकीर्ति एवं शत्रुघ्न जी सुषुप्ति को प्रकाशित कर रहे हैं। तुरीयावस्था में संसार की सभी वस्तुओं की कामना से छुटकारा

मिलजाता है। यह जीवन्मुक्त की स्थिति है। इसे पंचम पुरुषार्थ भी कहते हैं। धर्म अर्थ काम मोक्ष से ऊपर उठकर जीव तुरीयावस्था में भगवान का विलक्षण अनुभव प्राप्त करता है। जैसे महाराज ध्रुव को हुआ था “...तस्थौ स्थाणुः इव अचलः। भा 4।8।76। यानी भगवान की अलौकिक अनुभूति में पूर्णतया जड़वत अचल हो गये थे।” “को हम कहीं विसरी तनु गये। उ 16।1। अयोध्या से विदाई के समय सुगीवादि की स्थिति।” “देखि भानुकुल भूषणहिं विसरा सखिन अपान। वा 233। जनकपुर पुष्पवाटिका में सीताजी की सखियों की स्थिति।” “...को मैं चलेऊ कहा नहीं बूझा। कबहुँक फिर पाछे मुनि जाई...। मुनि मग मॉझ अचल होई वैसा। ...मुनिहिं राम बहुभौति जगावा। अर 9।6। दण्डकवन में रामजी के आगमन के समय सुतीक्ष्ण मुनि की स्थिति।” ये सभी तुरीयावस्था के लक्षण हैं। विवाह मंडप रूपी शरीर में दशरथ जी जीव के प्रतीक हैं तथा चारो दुलहिन रूपी अवस्थाओं के स्वामी चारो दुलहा हैं। शरीर को इन चार अवस्थाओं का एकही बार अनुभव नहीं होता परन्तु यहाँ दशरथ जी को सौभाग्य से चारो का अनुभव उनसवों के स्वामी के साथ एकसाथ ही मिल रहा है।

8।10। “मुदित अवधपति सकल सुत वधुन समेत निहारी। जनु पायेऊ महिपाल मणि क्रियन सहित फलचारी। वा 325।” राजा दशरथ चारो पुत्र की दुलहिनों को देखकर ऐसे प्रसन्न हैं कि मानो चारो पुरुषार्थ का फल एक ही बार मिल गया है। राजा दशरथ तपस्या से रामजी को पुत्र के रूप में प्राप्त किये थे। भगवान उन्हें भक्ति से नहीं मिले थे इसलिये उन्हें मोक्ष नहीं मिला था। इस दोहा का ‘जनु’ शब्द इसी का संकेत है। भक्ति की साधना से ही जब सब कुछ प्राप्त हो जाता है तब प्रश्न उठता है कि चारो पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है। भक्ति के सदा साथ रहने वाली दया श्रद्धा एवं क्षमा भी भक्ति के साथ ही जीव को अपने आप प्राप्त हो जाती है। भगवान राम चारो भैया के भिन्न देह में रहने पर भी एक ही हैं “अंशन सहित मनुज अवतारा। लेइहों दिनकर वंश उदारा। वा 186।1।” वैसे ही भक्ति रूपी जानकी जी के साथ मांडवी दया एवं उर्मिला श्रद्धा तथा श्रुतिकीर्ति क्षमा सर्वदा विराजमान रहती हैं। जैसे मुक्ति के साथ धर्म अर्थ काम अनायास मिल जाते हैं उसी तरह भक्ति के साथ दया श्रद्धा एवं क्षमा मिल जाती हैं “भक्ति स्वतंत्र सकल गुणखानी। उ 44।3।” मुक्ति अवस्था के स्वामी रामजी हैं तथा धर्म के स्वामी भरत जी हैं “जो होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को। अयो 232।1।” काम के स्वामी लक्ष्मण जी हैं “रामस्य दक्षिणं बाहुः। अयो।” “अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते। वा रा अयो 31।27। अर्थ के स्वामी शत्रुघ्न जी हैं। जैसे अर्थ किसी को नहीं खोजता फिरता। उसके आने से संतोष हो जाता है वैसे ही शत्रुघ्न जी सर्वदा शांत एवं मौन रहे हैं।

8।11। “मिलत महा दोउ राज विराजे। उपमा खोज खोज कवि लाजे।। लही न कतहु हारि हिय मानी। इन सम यह उपमा उर आनी।। समधि देखि देव अनुरागे। सुमन वरषि यश गावन लागे।। जग विरंचि उपजावा जबते। देखे सुने व्याह बहु तबते।। सकल भौति सब साज समाजू। सम समधी देखा हम आजू।। वा 319।1 एवं 2।” रामजी के विवाह काल का प्रसंग है। वर एवं वधू के पिता को समधी कहते हैं। देवगण दोनों समधी राजा दशरथ एवं जनक जी को ‘सम समधी’ यानी समान कह रहे हैं। समता के अतिरिक्त दोनों राजा में विषमता भी है। 1। दशरथजी चक्रवर्ती हैं तो जनक जी मण्डलवर्ती। दशरथ जी के लिये कहा है “सुरपति वसहिं बाहुवल जाके। नरपति रहहिं सकल रूख ताके। अयो 24।1।” 2। दोनों के मान प्रतिष्ठा में भी अन्तर है। दशरथ जी को “सुरपति जेहि आगे करि लेहीं। अर्ध सिंहासन

आसन देहीं। अयो 97।2।” 3। दशरथ जी का इक्ष्वाकु कुल भागवत धर्मावलम्बी है रंगनाथ भगवान कुलदेवता हैं। जनक जी शैव कुल के हैं इनके पूर्वज देवरात को शिव जी ने अपना धनुष दिया था। 4। दशरथ जी की मृत्यु के उपरान्त भरत जी को वशिष्ठ जी समझाते हैं “भे कोउ अहहिं न होनेउहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा। अयो 172।3।” दशरथ जी के तुल्य कोई हो नहीं सकता।

दोनों समधी में समानता है क्योंकि 1। सीता जी एवं रामजी भिन्न नहीं हैं “गिरा अर्थ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। बन्दौ सीताराम पद ...। बा 18।” ऐसे समान वस्तु के अधिकारी पिता भी समान हुए। 2। रामजी नारायण एवं सीता जी लक्ष्मी हैं। ईश्वर एवं ईश्वरी के पिता होने के कारण दोनों समान हैं। 3। लक्ष्मी और नारायण का पिता कोई नहीं हुआ इसलिये “उपमा खोज खोज कवि लाज” परन्तु आज संयोग वश “इनसम ये उपमा उर आनी” यानी आकाश की उपमा आकाश एवं सुमेरु की उपमा सुमेरु ही हो सकती है। ऐसी स्थिति में दोनों समधी समान हुए। 4। जीव परोक्ष रूप से अपने सुकृत या दुष्कृत से सम्पर्क रखता है परन्तु दशरथ जी एवं जनक जी के सुकृत रामजी एवं सीता जी दोनों को परोक्ष नहीं मूर्तिमान होकर साक्षात् दर्शन दे रहे हैं “दशरथ सुकृत राम धरि देही। जनक सुकृति मूरति वैदेही। बा 309।1।” इसलिये भी दोनों में समानता है। 5। रामजी एवं सीताजी अयोनिज हैं रामजी खीर से आये “निज इच्छा निर्मित तनु। बा 192।” सीता जी धरती से आयीं। अतः अयोनिज के पिता होने से दोनों समान हुए। 6। विवाह के आनन्द से दोनों गदगद हैं अतः समान हुए। 7। रामजी एवं सीता जी के परत्व के कारण दोनों समधी में समानता है। सीता जी रामजी के हृदयस्थ हैं तथा रामजी सीताजी के हृदयस्थ हैं। दशरथ जी रामजी एवं जानकी जी को समान भाव से देखते हैं तथा जनकजी भी दोनों को समान भाव से देखते हैं। इन्हीं कारणों से विषमता के बावजूद भी दोनों में समानता है।

रामजी की बाराती में शिवजी की बाराती की तरह डरावने लोग बारात में नहीं थे। अतः देवगण प्रसन्नचित्त से समान बुद्धि यानी ‘सम’ ‘धी’ से बारात का दर्शन किया। इसलिये भी समधी शब्द का प्रयोग हुआ है।

‘देखा हम आजु’ का भाव है कि पहले इस तरह की बारात देखा नहीं था। शिव जी की बारात में ब्रह्मा एवं हिमाचल समधी थे और दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है। इसीतरह से अन्य देवों की बारात में भी समानता का अभाव रहा है।

8।12। “सूयोदन सुरभी सरपी सुन्दर स्वादु पुनीत। छनमहँ सबके परसि गे चतुर सुआर विनीत। बा 328।” “भौंति अनेक परे पकवाना.....व्यंजन विविध भौंति को जाना। बा 328।2।” परसने वाले सब चतुर थे यानी पत्तल में कहाँ क्या रखना है जानते थे। ‘पुनीत’ भोजन यानी भगवान का भोग लगा हुआ प्रसाद के रूप में भात दाल एवं गाय का घी अनेक पकवान आदि परोसे गये। “यत् करोषि यत् अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदपणम्। गी 9।27।” भगवान ने कहा है मेरे निमित्त सब काम करो। मुझे अर्पण कर ही भोजन करो। “यज्ञशिष्टाशिनः सन्तोमुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। गी 3।13।” भगवान के अर्पित अन्न खाने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है।

अयोध्यावासी “पंच कवल करि जेवन लागे। बा 328।1।” आपोसन यानी पंचकवर करके ही भोजन करना चाहिये “पात्रमध्ये यथा पात्रं हस्तमध्ये यथा घृतम्। आपोषणं बिनाभुंक्ते त्रयो गोमांस भक्षणम्।। यानी वर्तन के बीच वर्तन रखकर खाना, हाथ में लेकर घी खाना, बिना पंचकवर का भोजन करना गोमांस खाने के समान पापकारी है।” भोजन के पूर्व चंद्रमा के समान शीतल प्रकाश

से युक्त भगवान विष्णु का हृदयकमल में ध्यान कर तुलसीमिश्रित जल से “ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा” से आचमन कर जल पी लेवे। “ॐ प्राणाय स्वाहा” मंत्र कहते हुए अंगूठा तर्जनी एवं मध्यमा अंगुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये परन्तु दाँतो से न चवाये। “ॐ अपानाय स्वाहा” कहते हुए अंगूठा मध्यमा एवं अनामिका अंगुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये। “ॐ व्यानाय स्वाहा” कहते हुए अंगूठा अनामिका एवं कनिष्ठा अंगुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये। “ॐ उदानाय स्वाहा” कहते हुए अंगूठा तर्जनी एवं कनिष्ठा अंगुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये। “ॐ समानाय स्वाहा” कहते हुए पॉचो अंगुली से थाली का मिश्रित भोजन के कुछ दाने उठाकर निगल जाये। पुनः तुलसीमिश्रित जल से “ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा” से आचमन कर जल पी लेवे। यह पंचकवर की विधि है। भोजन का प्रारम्भ मधुर पदार्थ से करते हुए खट्टा नमकीन तथा कड़ुआ एवं तीता ग्रहण करे और अंत में मधुर रसयुक्त पदार्थ तथा पीने वाली वस्तु को खाये पीये।

8 | 13 | “चरण कमल रजकहँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।। छुअत शिला भई नारि सुहाई ”

जो प्रभु अवसि पार गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहु। अयो 99 | 1 से 4 | ”

“पद कमल धोई चढ़ाउँ नाव न नाथ उतराई चहैं.....तबलनि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहैं। अयो 99 छंद। ”

“सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। बिहँसे करुणा ऐन चितये जानकी लखन तन। अयो 100। ”

कृपासिन्धु बोले मुसकाई। सोई करहु जेहि नाव न जाई। अयो 100 | 1 | ”

रामजी जंगल के रास्ते श्रृंगवेर में गंगा पार करना चाहते हैं। निषादराज पराभक्ति के प्रतीक हैं। अटपटे यानी संदर्भ से हटकर कुछ का कुछ बोल रहे हैं। पत्थर से काठ की नाव तो नरम ही है अतः आपके चरण की धूल से यह अहिल्या की तरह नारी बन जायेगी। मेरा रोजी रोजगार ख़तम हो जायेगा। ऐसा नहीं था कि उनके पास एक ही नाव थी। भरत जी को पूरी सेना के साथ “दंड चारि मह भा सब पारा। अयो 201 | 4 | ” यह भी बताते हैं कि “यह घाट ते थोरिक दूर अहै कटिलौं जलथाह बताइहैं जू। परसें पगधूरि तैर तरनि घरनी घर क्यों समुझाइहैं जू। तुलसी अवलंब न और कछु लरिका केहि भाँति जियाइहैं जू। वरू मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाथ चढ़ाइहैं जू। कवितावली अयोध्या 6। ” यानी नाव के बिना भी आप थोड़ी दूर जाकर कमर भर पानी में बिना नाव के पार कर सकते हैं। चरण धोये बिना पार नहीं करेंगे इस बात की दृढ़ता सिद्ध करने के लिये अपने परिवार की शपथ न खाकर दशरथ जी की शपथ खाते हैं। यह अटपटा है। लक्ष्मण जी के स्वभाव से परिचित लगते हैं और उनके बाण का डर भी लगता है परन्तु इसको पहले ही दुहरा कर उससे अपने को बचाने का प्रयत्न करते हुए अटपटी बात करते हैं। रामजी को ‘प्रभु’ तथा ‘कृपालु’ कहकर सम्बोधित करते हैं।

रामजी पहले जानकी जी की ओर मुसकुराते हुए देखते हैं और तब लखनलाल को देखते हैं। भाव है कि निषाद राज की शरणागति की आतुरता को वात्सल्य भावयुक्त लक्ष्मी तथा शेष जी से अनुमोदित करा दें। यह भी चाहते हैं कि जानकी जी द्वारा लखन लाल से इसे इसके अटपटे वचन के लिये क्षमा दिलवा दें। भगवान जानकी जी एवं लखनलाल की ओर हँसते हुए देखते हैं। पुनः मुसकुराते हुए निषादराज को सम्बोधित करते हैं। रामजी के हँसने का भाव है कि देखो यह कितना बड़भागी है कि हमारे हँसते मुख के दर्शन तथा चरण पखारने के लिये ब्रह्मादिक लालायित रहते हैं और इसे सब प्राप्त हो रहा है “नरसहस्र महँ सुनुहु पुरारी। कोई एक होहि धरम ब्रतधारी।

.....विषय विमुख विराग...।।सम्यक ज्ञान...।दुर्लभ ब्रह्मलीन मुनि ज्ञानी।सबसे सो दुर्लभ सुरराया।राम भक्ति गत मद माया।उ 53।4।”शेषी भगवान जीव को अपना शेष अंश मानकर अकारण कृपा करते हैं “सो कृपालु केवट ही निहोरा।जो कीन्हें महि पग ते थोरा।अयो100।2।”

8।14। भरत जी के साथ भगवान का अटूट प्रेम क्यों ?

भरत जी ने अपने को सदा नीच समझा “यद्यपि मैं अनभल अपराधी।भइ मोहि कारण सकल उपाधि। भगवान के महान गुणों का स्मरण करते हैं “तदपि शरण सन्मुख मोहि देखी।क्षमि सब करिहहि कृपा विशेषी।।शील सकुच सुठि सरल सुभाउ।कृपासनेह सरल रघुराउ।अयो 182।2 एवं 3।” बड़ा होते हुए छोटे से मिलना यह शील गुण है। बहुत कुछ करके भी भगवान कम करने का संकोच करते हैं जैसे विभीषण जी के साथ “जो सम्पति शिव रावणहि दीन्ह दिये दस माथ।सोई सम्पदा विभीषणहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ।मु 49।”पवित्र एवं सरल स्वभाव तथा शीघ्र द्रवित हो जाने को सुठि गुणकहते हैं।कृपा गुणसे दूसरे के कष्ट को तुरत दूर करने के लिये तैयार रहते हैं “कबहुँक अनभल कीन्ह न रामा।मैं शिशुसेवक यद्यपि बामा।अयो 182।3।” “तेउ सुनि शरण सामुहे आये।सकृत प्रणाम किये अपनाये।अयो 298।2।” भरत रामजी के परस्पर प्रेम के कारण ही भरत जी रामजी को इतने प्रिय हैं “राम प्राण के प्राण तुम्हारे।तुम रघुपतिहि प्राण ते प्यारे।अयो 168।1।कौशल्या जी का वचन है कि रामजी भरत के प्राण हैं तथा भरत रामजी को प्राण से भी अधिक प्यारे हैं। “मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।अघ अवगुण तजि आदरहीं समुझि आपनी ओर।अयो 233।1।”भगवान से मिलने चित्रकूट आश्रम पर पहुँचने ही वाले हैं कि भरत जी मन ही मन सोचते हैं कि मेरी माँ की करतूत याद कर भगवान हमसे नहीं भी मिल सकते हैं परन्तु वे जब स्वयं की ओर देखेंगे तो उन्हें अपनी कृपा गुण का स्मरण होगा तथा मुझे अवश्य अपना लेंगे।इसीलिये तो कहा है कि “भरत महा महिमा जलराशि।अयो 256।1।” “.....राम प्रेममूर्ति तिन्ह आहीं।अयो 183।2।” रामजी प्रेम की साक्षात मूर्ति हैं और भरत जी की महिमा समुद्र के समान है। “भरत हृदय सियराम निवासू।तहँ कि तिमिर जहँ तरणि प्रकासू।अयो 294।4।”भरत जी के हृदय में सीताराम रूपी सूर्य का सतत प्रकाश है।

भरतजी को रामजी से इतना प्रेम था कि गुरु वशिष्ठ जी एवं मंत्री सुमंत की बातों को ठुकराकर वे रामजी को मनाने जंगल जाने को तैयार हो गये “हमरे शरण राम की पनही।अयो 238।1।”रामजी चित्रकूट में वशिष्ठ जी से कहते हैं “भयउ न भुवन भरत सम भाई।अयो 258।2।” चित्रकूट जाने के पहले वाल्मीकि जी से रामजी ने भरत जैसे भाई का प्राप्त होना अपना पुण्यमाना है “तात वचन अरू मातु मत भाई भरत से राऊ।हम कहँ दरश तुम्हार प्रभु सब निज पुण्य प्रभाऊ।अयो 125।” देवतालोगों ने भी यही बात कही है “भरत सरिस को राम सनेही।जग जप राम राम जपु जेही।अयो 217।4।” भरत जी के वन में रामजी को मनाने जाने का प्रसंग है “जइ चेतन जग जीव घनेरे।जिन हेरे प्रभु जिन प्रभु हेरे।। ते सब भये परम पद योगू।भरत दरश मेंटे भव रोगू।अयो 216।1।” रामजी के संसर्ग से जंगल के रास्ते की सभी वस्तुयें को परम गति की योग्यता मिल गयी थीं और जब वे जंगल के रास्ते भरत जी के संसर्ग में आयीं तब सबों को परमगति मिल गयी।यह बड़ बात भरत के नाहीं।सुमिरत जिन्हहीं राम मन माहीं।अयो 216।2।” भरद्वाज मुनि ने भरत जी के लिये कहा “तात तुम्हार विमल यश गाई।पाइहिं लोकहूँ वेद बड़ाई।अयो 206।1।” वेद एवं संसार भी भरत जी की बड़ाई करके प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। जनक जी एवं सुनयना जी चित्रकूट में विचारते हैं “भरत महा

महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न कहहिं बखानी। अयो 288।1।” यानी रामजी अपने सर्वज्ञ गुण से भरत जी की महिमा जानते तो हैं परन्तु कहने में भगवान का सामर्थ्य काम नहीं करता क्योंकि वह महिमा असीम है। रामजी को मनाने भरत जी को जंगल जाते समय इन्द्र के कुचाल पर बृहस्पति ने सचेत किया “भरतहिं जानु राम परिछाहीं। अयो 265।2।”

8।15। भरत जी के प्रति लखनजी राजमद की बात क्यों बोले ?

चित्रकूट में रामजी से मिलने जब भरत जी आ रहे हैं तब उनके साथ चतुरंगिनी सेना भी थी। लखनलाल इसी को जानकर भड़क उठे कि भरत को राजमद हो गया है। आज उसको समर में सदा के लिये सुला दूँगा। लखनलाल जी ने कहा “कब लागि सहैं रहैं मन मारे। अयो 228।1।” “.....प्रकट करौं रिस पाछिल आजू। अयो 229।2।”

पीछे की बातें जो लक्ष्मण जी के मन में बसी हुई थी। 1। भरत जी के नाना अश्वपति ने कैकेयी का विवाह दशरथ जी से इसी शर्त पर किया था कि कैकेयी के ही पुत्र राज के उत्तराधिकारी होंगे। इस पर सचेत रहने के लिये ही उन्होंने कुटिल दासी मन्थरा को कैकेयी के साथ अयोध्या भेजा था। 2। कैकेयी अपने पति की सेवा भूल कर केवल वरदान पर केन्द्रस्थ रही। 3। वरदान में भरत को राज परन्तु रामजी को कठिन तपस्वी के आचरण वाला कन्द मूल खाते हुए चौदह वर्ष का वनवास क्यों। लक्ष्मण जी को स्वाभाविक रूप से भी रामजी से अत्यधिक लगाव था। जंगल जाते समय श्रृंगवेर पुर में रात में रामजी को सोते समय निषादराज की उपस्थिति पर शक हुआ कि अयोध्या के राजवंश पर यह राज हड़पने हेतु आघात न कर बैठे। उधर निषादराज भी रामजी के अत्यंत प्रेमी थे और उनके मन में भी आया कि कहीं भरत की तरह लक्ष्मण भी धोखा देकर रामजी पर आघात न कर बैठे। रामजी में असीम प्रेम के कारण ही लक्ष्मण जी भरत जी के बारे में कुपित होकर ही अनिष्ट बातें कह गये थे।

8।16। जटायुजी की भगवत् सेवा : चींटी से ब्रह्मा तक सब नश्वर शरीर वाले हैं। भगवान की अध्यक्षता में ही प्रकृति विभिन्न स्वभाव एवं विभिन्न देह वाली जीवात्माओं का निर्माण करती है। जब तक भगवान मिल नहीं जाते तबतक संसार में जन्मने एवं मरने का क्रम चलता रहता है। जिस देह से भगवान में प्रेम हो जाये तथा उनकी सेवा का अवसर मिले वही प्रिय देह है। कागभुसुंडी जी ने कहा “सोई पावन सोई सुभग शरीरा। जेहि तनु पाय भजिय रघुवीरा। उ 95।1। और भगवान से विमुख ब्रह्माका भी शरीर निन्दनीय है “राम विमुख लह विधि सम देही। कवि कोविद न प्रशंसहीं तेही। उ 95।2।” कौआ के अपने शरीर की सार्थकता बताते हुए उन्होंने गरुड़ जी से कहा “यह तन रामभक्ति मोही जामी। उ 95।2। ताते यह तन मोहि प्रिय। उ 114।” जब पंचवटी के पास जटायु से रामजी की भेंट हुई तब उन्होंने भगवान को आश्वस्त किया “सीतां च रक्षयिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणः। वा रा अर 14।33।” जब आप भाई के साथ जंगल जायेंगे तब आश्रम में सीता की रक्षा मैं करूँगा। पिता दशरथ से उनकी मित्रता की बात सुनकर भगवान ने हर्षपूर्वक प्रणाम करते हुए उन्हें हृदय से लगा लिया “जटायुषं तं परिपूज्य राघवो मुदापरिष्वज्य च सन्नतोऽभवत्। वा रा अर 14।33।” जब रावण सीताजी को चुराकर ले जा रहा था तब जटायु जी ने उससे घोर युद्ध किया तथा पंख कटने पर असहाय हो मरणान्तक पीड़ा के साथ सोंचने लगे “मेरो एकउ हाथ न लागे गयो बीति वादि कानन ज्यों, कलपलता दवलागी। दशरथ सो न प्रेम प्रतिपाल्यो, हुतो सकल जग साखी। वरवश हरत निशाचरपति सो, हठि न

जानकी राखी। मरत न मैं रघुवीर विलोक्यो, तापसवेष बनाये। चाहत चलन प्राण पीवर बिनु, सिय सुधि प्रभुहि सुनाये। बार बार कर मीजत सिर धुनि, गीधराज पछताओ। तुलसी प्रभु कृपाल तेही अवसर आइ गये दोउ भाई।। गीतावली अरण्य 12।।” यानी भगवत् कैर्कर्य के बिना ही मानो कल्पलता के समान इस देह को आग ने जला दिया हो। दशरथ जी की तरह रामजी के वियोग में शरीर छोड़ते तो संसार गवाह बनता परन्तु सीता जी को राक्षस से बचाये बिना प्राण निकलने पर है। भक्तिप्रेम के कारण अंतर्यामी भगवान के दर्शन होते ही उन्होंने कहा “तं दीन दीनया वाचा सफेन रूधिरं वमन्। अभ्यभाषत पक्षीश रामं दशरथात्मजम्। वा रा अर 67।14।” “नाथ दशानन यह गति कीन्हा। सो खल जनकसुता हरि लीन्हा। अर 30।1।” गीध की दशा देखकर भगवान ने लक्ष्मण से कहा पितातुल्य गीधराज मेरे दुर्भाग्य से इस स्थिति में पड़े हैं “अयन्तु पितुर्वयस्कोमे गृधराजो महाबलः। शेते विनिहितो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात्। वा रा अर 67।27।” और निश्चित ही मेरे ही कारण अब प्राण छोड़ना चाह रहे हैं “ममाय नूनमर्थेषु यतमानो विहंगमः। राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यक्ष्यति दुस्त्यजान्। वा रा अर 68।2।” इतना कहकर रामजी ने उन्हें गोद में ले लिया “राघव गीद्ध गोद कर लीन्हैं। नयन सरोज सनेह सलिल शुचि मनहुँ अरघ जल दीन्हैं।। सुनहु लखन खगपतिहिं मिले वन मैं पितु मरण न जान्यो।। सहि न सक्यो सोऽपि कठिन विधाता बड़पक्ष आज ही भान्यो। बहुविध राम कह्यो तन राखन परम धीर नहीं डोल्ह्यो।। तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहैं। जाके नाम मरत मुनि दुर्लभ तुम्हहिं कह्यो पुनि पैहैं। गीतावली अरण्य 13।।” भक्तों के देह भगवान को अतिप्रिय है “देहो वै स हरिप्रियः” इसीलिये उनको शरीर रखने बोलते हैं परन्तु भगवान की गोद में किस सौभाग्य से मृत्यु मिल रही है ऐसा सोचकर जटायु जी ने शरीर छोड़ने को ही प्राथमिकता दी। लक्ष्मण जी से रामजी ने कहा मेरे कारण शरीर छोड़ने हेतु मेरी आज्ञा से इन्हें मुक्तात्माओं को प्राप्त होने वाला उत्तमलोक एवं मोक्ष मिले “अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम्। मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकमनुत्तमम्। वा रा अर 68।30।”

(इस श्लोक में रामजी ने रघुलेयाम यह बताया कि वे मनुष्य मात्र नहीं बल्कि साक्षात् नारायण हैं। अल्पज्ञ लोग वाल्मीकि मुनि के राम को मात्र मर्यादा पुरुष यानी एक आदर्श आदमी मानते हैं। सोचने की बात है कि मोक्ष के लिये आज्ञा देने वाले नारायण के अतिरिक्त अन्य कौन हो सकते हैं।)

“गीद्ध देह तजि धरि हरिरूपा। भूषण बहुपटपीत अनूपा।। श्यामगात विशालभुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि वारी।। अर 31।1।” भक्त अगर भगवान के लिये बहुत छोटा कैर्कर्य भी करता है तब भी भगवान उसे मेरुपर्वत की तरह विशाल मानते हैं। मांसाहारी गीद्ध को गोद में रखकर रामजी ने मोक्ष दिया तथा चिता पर रख दाह संस्कार किया “नीके जानत राम हियो हैं। प्रणतपाल सेवक कृपालुचित पितु पटहरहिं दियो हैं।। तिर्यक योनि गीध जनम भरि खाई कुजन्तु जियो हैं। महाराज सुकृति समाज सब उपर आज कियो हैं।। श्रवण वचन मुख नामरूप चख राम उछंग लियो हैं। तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै वियो हैं। नीके। गीतावली अरण्य 14।।”

जटायु जी में त्रुटियों थीं। पूर्व जन्म के पाप के कारण नीचयोनि में जन्म तथा आजीवन हिंसा से जीविका चलाना। उनके गुण हैं। दशरथ जी से मित्रता। रामजी से मिलन। रामजी के आश्रम की रक्षा। रामजी के प्रेमपात्र बनना। रामजी के गोद में बैठना। मरते समय रामजी का दर्शन। रामजी से पितातुल्य सम्मान पाना। रामजी द्वारा अंतिम संस्कार तथा सविधि पिंड सहित ब्रह्ममेधसंस्कार प्राप्त करना। इसीलोक में रामजी के सामने परमपद का स्वरूप पाना। लखनलालजी ने दशरथ जी की निन्दा भी की परन्तु जटायु जी के लिये वे भी दुखी हुए तथा प्रेम से संस्कार में लगे रहे। भागवत में कहा है कि नौ संकर जातियों के समान निकृष्ट जाति में भी यदि भगवद्भक्ति हो

जाये तो वह पवित्र बन जाता है “किरातहूणांध्रपुलिन्दपुक्कसाः आभीर कंका यवनाः स्वसादयः। अन्ये च पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः। भा 2।4।18।”

8।17 सुन्दर काण्ड के कुछ प्रसंग

1। “जाम्बवन्त के वचन सुहाये। सुनि हनुमान हृदय अति भाये। सुन्दर चौपाई 1।” प्रश्न है कि जाम्बवान जी के कौन से सुन्दर वचन थे जिसे सुनकर हनुमान जी प्रसन्न हो गये। जाम्बवान के सुन्दर वचन का विवरण किष्किन्धा के अंत में मिलता है। “कहे ऋक्षपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहे बलवाना। पवनतनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना। कवन सो काज कठिन जगमाहीं। जो नहीं तात होय तोहि पौही।। रामकाज लागि तव अवतारा। सुनि कपि भयउ पर्व ताकारा।। कि 29।1 से 3।” ज्ञानी लोग सम्मुख प्रशंसा से लज्जित होते हैं। इसलिये हनुमान जी ने ‘बुधि विवेक विज्ञान निधाना’ पर ध्यान नहीं दिया। जब वे सुने ‘रामकाज लागि तव अवतारा’ तब भगवत् कैक्य हेतु तैयार हो गये। हनुमान जी के लिये अवतार शब्द का प्रयोग हुआ जो देवताओं के लिये प्रयोग होता है। जैसे गरुड़जी भगवान के विष्णु रूप में दिव्य पार्षद हैं उसी तरह भगवान के राम रूप में हनुमान जी दिव्य पार्षद हैं। इसका प्रमाण पूर्व में मिल चुका है कि रामजी ने सुदर्शन मंत्र एवं यंत्र से घटित मुद्रिका को हनुमान जी को ही दिया। अन्य बन्दर उस मुद्रिका को संभालने में सक्षम नहीं थे और इसका अधिकारी केवल दिव्य पार्षद ही हो सकता है “पाछे पवनतनय शिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा। परसा शीश सरोरूह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी। कि 22।5।” अतः जाम्बवान जी का हनुमान जी को अवतार कहना उचित है।

जाम्बवान जी से हनुमानजी ने पूछा कि ‘लीलही लांघेउ जलनिधि खारी’ सहित सहाय रावनहि मारी। आनउ यहाँ त्रिकूट उपारी।’ ‘उचित सिखावन दीजिये मोहि’। कि 29।4 से 5। जाम्बवान जी ने सोचा कि समुद्र को अगर ये पी जायेंगे तो अनेको जीवों की हानि होगी। रावण को मारना एवं त्रिकूट पर्वत के ऊपर बसे लंका को उखाड़ कर लाना भी उचित नहीं है। इससे रामजी के यश में कमी होगी कि हनुमान नहीं रहते तब सीताजी की रक्षा होती ही नहीं। इसलिये उन्होंने कहा “एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई। कि 29।6।” “कपि सेन संग संहारि निश्चर राम सीतहि आनिहैं”। जाम्बवान जी का यही वचन हनुमान जी को अच्छा लगा जिससे रामजी के यश एवं मर्यादा की वृद्धि हो और रामजी स्वयं रावण पर विजय प्राप्त करें और तीनों लोक भगवान का यश गान करें। इस कार्य में हनुमान जी सीता जी का पता लगाने तक का ही कैक्य करें। जाम्बवान जी की इसी प्रेरणा से सीता जी भी हनुमान जी को देखकर प्रसन्न हुई “बूड़त विरह जलधि हनुमाना। भयेउ तात मोकह जलयाना। सु 13।1।” “अजर अमर गुणनिधि सुत होहू। सदा करहिं रघुनायक छोहू। सु 16।2।”

अन्य सभी काण्डों से हटकर मानस के सुन्दर काण्ड का प्रारम्भ मंगलाचरण के बाद किसी दोहा या सोरठा से नहीं हुआ है। दोहा या सोरठा विराम का सूचक है। इसका तात्पर्य है कि किष्किन्धा के अंतिम प्रकरण जाम्बवान हनुमान संवाद का विराम नहीं हुआ है और यह आगे मैनाक के प्रकरण तक चला है। हनुमान जी ने मैनाक के विश्राम करने के अनुरोध को टुकरा दिया है। रामजी के कैक्य की उद्देश्य पूर्ति तक हनुमान जी को सुख चैन कहाँ है।

2। “तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर।। चकित चितब मुदरी पहिचानी। हर्ष विषाद हृदय अकुलानी।। जीति को सकय अजय रघुराई। माया ते असि रचि नहीं जाई।। सु 12।1 एवं 2।” लंका में अशोक वाटिका में हनुमान जी ने चुपके से अशोक वृक्ष के ऊपर से रामजी ने जो अंगूठी उन्हें दी थी उसे वृक्ष के नीचे बैठी सीताजी के पास गिरा

दी। अंगूठी देखकर सीता जी को आश्चर्य हुआ। वे प्रसन्न भी हुई और दुःखी भी। प्रसन्न होने का कारण था कि वह रामजी की अंगूठी थी। चर्कांकित होने के साथ साथ उसपर सुन्दर राम नाम भी अंकित था। रामजी वैष्णव ईश्वराकु कुल के थे जिनके यहाँ वैकुण्ठ से साक्षात् रंगनाथ भगवान साकेत नगरी के साथ आये तथा उनके कुलदेवता बनकर रहे। त्रिपादविभूति में अयोध्या नामकी एक पुरी है जहाँ भगवान श्रीमन्नारायण राम रूप से सीता जी के साथ विराजते हैं “तत्र अयोध्यापरी रम्या यत्र नारायणो हरिः...। कृतावतारो श्रीराम ह्यनया कलिभूतया । पदमपुराण ।” वही भगवान राम के रूप में अपनी अयोध्या नगरी के साथ भूलोक पर अवतार लेकर आते हैं “श्रीरंगाख्यं परंधाम मममानिनि भूतले । पदमपुराण ।” । वैष्णवों की सभी वस्तुयें चर्कांकित रहती हैं “धृत्वा तप्तायसीं मुद्रां देवः रक्षां करिष्यति ।” । ज्योतिष शास्त्र में कहा है “सूर्यादीनां मुनिभिरुदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणाम् । स्नानैर्दानैर्हवन वलिभिस्तेऽत्र तुष्यन्ति यस्मात् । पुरा ।” यानी सूर्यादि ग्रहों के शमनके लिये अंगूठी पहनना दान हवन आदि करना लाभदायक बताया है। गर्ग ने मनुष्यों को शशियंत्र धारण करने को लिखा है। सभी तरह के ग्रह के प्रभाव को शांत करने के लिये सुदर्शन यंत्र बताया है जो अंगूठी आदि पर अंकित रहते हैं “सौदर्शनं महायन्त्रं घटितं चाङ्गुलीयकम् । धारयै न मनैव मृत्युः नश्यति असंशयम् । पुरा ।” रामजी की अंगूठी भी पर भी सुदर्शन जी अंकित थे। सीता जी दुःखी इसलिये होती हैं कि कहीं किसी राक्षसी माया से अंगूठी बनाकर हमें ठगा तो नहीं जा रहा है। पुनः सोचती हैं कि यह दिव्य सुदर्शनांकित अंगूठी माया से कभी नहीं बन सकती। अंगूठी के बारे में रामाणियों के अपने अपने विचार हैं। कुछ कहते हैं कि यह अंगूठी जानकी जी की थी जो गंगा पार करते समय निषादराज को देने के लिये उन्होंने रामजी को दिया था “मणि मुंदरी तेही दीन्ह उतारी । अयो 101।2।” और जब निषाद ने उसे स्वीकार नहीं किया तब वह भगवान के पास रह गयी जो उन्होंने हनुमान जी को सीताजी के लिये थाती एवं हनुमान जी की रामदूत की विश्वसनीयता को प्रमाणित करने हेतु भेजा था। परन्तु इस विचार का अन्यत्र प्रमाण नहीं मिलता। एक और अधिक युक्तियुक्त विचार है कि यह अंगूठी रामजी की थी। ऐसी परम्परा है कि विवाह के समय कन्या वर को एक आभूषण देती है जिसे वह जीवन भर धारण करता है तथा उसीतरह वर के दिये हुए आभूषण को कन्या जीवन भर धारण करती है। रामजी को यह अंगूठी सीताजी की तरफ से जनकपुर में मिली थी। जब वे वन के लिये तपस्वी के वेष में प्रस्थान किये तब सीताजी भी उनके साथ आई और सीताजी के सुहाग के प्रतीक उस अंगूठी को कैकेयी भी नहीं उतरवा सकती थी। सुन्दर काण्ड को सुन्दर बनाने में इस अंगूठी का योगदान है। यह जनकजी के प्रेम का प्रतीक है तथा रामनाम एवं सुदर्शन यंत्र मंत्र से बनी हुई है। इस अंगूठी से हनुमान जी पर सीता जी को विश्वास हुआ और उनका शोक दूर हुआ।

8।18 “शिव द्रोही मम दास कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा । लं 1।4।”

कोई वैष्णव शिव से द्रोह या दुश्मनी नहीं रखता। गृहस्थ विवाहादि में ढोल ढाक आदि सब की पूजा करते हैं जो लौकिक रीति का पालन है। द्रोह दुश्मनी बदला लेने की भावना से होती है। सहस्रार्जुन ने परशुराम के पिता जमदग्नि का शिर काट डाला था इसलिये परशुराम क्षत्रियकुल के द्रोही हो गये थे “विश्व विदित क्षत्रियकुल द्रोही । वा 271।3।” दण्डकारण्य में रामजी ने मुनियों के द्रोही राक्षसों के अन्त की प्रतिज्ञा ली थी “जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही । अरण्य 12।1।” शिव जी को वैष्णवों में अग्रगण्य कहा है “वैष्णवानां यथा शम्भुः । भा 12।13।16।” वैष्णवगण

शिवजी से द्रोह क्यों करेंगे। शिवभक्त शैव ही वैष्णवों पर आघात करते रहे हैं। दण्डकारण्य के शिवभक्त राक्षस ही मुनियों पर अत्याचार करते थे। शिवभक्त हिरण्यकशिपु ने ही विष्णु भक्ति के कारण प्रह्लाद के अंत का सब प्रयास किया। शिवजी ने स्वयं ही अपने भक्तवाणासुर के पक्ष से भगवान कृष्ण से भयंकर युद्ध में उनपर ब्रह्मास्त्र तक का प्रयोग किया परन्तु भगवान ने उसका काट ब्रह्मास्त्र से ही कर दिया “बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः। आरूढ्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः। भा 10।63।6।” “ब्रह्मास्त्रस्य तु ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम्। भा 10।63।13।” परमार्थिक गति तो भगवान में अनन्यता से ही मिलती है क्योंकि भगवान को छोड़कर सभी नश्वर हैं “आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। गी 8।16। यानी ब्रह्मा से लेकर चींटी तक जन्म तथा मृत्यु प्राप्त करते हैं।” “क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। गी 9।21। पुण्य घट जाने पर स्वर्ग से मृत्युलोक में आ जाते हैं।” भगवान को छोड़कर अन्य सबकी पूजा से सीमित लाभ मिलता है। इसलिये भगवान में अनन्यता यानी पूर्णप्रेम से लगा रहने को कहा है “अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभित्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। गी 9।22। भगवान ने कहा कि केवल मुझमें भक्ति करने वाले की सभी कुशलता का मैं निर्वाह करता हूँ। “नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न च ईज्यया। गी 11।53। यानी केवल वेद पढ़ने तपस्या दान तथा पूजा से मैं नहीं मिलता।” “मय्यनन्य भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढात्। भागवत 3।25।22।” “विसृज्य सर्वानन्याश्च मामेव विश्वतो मुखम्। भजन्ति अनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरपि पारये। भा 3।25।40। जो संसार का सबकुछ छोड़कर मेरी निश्चलभाव से भक्ति करता है उसे मैं मृत्यु के पार ले जाता हूँ यानी परमपद में रखता हूँ।” “रामही भजहि तात शिवधाता। नर पामर कर केतिक बाता। उ 105।2। कागभुसुण्डी जी के पूर्वजन्म के गुरु ने उन्हें उपदेश दिया था कि शिव स्वयं रामजी को ही भजते हैं।” ब्रह्मसंहिता में शिवजी ने राजा भद्रसेन से स्वयं कहा है कि मैं नारायण का परतन्त्र हूँ। मुक्ति दाता मैं नहीं हूँ इसके अधिकारी स्वयं नारायण ही हैं “नाहं कैवल्यदो राजन् परतन्त्र स्वभावतः। स्वतन्त्र सर्व भूतात्मा परमात्मा रमापतिः।” चातक को जैसे स्वाति की वूँदे ही प्रिय होती है वैसे ही भगवान में चातक जैसी अनन्यता से ही कल्याण होता है “लोचन चातक जिन कर राखे। रहहिं सदा जलधर अभिलाषे। अयो 127।3। चातक रटनि घटे घटि जाई। बड़े राम पद प्रीति भलाई। अयो 204।2। गंगा यमुना सिन्धु जल सबै सदा भरपूर। तुलसी चातक के मते बिन स्वाति सब धूर। रटत रटत रसना लटी तृषा सुखा गे गात। तुलसी चातक भक्त को उपमा देत लजात। दोहावली 280।

8।19 “जौ जनतेउं बन बन्धु बिछोहू। पिता वचन मनतेउ नहीं ओहू। लं 60।3।” “सुत वित नारी भवन परिवारा होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।...मिलही न जगत सहोदर भ्राता। लं 60।4।” मेघनाद की शक्तिवाण लगने से लक्ष्मण जी मूर्छित हैं। हनुमान जी सजीवनी लाने गये हैं। विलम्ब देख भगवान अधीर हो शोकाकुल वचन कहते हैं। रामजी ने पिता दशरथ की कौन सी बात नहीं मानने की कही तथा लक्ष्मण कैसे उनके सहोदर भ्राता हुए इस पर रामायणियों के अलग अलग विचार हैं। वशिष्ठ जी भरत जी से कहते हैं “अनुचित उचित विचार तजि जो पालै पितु बैन। अयो 174। “पितहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा। करहु तात पितु वचन प्रमाणा। अयो 173।3।” रामजी भी पिता की आज्ञा से वन गये अब यहाँ लक्ष्मण के लिये पिता की बात नहीं मानने की क्यों कहते हैं। रामजी को लक्ष्मण से अत्यन्त प्रेम था। भाई के वियोग के सामने पिता की आज्ञा की अवहेलना का अपयश सहने को तैयार हैं “बरू अपयश सहतेउ जगमाहीं। लं 60।6।” लग्न जी का रामजी में प्रेम अयोध्या से वनगमन के समय कहा है “सीय कि पिय संग

परिहरहिं लखनजियहिं बिनु राम। अयो 49।” रामजी के वनवास देनों से कुपित लखनलाल ने पिता का बध करने तक कह दिया “अहं हनिष्ये पितरं वृद्धं कामवशं गतम्(पाठान्तर ‘कैकेय्यासक्तमानसम्’)। वा रा अयो 21।19।” भरत जी को भी जब माता गुरु मंत्री राजसम्भालने पर बल देने लगे तब सबों की बात टालते हुए भरत जी ने धर्मयुक्त बात नहीं करने के लिये गुरु वशिष्ठ की निन्दा की “विललाप सभा मध्ये जगहें च पुरोहितम्। वा रा अयो 82।10। राज्यञ्च अहञ्च रामस्य.....वा रा अयो 82।12। मैं और यह राज्य सब रामजी का है।” शंकर जी पार्वती से कह रहे हैं “जिन कृत महामोह मदपाना। तिनके बचन करिये नहीं काना। वा 114।4।” राजा दशरथ कैकेयी के मोह में थे। विवाह के समय कैकेयी के पुत्र को राजा बनाने को कह दिया। जब रामजी युवा हुए तब उनके शील स्वभाव से प्रभावित होकर उनको युवराज बना देना चाहा। पुनः जब कैकेयी के सामने हुए तब पलट गये “प्रिया प्राण सुत सर्वसमोरे। परिजन प्रजा सकल बस तोरे। अयो 25।3। भामिनी रामशपथ सत मोहीं। 25।4। प्राण जाहीं बरु वचन न जाई। 27।2। प्रतिज्ञा भी करते हैं।” कैकेयी पुत्र को राज देना कहकर रामजी को राज देने की तैयारी में झूठे भी बनते हैं। यह सब इसलिये हुआ कि कैकेयी को कापभवन में जाने का सुन राजा घबरा गये। “सुरपति बसहिं बाहु बल ताके। नरपति सकल रहहिं रूख ताके।। सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई। अयो 24।2।”

कुछेक रामायणी कहते हैं 1। रामजी लखनलाल की वन में आने की बात नहीं मानने को कह रहे हैं “...। नाथ दास मैं स्वामी तुम तजहु तो कहाँ बसाय। अयो 71।” 2। सीताजी की बात मान वन में लाने की बात के प्रति रामजी का पश्चाताप बताते हैं। 3। मृगा लाने की सीता जी की बात मान लेने का पश्चाताप करते हैं। 4। एकवार मेघनाद कौआ वन अयोध्या में रामजी की परीक्षा करने आया था। रामजी उसे पकड़ कर बांध दिये थे परन्तु राजा दशरथ के कहने पर छोड़ दिये थे। वही मेघनाद के कारण आज भाई संकट में है। अतः पिता की इस बात का स्मरण कर पश्चाताप करते हैं। 5। इस चौपाई में भाई भाई के प्रेम की बहुलता प्रकट होती है। लक्ष्मण जी को वन चलनेकी आज्ञा की प्रत्याशा में रामजी ने उन्हें देह घर सब से तृण के समान नाता तोड़े हुए देखा था “राम विलोकी बन्धु कर जोड़े। देह गेह सब तृण सम तोड़े। अयो 69।3।” लक्ष्मण जी ने कहा था सोते जागते स्वप्न सब में आपकी सेवा करूँगा “अहं सर्व करिष्यामी जाग्रतः स्वपतश्च ते। वा रा 31।27।” सुमित्रा जी ने भी लक्ष्मण जी को वन जाने की आज्ञा मानने पर कहा था “तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भौंति सनेही। अयो 73।1।” इसी स्नेह के वश में रामजी पिता वचन छोड़ने की बात कहते हैं। भगवान का वचन है “ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्। गी 4।11।”

सहोदर भाई के प्रसंग में रामायणी कहते हैं कि ‘उदर’ शब्द हृदय का उपलक्षक है। लक्ष्मण जी शेष के रूप में सर्वदा भगवान के साथ रहते हैं। अवतार के समय रामजी ने कौशल्या के हृदय को स्वीकारा तथा लक्ष्मण जी ने सुमित्रा के हृदय को। वन जाते समय सुमित्रा जी ने लक्ष्मण को कहा “सृष्टःत्वं वनवासाय रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति। वा रा अयो 40।5। मैंने तुम्हें राम के साथ जंगल जाने के लिये ही जन्म दिया है। राम की सेवा में आलस नहीं करना।” वन में जाने को तैयार लखनलाल को बार बार सुमित्रा उत्साह से कहती है ‘जाओ जाओ पुत्र’ साथ जाओ। “सुमित्रा गच्छ गच्छ इति पुनः पुनः उवाच तम्। वा रा अयो 40।8। साथ में यह भी कहती है “रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकालमजम्। अयोध्यां अटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्। वा रा अयो 40।8। रामजी को पिता मानो जानकी जी को माता तथा

अयोध्या जंगल को ही मानो 'जाओ'।" "तात तुम्हार मातु वैदेही।पिता राम सब भौंति सनेही।मानस अयो 73।1।"सुमित्रा जी श्रीविष्णुपादांकित पवित्र क्षेत्र गया निवासी राजा की पुत्री थीं "मगधस्य नृपस्थाय तनया च शुचिस्मिता।सुमित्रा नाम नाम्ना च द्वितीया तस्य भामिनी।पदमपुराण।" सुमित्रा जी इस तत्व को जानती हैं कि रामजी परम पिता हैं जबकि दशरथ जी तो लौकिक पिता हैं।".....जननि कहत बहुभौंति निहोरे। सिय रघुवर सेवा शुचि ह्वैहों तो जानिहैं सही सुत मोरे।कीजहु यही विचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे। गीतावली अयोध्यकाण्ड 11। लखनलाल से बहुत आशा करके कहती हैं 'यदि तुम राम सीता की सेवा करके पवित्र होगे तब समझूंगी कि तुम मेरे पुत्र हो।सदा यह विचार में रखना कि रामजी के पास रहना कोई कम पुण्य की बात नहीं है।' हनुमान जी को सजीवन बूटी की पहाड़ लेकर जाते समय भरत जी ने भ्रम से कोई राक्षस समझ बाण मार कर उन्हें अयोध्या में गिरा दिया। हनुमान जी ने उन्हें लक्ष्मण की युद्ध क्षेत्र की मूर्छा से जागने की औषधि ले जाने का उद्देश्य जब बताया तब माता सुमित्रा आदि सब इस समाचार को जाने। सुमित्रा जी प्रारम्भ में पुत्र के लिये दुखी भी हुई और प्रसन्न भी कि रामजी के काम मेरा पुत्र आया है। पुत्र के लिये शोक एवं शुभ कार्य में युद्धरत अपने पुत्र की भक्ति के लिये बार बार प्रसन्न भी होती हैं "सुनि रन घायल लखन पड़े हैं। स्वामी काज संग्राम सुभट सो लोहे ललकारी लड़े हैं।। सुत शोक सन्तोष सुमित्रहिं रघुपति भक्ति बरे हैं। छिन छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं। गीतावली लंकाकाण्ड 13।"

जब लक्ष्मण जी की मूर्छा टूटने पर लोगों ने उनसे उनकी स्थिति पूछी तब उन्होंने कहा घाव तो मेरी छाती में है लेकिन उसकी पीड़ा रामजी को हैं। "हृदय घाउ मेरे पीर रघुवीरे। मोहि का बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अर्थ चरचा कीरै।।शोभा सुख क्षति लाहु भूप कहे केवल कान्ति मोल हीरे।।गीतावली लंकाकाण्ड 15। मेरी स्थिति सुग्गे की है जो पाठ रटता है उसका अर्थ पाठ पढ़ाने वाला जानता है। हीरे की शोभा से सुख या हानि राजा को होती है हीरा के लिये तो केवल कान्ति एवं मूल्य ही है।"

"पुत्रवती युवति जग सोई।रघुवर भक्ति जासु सुत होई।मानस अयो 74।1।" राम जी के वन जाने के समाचार सुनकर लखनलाल की स्थिति जल से बाहर निकाली हुई तड़पती मछली जैसी थी कि रामजी साथ लेंगे या छोड़ देंगे "समाचार जब लक्ष्मण पाये।व्याकुल विलखि तुरत उठी धाये।।कंप पुलक तन नयन सनीरा।गहे चरण अति प्रेम अधीरा।। कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े।मीन दीन जनु जल ते काढ़े।अयो 71।1 एवं 2।" इसीलियेलखनलाल जी ने अपने स्वरूपानुरूप सुमित्रा जी के हृदय को अपनाया था। पुत्रेष्टि यज्ञ से प्राप्त खीर का भाग कौशल्या के हाथ से ही सुमित्रा को मिला यानी खीर में रामजी एवं लक्ष्मण जी संयुक्त रूप से विराजमान थे इसलिये सहोदर हुए "बारेहिं ते निज पति हित जानी।लक्ष्मण रामचरण रति मानी।मानस वाल 197।2।वचन से ही लक्ष्मण जी रामजी से अनुरक्त थे।"

8।20 "सुत वित नारी ईषणा तीनी।केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी।मानस उ 70।3।"

संसार के प्रियतम वस्तु का संग्रह दुःख का कारण है और उसका त्याग ही सुख देता है। सामान्यतया धन सबसे प्रिय है परन्तु उसमें पन्द्रह दोष पाये जाते हैं।इसके प्रेम के कारण स्त्री भाई पिता एवं अन्य से वैरी बना देता है।पाण्डव कौरव का युद्ध धन के लिये हुआ।कृपण ने न किसी को दिया न स्वयं खाया ऐसा कष्टपूर्वक संग्रहित धन की वही दशा होती है जो मधु निकाल लेने के बाद मधुमक्खी की होती है "न देयं न उपभोग्यं च लुब्धैः दुःखसंचितम्।भुङ्क्ते च तदपि तत् च अन्यो मधुहा इव अर्थ वित् मधु।। सुखदुःखः उपार्जितैः वित्तैः आशासानां गृह आशीषः।मधुहा इव अग्रतो भुङ्क्ते यतिः वै गृहमेधिनाम्।।भागवत 11।8।15 एवं 16।" इसीलिये भरद्वाज मुनि ने भरत जी से कहा था "तुम कह भरत कलंक यह हम सब कर उपदेश।अयो 208।" यानी जिस राज्य के लिये दशरथ की मृत्यु हुई तथा रामजी का वनवास हुआ भरत ने उसे कलंक की टीका कहा।

परलोकगमन में धन परिवार साथ नहीं जाते किन्तु कर्म साथ साथ जाता है "देहश्चितायां परलोकमार्गे कर्मानुगो गच्छति जी व एकः।"जीवों को कर्मानुफल के कारण संसार में घूमते पचते देख भगवान निर्हेतुक कृपापात्र बनाते तथा

मनुष्य देह देते हैं “कबहुँक करि करुणा नरदेही।देत ईश विनु हेतु सनेही। उ 43।3।” सब कार्य विना फल की कामना के भाव से करने वाला मनुष्य सभी निष्काम रूपी अग्नि में वासनाओं को जलाकर “ज्ञानाग्निदग्धकर्माणां तमाहुः पण्डितं बुधाः।गी 4।19।” निरञ्जन बनता है तथा भगवान को प्राप्त कर लेता है तथा भगवत् सेवा छोड़कर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता “न नाकपृष्ठं न महेन्द्रधिष्णयम् न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।न योगसिद्धिः पुनः अभवं वा मयि अपिर्त आत्म इच्छति मत् विना अन्यत्।।भा 11।14।14। भगवान कृष्ण उद्धवजी को समझाते हैं मुझको समर्पित भक्त इन्द्र का राज्य तथा योगसिद्ध नहीं चाहता।”“मुक्ति निरादरी भक्ति लुभाते।उ 118।4। कागभुसुंडी जी गरुड़ जी को बताते हैं कि भक्ति के आकर्षण में मुक्ति को भी ठुकरा देता है।” “रमाविलास राम अनुरागी।तजहि बमन इव नर बड़ भागी।अयो 323।4। भरत जी की राज से विरक्ति की स्थिति।” जब अकूर जी धृतराष्ट्र को समझाने हस्तिनापुर गये तब राजा ने कहा कि उनका मन पुत्रके मोह से ग्रस्त है एवं आपकी बात आकाश में चमकने वाली विजली की तरह मेरे मन में ठहरती नहीं।

नारी दो तरह की होती हैं : गृहलक्ष्मी की तरह सुमित्रा शैव्या सुनीति विदुरानी मथुरा की यज्ञपत्नियाँ कुन्ती आदि तथा कुलटा रूप में राक्षसकुलविनाशिनी शूर्पनखा पूतना आदि।

8।21।दशरथ जी को मोक्ष नहीं स्वर्ग मिला

स्वायंभुव मनु ने नैमिषारण्य में गौतमी नदी के किनारे द्वादसाक्षर वासदेव मंत्र जपते हुए एक हजार वर्ष तपस्या की। जब भगवान प्रकट हुए तब उन्होंने तीन जन्म में उन्हें अपना पुत्र बनने का वर मांगा “पुत्रत्वं भज देवेश त्रीणि जन्मानि च अच्युत।।” रामजी के वन जाने के बाद राजा दशरथ की मृत्यु हो जाती है। भरत जी को ननिहाल से संस्कारदि के लिये बुलाया जाता है तब भरत जी से कैकेयी कहती हैं “कछुक काज विधि बीचि बिगारेऊ।भूपति सुरपति पुर पगु धारेऊ।अयो 159।1। जीवन सफल जनमफल पाये।अन्त अमरपति सदन सिधाये। अयो 160।2।”भगवान पहले जन्म में रघुकुल में रामजी बनकर आये। राजा दशरथ के दो और जन्म बाकी थे इसलिये मोक्ष न मिलकर स्वर्ग मिला। लंका युद्ध जीतने के बाद युद्धक्षेत्र में स्वर्ग से दशरथ जी भी रामजी की जीत के उपलक्ष में देवताओं द्वारा प्रस्तुत रामजी का अभिनन्दन देखने आये “तेहि अवसर दशरथ तहं आये।तनय विलोकी नयन जल छाये।।ताते उमा मोक्ष नहीं पायो।दशरथ भेद भक्ति मन लायो।लं 111।1 एवं 3।” दशरथ जी ने रामजी को सदा पुत्र की दृष्टि से देखा। मन में पुत्र मोह छाया रहा। कैकेयी से विवाह उसके ही पुत्र को राजा बनाने की शर्त पर किये थे परन्तु पुनः रामजी से मोहित हो युवराज के अभिषेक की तैयारी कर दिये। कैकेयी के सामने हुए तो “प्रिया प्राण सुत सर्व स तोरे...अयो 25।3।दुई के चार मांग किन लेहू। 27।1...।। देखहु काम स्वभाव प्रभाऊ।अयो 24।2। राजा की दुलमुल नीति थी।रामजी में भक्ति के स्थान पर पुत्रमोह बलवान था। रामजी को जंगल भेजने से भी कैकेयी को नहीं रोक सके थे और जंगल में तपस्वी के जीवन में रहने की शर्त लगी थी। यद्यपि भगवान का अवतार पृथ्वी का भार कम करने के लिये ही हुआ था “हरिहौ सकल भूमि गरूआई।बा 186।4।” परन्तु जंगल का जीवन तो कठिन होता है स्वयं रामजी ने सीता जी को समझाया “लागहिं अति पहार के पानी।विपिन विपति नहीं जाई बखानी।अयो 62।1।”जिस रामधाम की प्राप्ति के लिये सभी कर्मधर्म के फल त्यागे जाते हैं किन्तु दशरथ उन सबों को अपनाये रहा।धर्म की प्रत्यक्ष मूर्ति “रामो विग्रहवान धर्मः।बा रा वा। को छोड़कर सामान्य धर्म को अपनाया। भरत जी से

चित्रकूट में स्वयं रामजी ने कहा कि मुझे छोड़कर सामान्य सत्यपालन को राजा दशरथ ने अपनाया “राखा राउ सत्य मोहि त्यागा | अयो 263 | 3 |”

8 | 22 | “औरों एक गुप्त मत सबहिं कहैं कर जोर। शंकर भजन विना नर भक्ति न पावै मोर। उ 45 |” यह प्रसंग रामजी द्वारा अयोध्या में नगरवासियों को वार्तालाप के संदर्भ में उत्तर काण्ड में है। बहुत लोग इससे यह समझ बैठते हैं कि रामजी ने स्वयं कहा है कि मेरी भक्ति शिवजी के भजन से मिलती है यानी रामजी की भक्ति बांटने वाले शिवजी हैं और जीवन भर “वं वं हर हर” करते रह जाते हैं।

वस्तुतः यह कि कृपालु भगवान के करकमलों द्वारा सतत भक्ति का वितरण होता रहता है उसमें कभी भी शिव की अपेक्षा नहीं की जाती है “अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयो सुरधाम | अर 32 |” “सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन्हं कहं राम भक्ति निज देहीं। उ 111 | 3 |” “भक्त शिरोमणि भे प्रह्लादू | बा 25 | 2 |” जब शिवजी का अनन्य भक्त घण्टाकर्ण उनसे मोक्ष मांगा तब उन्होंने उसे भगवान के पास जाने को कहा।

रामजी की भक्ति मिलने के प्रधान स्रोत हैं : 1। सत्संगति 2। संत जन 3। भगवत् नाम। इनमें शिवजी की आवश्यकता नहीं है।

सत्संगति एवं सन्तजन : “भक्ति तात अनुपम सुखमूला। मिले जो सन्त होहिं अनुकूला | अर 15 | 2 | नारद जी से अपना रहने का स्थान जब भक्ति पूछती है तब नारद जी उसे “.....निरन्तर वैष्णवमानसानि” सतत वैष्णवों के मानस में रहने को कहते हैं।” मानस अरण्य काण्डमें लक्ष्मण जी को तत्वज्ञान देते हुए रामजी कहते हैं “प्रथमहिं विप्रचरण अतिप्रीति | अर 15 | 3 |” “तेहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम चरण उपज अनुरागा | अर 15 | 4 |” “भक्ति स्वतंत्र सकल गुणखानी। बिनु सत्संग न पावहीं प्राणी | उ 44 | 3 | स्वयं रामजी ने अयोध्यावासियों को बताया है।”

भगवान कृष्ण उद्धव जी से कहते हैं “मदर्थे धर्मकामार्थान् आचरन् मदपाश्रयः। लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने | भा 11 | 11 | 24 | यानी जिसके सारे कार्य मेरे लिये ही होते हैं वे निश्चल भक्ति पाते हैं।” “इष्टापूर्तेन मामेव यो यजेत समाहितः। लभते मयि सदभक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया | भा 11 | 11 | 47 | इति मां यः स्वधर्मेण भजन् नित्यमनन्यभाक्। सर्वभूतेषु मदभावो मदभक्तिः विन्दते दृढाम् | भा 11 | 18 | 44 | यानी मेरी प्रसन्नता के लिये सावधानी पूर्वक यज्ञादि तथा अपने धर्म अनुसार अनन्य भाव से मुझको भजता है उसे मेरी निश्चल अनन्य भक्ति मिलती है। विचार करने का है कि इन सभी साधनों को शिव जी से कोई सम्बन्ध नहीं है।

हनुमान जी ने भी रामजी से भक्ति का वर मांगा “नाथ भक्ति अति सुखदायिनी। देहु कृपा करि प्रभु अनपायनी | सु 33 | 1 |” और रामजी एवं हनुमान जी के इस संवाद पर मनन करने से रामजी की भक्ति मिलती है “यह संवाद जासु उर आवा। रघुपति चरण भक्ति सोइ पावा | सु 33 | 2 |” भरद्वाज मुनि ने जंगल जाते समय रामजी से ही भक्ति का वर मांगा “अब करि कृपा देहु वर येहु। निजपद सरसिज सहज सनेहू।। सुनि मुनि वचन राम मुसकाने। ... अयो 106 | 4 |” अगस्त्य मुनि ने “अविरल भक्ति विरति सतसंगा। चरण सरोरूह प्रीति प्रसंगा | अर 12 | 6 | भी रामजी से ही भक्ति का वर मांगा।” अत्रि मुनि ने कहा “अब मैं जाना मैं श्री चतुराई। भजिय तुमहिं सब देव विहाई | अर 5 | 4 |” सरभंग मुनि सब पुण्य कृत रामजी को देकर भक्ति ले ली “जोग जज्ञ जप तप मुनि कीन्हा। प्रभु कह देई भक्ति वर लीन्हा | अर 7 | 4 |”

सुतीक्षण मुनि “मन वच कर्म रामपद सेवक। सपनेहु आन भरोस न देवक। अर 9।1।” रामजी ने शबरी से कहा “कह रघुपति सुनु भामिनी बाता। मानौ एक भक्ति कर नाता। अर 34।4।”

“शं कल्याणं करोतीति शंकरः सत्संगः” यानी सत्संग द्वारा ही कल्याण होता है “.....। सत्संगति महिमा नहीं गोई।। वाल्मीकि नारद घटयोनि। निज निज मुखन कही निज होनी। वा 2।1 एवं 2।”

संत एवं सत्संगति की तरह भगवान का नाम कल्याणकर्ता है “राम नाम को कल्पतरू.....। वा 26।” “नामजपत प्रभु किन्ह प्रसादू। भक्तशिरोमणि भे प्रह्लादू। वा 25।2।” भक्ति और रामनाम में कोई भेद नहीं है “वर्षाऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास। रामनाम वर वरणयुग श्रावण भादो मास। वा 19। यानी ‘रा’ एवं ‘म’ ही सावन भादो महीना हैं। इनकी वर्षा से ही भक्ति रूपी कृषि कार्य चलता है।” भगवान स्वयं उदार हैं “ऐसो को उदार जगमाहीं। विनयपत्रिका 162।” “जानत प्रीति रीति रघुराई। विनयपत्रिका 164।”

‘शंकर भजन’ यहाँ मध्यमपद लोपी समास है यानी शंकर के समान भजन। जैसे शंकर दिनरात रामजी को जपते हैं उसी तरह की भक्ति करनी होगी। ‘शंकर भजन’ का अर्थ शिव या शंकर का भजन अर्थ समझना भूल है जैसा कि ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है।

दोहा में ‘गुप्त मत’ का अर्थ है कि लीला अवस्था में रामजी अपना शुद्ध स्वरूप बता रहे हैं जैसा कि शंकर जी एक बार पार्वती के साथ वनभ्रमण में मनही मन सोच रहे हैं “गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु। वा 48।” इसीलिये दोहा में रामजी ने ‘गुप्त मत’ कहा है। गुप्त मत का एक यह भी भाव है कि सन्त या सन्तसंगति विना भगवान की कृपा के नहीं मिलती ‘विनु हरि कृपा मिलहीं नहीं सन्ता। सु 6।2।” उक्त दोहा में शंकर कल्याणवाचक है तथा यह शिव या महादेव का बोध नहीं है। हरिवंश प 3 में कहा है “शंकरोसि सदा देव। ततः शंकरतां गतः।”

8।23। “मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह नीति अनूपा। उ 115।1।” भक्ति निरूपण प्रसंग में कागभुमुंडी जी ने गरूड़ जी से यह सिद्धान्त बताया है। भक्ति सती नारी की तरह है जिसे माया रूपी नारी प्रभावित नहीं कर सकती। जानकी जी के सतीत्व के सामने लंका की दुष्टा राक्षसियाँ कुछ नहीं कर सकीं। नारी को देखकर कुछ नर लुब्ध हो जाते हैं परन्तु एक नारी को देखकर दूसरी नारी नहीं लुब्ध होती। इस प्रसंग में बालकाण्ड की चौपाई से कुछ लोग विरोधाभास बताते हैं “रंगभूमि जब सिय पगुधारी। देखि रूप मोहै नर नारी। वा 247।2।” किसी भी पद का अर्थ देश एवं काल के विचार से किया जाता है यानी संदर्भ पर पहले विचार किया जाता है। दोनो चौपाई दो प्रसंग से हैं अतः दोनों की तुलना भ्रमात्मक है। मोह अनेकार्थक शब्द है। इसका प्रयोग अलग अलग अर्थों में हुआ है। जैसे १। “भये मोहवश सब नरनाहा। वा 247।4।” यहाँ मोह का अर्थ पश्चात्ताप है। 2। गरूड़ जी ने रामजी को नागपाश के प्रकरण के बारे में कहा “मोहि भयउ अति मोह प्रभुबन्धन रण महँ निरखि। उ 68 जो भ्रम या संशय या अज्ञानता का बोधक है कि रामजी भगवान हैं या कोई साधारण मनुष्य।” इसतरह से पुस्तक में ‘मोह’ के 74 उदाहरण मानस से दिये गये हैं जहाँ भिन्न भिन्न अर्थ के लिये मोह शब्द का प्रयोग हुआ है परन्तु यहाँ कुछेक ही दिये जा रहे हैं।

क। अज्ञान वाचक मोह के दृष्टान्तः ‘जो नहीं होत मोह अति मोही। उ 68।2 गरूड़ जी ने कागभुमुंडीसे कहा। “तुमही न संशय मोह न माया। उ 69।2।’ ‘मोह न अन्ध कीन्ह केहि केहि। उ 69।3। ‘नृप अभिमान मोह वश किंबा। हरि आनेसि सीता जगदम्बा। सु 19।3। हनुमान जी रावण को कहते हैं।’ ।

ख। सांसारिकवस्तु से प्रेम वाचक मोह के दृष्टान्त : 'करहिं मोहवश नर अघ नाना। उ 40।2। रामजी ने भाईयों से कहा। "परिहरि मान मोह मद भजहु कोशलाधीश। सु 39। विभीषण जी रावण को कहते हैं।' 'मोह सकल व्याधिन कर मूला। उ 120।15।'

ग। स्त्री में काम या वासना वाचक मोह के दृष्टान्त : 'मोह विपिन कह नारी बसन्ता। अर 43।1। नारद एवं रामजी संवाद। "..... मुनि मोह सो अचरज भारी। बा 123।4।' 'मुनि अति विकल मोह अति नाठी। बा 134।3।' नारद जी का विवाह के लिये आतुर होना।

घ। भगवान में अतिशय प्रेम वाचक मोह के दृष्टान्त : 'मोह मगन नहीं मति विदेह की। महिमा सिय रघुवीर सनेह की। अयो 285।4। चित्रकूट में जनक जी की स्थिति।

च। भगवान में अविश्वास वाचक मोह के दृष्टान्त : 'यहाँ मोह कर कारण नाहीं। उ 71।4। कागभुसुन्डी जी ने गरुड़ जी को आश्वस्त किया कि आप को भगवान में अविश्वास होने का प्रश्न ही नहीं उठता। "जब कछु काल करिये सतसंगा। उ 60।2। शिव जी ने गरुड़ जी को समझाया। "खेद खिन मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोह वश तम्हरे नाई। उ 58।1। शिव जी उमा को रामजी में अविश्वास का स्मरण करा रहे हैं।

छ। दैवी ईश्वरीय माया वाचक मोह के दृष्टान्त : 'शिव विरञ्चि कह मोहै को है वपुरा आन। उ 62। शिव भवानी संवाद।'

ज। लोभ वाचक मोह के दृष्टान्त : 'कौड़ी कारण मोहवश करहिं विप्र गुरु घात। उ 99।'

झ। दोष वाचक मोह के दृष्टान्त : 'जो मतिमन्द विषयवश कामी। प्रभु पर मोह धरहि इमि स्वामी।। नौकारूढ़ चलत जग देखा। प्रबल मोहवश आपुन लेखा। उ 72।1 एवं 3।'

ट। मूर्छा वाचक मोह के दृष्टान्त : 'मोह मोहे सकल मंत्रण ते मुख मूँदि। । अहिरावण बन्दरों को मूर्छित कर रामजी एवं लक्ष्मणजी को ले गया।

ठ। मायाकार्य के कारण मोह का दृष्टान्त : 'मायाकृत गुण दोष अनेका। मोह मनोज आदि अविवेका। उ 56।1। कागभुसुन्डी के निवास पर्वत के बारे में शिवजी उमा को बता रहे हैं।' 'सुख सन्दोह मोह पर माया गुण गोतीत। बा 199 दशरथ एवं कौशल्या की स्थिति।'

ड। विफलता वाचक मोह का प्रयोग : 'प्रभु पर मोह धरहि जड़ प्राणी। बा 116।1। शिवजी उमा को बता रहे हैं।'

ढ। आनन्द बोधक मोह का प्रयोग : 'रमा समेत रमापति मोहे। बा 316।2। रामजी की वाराती देखकर लक्ष्मी नारायण आनन्दित हो गये।'

त। अन्धकार वाचक मोह का प्रयोग : 'राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहीं तँह मोह निशा लवलेशा। बा 115।3। शिवजी उमा से कहते हैं।

द। आश्चर्य वाचक मोह का प्रयोग : संदर्भित चौपाई में 'देखी रूप मोहे नर नारी' में मोह आश्चर्य का बोध कराता है।

स्त्री पुरुष सब लोग सीताजी के सौंदर्य 'जगत जननी अतुलित छबि भारी। बा 247।1।' से आश्चर्य चकित हो गये।

8।24। "रघुवंशभूषण चरित जे नर कहहिं सुनिहि जे गावहीं। कलिमल मनोमल धोइ विनु श्रम रामधाम सिधावहीं।।

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरे। दारुण अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुपति हरे।। उ 129। छंद 2।"

'रघुवंशभूषण' यहाँ विशेष्य है तथा 'सतपंच चौपाई' उसका विशेषण है। सतपंच के कई अर्थ किये जाते हैं। सबका भाव एक ही है कि रामजी की लीला के अनेकों प्रसंगों में से कुछेक के भी सतत गान एवं श्रवण तथा मनन अंतःकरण को शुद्ध करता है तथा रामधाम का अधिकारी बनाता है। सतपंच के कुछेक अर्थ नीचे संग्रहित हैं।

क। सतपंच का एक विचार 'अंकानाम वामतो गतिः' से 'सतपंच' की मात्रा हुई 5100 यानी रामायण के 5100 चौपाई वाले रामजी के लीलाचरित को लय सुर ताल में गान करने या श्रवण करने से रामजी काम क्रोध लोभ मोह तथा अभिमान को दूर कर अपने धाम के अधिकारी बना देते हैं। 'रघुपति चरित समास बखाना। लं 59।1। संजीवनी पर्वत ले जाते समय अयोध्या में भरतजी को हनुमान जी ने संक्षेप में रामचरित सुनाया।' 'यह सब गुप्त चरित मैं गावा। उ 88।2। कागभुसुंडी जी ने रामजी की गुप्त माया के बारे में गरुड़ जी से सुनाया।' 'व्यास समास स्वमति अनुसारी। उ 122।1। कहीं संक्षेप तथा कहीं विस्तार से कागभुसुंडी जी ने रामचरित गरुड़ जी को सुनाया।

ख। 'सतपंच' का एक अर्थ यह है कि रामजी के चरित्र रूपी सत्य को पाँच प्रकारसे प्रतिपादित किया गया है 'व्यास समास स्वमति अनुरूप।' 'सूझहि रामचरित मणिमानिक। गुप्त प्रकट जहं जो जेहि खानिक। बाल कांड वंदना चौ 4।' यानी रामकथा 'विस्तृत' 'संक्षिप्त' 'यथार्थ भाव से' 'प्रकट' तथा 'गुप्त' वर्णित है। चौपाई कहने से चौपाई के साथ छंद सोरठा दोहा आदि मानस के सब तरह के पदों का एकीकृत बोध होता है क्योंकि सब में चार चरण हैं। मनोहर शब्द का भाव है 'यह मैं रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा। वा 9।1।'।

ग। 'सतपंच' का एक अन्य अर्थ है कि रामजी के स्वरूप वाले पांच सात चौपाई को भी हृदयंगम करने से अविद्या माया का नास होता है। रामजी के बाल स्वरूप का कागभुसुंडी जी ने चौपाई तथा दोहा के साथ सात पदों में वर्णन किया है जो उत्तर काण्ड दोहा 75 के "मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा।" से लेकर दोहा 76 के "रूप राशि नृप अजिर बिहारी। नाचही निज प्रतिबिंब निहारी" तक है। इसे हृदयंगम करने को कहा है।

पांच सात चौपाई से अरण्य काण्ड के संत लक्षण वाले भाग दोहा 44 के "षट विकार जित अनघ अकामा.....।" से लेकर दोहा 45 के "गावहिं सुनिहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला" तक हृदयस्थ करने को कहा है।

घ। 'सतपंच' से एक अन्य अर्थ में सात तथा पांच का योग बारह माना जाता है। यह रामजी द्वारा अयोध्यावासियों को सम्बोधित किये जाने वाले भाग उत्तर काण्ड दोहा 42 के "बड़े भाग मानुष तन पावा.....।" से लेकर दोहा 46 तक "ताकर सुख सो जानइ परानंद संदोह।" तक के मनन से अंतःकरण शुद्ध होता है तथा रामधाम मिलता है।

च। एक अन्य अर्थ में "मधुकर सरिस सन्त गुण ग्राही। वा 9।3।" वाले भाव से समन्वित होने को बताया गया है। इसके अनुसार "सकल शौच करि जाई नहाये। वा 226।1।" जनकपुर में रामजी एवं लक्ष्मण जी की उपस्थिति से लेकर अयोध्या काण्ड के भरत प्रेम तक के पाँच सौ चौपाइयों को मनन करने को कहा गया है।

छ। एक अन्य भाव में निम्नांकित चौपदियों को सतत मनन योग्य बताया है।

नील सरोरूह नील मणि नील नीर धर श्याम। अंग अंग पर बारिये कोटि कोटि सतकाम। वा 146।

नील जलज तनु श्याम काम कोटि शोभा अधिक। सुनिये तासु गुण ग्राम जासु नाम अघ खग वधिक। कि 30।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मल्ले वनवास दुःखितः। मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य में सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा। अयो 2। नीलाम्बुज श्यामलकोमलांग सीतासमारोपित वामभागम्। पाणौ महासायक चारूचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्। अयो 3। सन्दानन्द पयोद सौभग तनुं पीताम्बरं सुन्दरम्। पाणौ वाण सरासनं कटिलसत्तूनीरभारं वहम्।। सीतालक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे। अर 2। केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम्। शोभादयं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।। पाणौ नाराच चापं कपि निकर युतं बन्धुना सेव्यमानम्। नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्। उत्तर 1। कोशलेश पदकंज मंजुलौ कोमलाज महेशवन्दितौ। जानकी करसरोज ललितौ चिन्तकस्यमनभृंगसंज्ञितौ। उत्तर 2।

ज। एक अन्य अर्थ में पांचसात से पैंतीस समझकर उत्तरकाण्ड के दोहा 63 से दोहा 69 तक के संक्षिप्त रामायण की चौपाइयों का मनन कल्याणप्रद बताया है। सुन्दरकाण्ड में दोहा 41 से 48 तक विभीषण जी की शरणागति के प्रसंग के पैंतीस चौपाई भी सतपंच समझे जाते हैं।

झ। एक अन्य विचार से रामजी के अवतारकाल से नारदजीकी स्तुति पर्यन्त षड्मुखी वार्ता छोड़कर सतपंच यानी पांच सौ चौपाइयों का मनन करना बताया है।

ट। कागभुसुंडी जी ने रामजी का बालरूप देखा था तथा कौशल्याजी को विश्वरूप का दर्शन रामजी ने दिया था। ये प्रसंग भी सात सात चौपदियों में वर्णित है। इसे भी 'सत' शब्द द्वारा समझना चाहिये।

ठ। एक विचार से सतपंच से सात एवं पांच दो अंको की तरह यानी राम एवं सीता दोनों तत्व के भजन से समझना चाहिये। केवल सीता में प्रेम के कारण रावण मारा गया तथा केवल राम में प्रेमवाली शूर्पनखा अपमानित हुई परन्तु दोनों को भजने वाले विभीषण राज्याधिकार से सम्मानित हुए।

ड। उपर्युक्त विचारों से यह सिद्ध होता है कि मनोहर चौपाइयों का तात्पर्य मात्र चौपाई ही नहीं छन्द सोरठा दोहा श्लोक सब संयुक्त हैं। मानसकार ने कहा है “पुरइन संघ न चारू चौपाई। वा 36।2।” यानी रामायण की चौपाइयों सघन पुरइन पत्र हैं तथा छंद दोहा सोरठा इत्यादि इसके कमल के फूल हैं। कमलयुक्त ही पुरइन सुशोभित होता है न कि कमल छोड़कर। अतः सतपंच चौपाई शब्द से दोहा सोरठा छन्द सब को समझना चाहिये न कि केवल चौपाई को। रामजी के यहाँ जाति योनि आदि का भेदभाव नहीं है। निषाद शवरी जटायु सुग्रीव विभीषण सब उनके प्रेमभाजन हुए हैं “रामहि केवल प्रेम पियारा। जान लेउ जो जाननिहारा। अयो 136।1।”

8। एक नारायण ही उपास्य क्यों ?

इस पुस्तक के प्रणयन का वर्ष पुस्तक के अंत में दिये गये एक श्लोक के अनुसार ई सन् 1954 आकलित किया जा सकता है। प्रस्तुत सार संक्षेप ई सन् 1987 में श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद हुलासगंज से प्रकाशित द्वितीय संस्करण पर आधारित है। मूल विषय को आलोकित करते हुए पुस्तक के प्रारम्भिक बारह पृष्ठों में वर्तमान स्वामीजी श्रीरंगरामानुजाचार्य जी के प्रकाशकीय एवं प्राक्कथन दिये गये हैं। बाद के 27 पृष्ठों में मूल विषयवस्तु के एकमात्र प्रश्न “एक नारायण ही उपास्य क्यों ?” के समाधान में जपमाला के 108 दाने के समान ‘108 समाधान-सुमन’की उत्कृष्ट प्रस्तुति है। इस प्रस्तुति को ‘पराङ्कुश-स्मृति’ कही जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्रीस्वामी जी महाराज की एक अन्य पुस्तक “देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं?” इस पुस्तक का पूरक है या यों कहें कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और उसका भी सार संक्षेप सभी पुस्तकों के बाद श्रीस्वामी जी महाराज की 16वीं पुस्तक के रूप में देखा जा सकता है।

समाधान-सुमन 1। शास्त्र के वचन भगवान की आज्ञा हैं एवं जो शास्त्रों का उल्लंघन करते हैं वे भगवद् भक्त तथा वैष्णव कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। मानव कल्याण के लिये भगवान की आज्ञा है “मन्मनाभव मदभक्तो मद्याजी माम् नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमालानं मत्परायणः। गी 9।34। मुझमें मन लगाकर मेरी पूजा तथा नमस्कार करके मुझे प्राप्त करता है।”

“अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। गी 9।22। मुझमें अनन्यभाव यानी अन्य देवताओं को त्यागकर लगे रहने वाले सब आवश्यक पदार्थ प्राप्त करते हैं और उनकी रक्षा करता हूँ” “अनन्येनैवयोगेन मां ध्यायन्त उपासते। तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। गी 12।6 एवं 7। अनन्यभाव से मेरी उपासना करने वाले जन्म मृत्यु के सागर को पार कर जाते

हैं।” सांसारिक बंधन रूपी कामनाओं की पूर्ति वाले देवताओं से उदासीन रहते हुए भगवान में ही मनोयोग से लगा रहना शास्त्र की आज्ञा है।

समाधान-सुमन 2। “दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।गी 7।14। भगवान कहते हैं भरीशरणागति मात्र से ही संसार की कठिन माया को पार करोगे।ऐसे भक्त का कभी विनाश नहीं होता“न मे भक्तः प्रणश्यति।गी 9।31।”एक नारायण की उपासना से ही माया बन्धन से छूट सकते हैं।

समाधान-सुमन 3। मानव योनि छोड़कर अन्य योनियाँ कर्मों के भोग के लिये मिलता है।मानव शरीर भगवान की निर्हेतुकी कृपा से मिलता है जिसका एकमात्र उद्देश्य इस शरीर को मन एवं इन्द्रियों के साथ भगवान की प्राप्ति में लगा देने का है “विचित्रा देह सम्पत्तिरीश्वराय निवेदितुम्।पूर्वमेव कृता ब्रह्मन् हस्तपादादि संयुतम्।।”

समाधान-सुमन 4। जड़ चेतन रूपी समस्त जगत नारायण का शरीर है तथा नारायण शरीरी यानी आत्मा हैं। अतः यह मानव शरीर उन्हीं का होने के कारण उन्हीं के लिये है “तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम्।”

समाधान-सुमन 5। शरणागत की रक्षा करना तथा सब दोष भूलकर दया करना नारायण के स्वाभाविक गुण हैं जिसे शरण्य एवं वात्सल्य गुण कहते हैं “व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्।”

समाधान-सुमन 6। देह इन्द्रिय मन प्राण एवं बुद्धि से आत्मा पृथक् एवं विलक्षण है।यह परमात्मा का शेष एवं भोग्य वस्तु है।शरीर में आत्मबुद्धि रखते हुए नारायण के अतिरिक्त अन्य देवता की उपासना में लगने वाले को चोर एवं आत्मापहारी कहा है। प्रसिद्ध वैष्णव संत श्रीलोकाचारी स्वामी ने लिखा है कि अन्यदेवों को भगवान के समान मानना तथा रामजी भगवान कृष्ण में मानव भाव रखना एवं अर्चामूर्ति में काठ पत्थर या धातु आदि का भाव रखना भगवतापचार है जो आत्मापहार के समतुल्य है।

समाधान-सुमन 7। समस्त सृष्टि का सृजन पालन एवं संहार के मूल कारण नारायण ही है। इसी कारण से शास्त्रों ने नारायण का ही पूजन ध्यानादि करने की आज्ञा दी है“कारणन्तु ध्येयम्। ब्र सू 1।4।14।”“तज्जलानीति शान्त उपासीत।।”

समाधान-सुमन 8। वेद में नारायण को ही परतत्त्व कहा है। प्रलयकाल में नारायण ही शेष रहते हैं। जगत में सर्वा न्तर्यामी एवं सर्वव्यापक नारायण ही हैं“नारायणः परब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः।नारायणः परोज्यातिरात्मा नारायणः परः।” प्रलयकाल में नाम रूप से रहित होकर समस्त सृष्टि नारायण के पेट में रहती है “अत्ताचराचर ग्रहणात्।ब्र सू 1।2।9।”

समाधान-सुमन 9। नारायण की उपासना अति सुलभ है।स्मरण मात्र से ही ये जीव का कल्याण करते हैं “स्मरतः पादकमलमात्मानपि यच्छति।” एक दल तुलसी ही इनकी सेवा है“जानत सुदामा भाई हमरो सुभाउ तुम एक दल तुलसी में जाऊँ मैं बिकाउ हो।भगवद पराङ्कुशाचार्य विरचितमित्र सुदामा कृष्ण।” श्रीयामुनाचार्य ने कहा है कि भगवान के चरणों में एकबार कुछभी अर्पित कर देने पर सकल अमंगल का नाश हो जाता है“त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचित् यथा तथावाऽपि सकृत् कृतोज्जलिः।तदेव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते।आलवन्दार स्तोत्र रत्न 28।”प्रह्लाद जी ने साथियों को बताया कि नारायण की उपासना में कोई परिश्रम नहीं है “न हि अच्युतं प्रीणयतो बहु आयासः...।भा 7।6।19।”

समाधान-सुमन 10। एकबार देवताओं ने विष्णु भगवान एवं शंकरजी में कौन बलवान है ऐसा जानने के लिये दोनों को लड़ा दिया। लड़ाई में भगवान विष्णु ने शिव जी के धनुष को शिथिल कर दिया। देवताओं एवं ऋषियों ने विष्णुभगवान को शंकर जी से श्रेष्ठ माना “अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तदा। वा रा बाल 75।20।”

समाधान-सुमन11। “वेदे रामायणे चैव भारते भरतर्षभ। आदौ मध्ये तथा चान्ते सर्वत्र हरिः गीयते।” समस्त धर्मशास्त्रों में सर्वत्र भगवान का ही गुणगान है तथा अन्यदेवों की चर्चा गौणरूप से की गयी है। अगर अन्यदेव उपास्य होते तब उनका प्रधान रूप से उल्लेख होता।

समाधान-सुमन12। “देवदेवो हरिः पिता।” “..... देवदेवो जनार्दनः। भा 3।7।20।” “तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां च परमं च दैवतम्।” नारायण सभी देवों के देव हैं तथा ईश्वरों के ईश्वर हैं।

समाधान-सुमन13। एक नारायण ही हैं जिनके चरणकमल से गंगा निकलकर जगत का कल्याण कर रही है “यत् शौच निःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्धन्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्। भा 3।28।22। भगवान के चरणोदक गंगा को धारण करने के ही कारण शिव पवित्र हुए।” किसी अन्य देवता के चरण से कोई भी कल्याणकारी नदी नहीं निकली है।

समाधान-सुमन14। बाणशय्या पर पड़े भीष्मपितामह ने कहा कि नारायण पवित्रों में अति पवित्र एवं सर्वमंगलों के मंगल हैं “पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानाञ्च मंगलम्। श्रीविष्णुसहस्रनाम।”

समाधान-सुमन15। भगवान का नाम स्मरण मंत्र की त्रुटि तथा देश काल की न्यूनता का पूरक है “मंत्रतः तंत्रतच्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः। सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्तनं तव।। एकबार नारायण नाम लेकर अजामिल सब पापों से मुक्त हो गया।

समाधान-सुमन16। भगवान के आयुधों के संयोग से कल्याण होता है जो किसी अन्य देवों के साथ नहीं होता। उनके आयुध को प्रेम से धारण करे या कोपभाजन हो सर्वदा कल्याणप्रद होता है। चकांकित वैष्णव कल्याणभाजन होते हैं। भगवान के चक्र से कोपभाजन होकर शिशुपाल मुक्त हो गया।

समाधान-सुमन17। सभी धर्मावलम्बी मृतक के कल्याण हेतु श्राद्धादि पिण्डदान करते हैं। किसी भी देव का उपासक हो पिण्ड के पश्चात् “अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः। अक्षय्य पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदोभव।” इसीतरह “अन्नहीनं क्रियाहीनं वस्तुहीनं च यदभवेत्। तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु हरेर्नामानुवर्तनात्।” इससे यह सिद्ध होता है कि तर्पण प्रार्थना नारायण नाम से करने पर ही प्रेतात्मा का कल्याण संभव है।

समाधान-सुमन18। भगवान का एक नाम ‘अविज्ञाता’ है यानी जो शरणार्थी के अपराध को भूल जाता है। किसी अन्यदेवता के साथ ऐसी स्थिति नहीं है।

समाधान-सुमन19। धर्म अर्थ काम मोक्ष सब के फल देने वाले एक मात्र भगवान नारायण ही हैं। चारों को अलग अलग सकाम या निष्काम भाव से जो भी चाह रहती है सबकी पूर्ति नारायण के अतिरिक्त अन्य कोई करने वाले नहीं हैं “अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्। भा 2।3।10।

समाधान-सुमन20। कार्यसिद्धि हेतु सभी धार्मिक कृत्यों का शुभारम्भ “ॐ विष्णुः विष्णुः नमः परमात्मने” के संकल्प से होता है। इसके बिना संकल्प अधूरा रहता है।

समाधान-सुमन21। भगवत् प्राप्ति के लिये उनकी शरणागति ही उपाय मात्र है “तमेव विदित्वा तिमृत्युमेति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।” भगवान् कृष्ण ने भी संसारसागर से उद्धार हेतु अपनी शरणागति ही बतायी है “भामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। गी 7।14।”

समाधान-सुमन22। श्रीमद्भागवत स्कन्ध 6 में अजामिल की कथा है। यमदूतों ने यमराज से पापियों का लक्षण पूछा जिन्हें उनकी मृत्यु के बाद धरती से यमलोक में लाना था। श्रीविष्णुपुराण की ‘यमगीता’ की कथा के अनुसार यमराज ने अपने दूतों के कान में धीरे से कहा वैष्णवों को मत छूना और बताया कि मैं केवल अवैष्णवों के लिये ही अधिकृत हूँ “स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदतियमः किल तस्य कर्णमूले। परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम्। विष्णुपुराण 3।7।14।”

समाधान-सुमन23। भगवान् में दृढ़ विश्वास होने के कारण भगवान् के भक्त को किसी अन्य से कोई भय नहीं होता। राजा रहूगण ने जड़भरत जी कहा “नाहं विशंके सुरराजवज्रान् न त्रयक्षशूलान् न यमस्य दण्डात्। न अग्नि अर्क सोम अनिल वित्तप अस्त्रात् शंके भृशं ब्रह्मविदोऽवमानात्। भा 5।10।17। इन्द्र के वज्र शंकर के त्रिशूल आग सूर्य वायु धनवान् एवं अस्त्र मुझे भयभीत नहीं करते परन्तु भगवान् के भक्त के अपमान से मैं भयभीत रहता हूँ। भगवान् की उपासना की इतनी महिमा है।

समाधान-सुमन24। संकल्प मंत्र “ॐ विष्णुः विष्णुः नमः परमात्मने” में भगवान् के नाम का ही महात्म्य है।

समाधान-सुमन25। “नान्यः पन्था अयनाय विद्यते। पु सू।” मोक्ष यानी भगवत्प्राप्ति के लिये भगवान् को छोड़कर कोई अन्य उपाय नहीं है।

समाधान-सुमन26। “प्रभुरहमन्यनराणां न वैष्णवानाम्। वि पु 3।7।14।” वैष्णवों का मैं नियन्ता नहीं हूँ ऐसा यमराज ने अपने दूतों को कहा। नारायण उपासक को यम का भय नहीं है।

समाधान-सुमन27। “आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन।” भगवद्भक्त किसी से नहीं डरते।

समाधान-सुमन28। राजा खट्वांग ने भगवान् में मन लगाकर दो घड़ी में ही मोक्ष पा लिया था। ज्ञानी लोग सबकुछ भगवान् को अर्पित कर उन्हें शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं “क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः। सन्यस्य संयात्यभयं हरेः पदम्। भा 5।19।23।”

समाधान-सुमन29। गर्भ में एकमात्र भगवान् ही रक्षा करते हैं “स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे। भा 7।2।38।” विचार करें कि ऐसा उपास्य और कौन हो सकता है।

समाधान-सुमन30। भगवान् कर्ता कर्मादि के धारक हैं “अखिलकारक शक्तिधरः”

समाधान-सुमन31। नारायण ही वाच्य तथा वाचक हैं “सर्ववाच्यवाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक्।”

समाधान-सुमन32। केवल नारायण का ज्ञान होने से समस्तवस्तु का ज्ञान हो जाता है “एकेन विज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति।”

समाधान-सुमन33। “यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैः भैत्र्यादिभिः हरिः। तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नम् आपः इव स्वयम्। भागवत 4।9।47।” भगवान् के प्रसन्न होने से समस्त देवगण नतमस्तक होते हैं।

समाधान-सुमन34। जैसे भुने हुए या उबाले हुए धान से अंकुर नहीं निकलते उसी तरह भगवान् को भजने वाले पुनः जन्म नहीं लेते।

समाधान-सुमन35 | ब्रह्मणों के तथा देवताओं के देव एवं आत्मा नारायण ही हैं। “विप्राणां देवदेवानाम् भगवानात्मदैवतम्।”

समाधान-सुमन36 | ब्रह्मा ने कहा है कि मेरे तथा सकल लोकों के गुरु नारायण ही हैं “ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो गुरु।”

समाधान-सुमन37 | सबों के भीतर तथा बाहर नारायण ही व्याप्त हैं “अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।”

समाधान-सुमन38 | भगवत् शब्द वाच्य नारायण ही है तथा यह प्राकृत गुणों से मुक्त है “भगवत् शब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः।” “भैत्रेये भगवत् शब्दः वासुदेवे न अन्यगः।”

समाधान-सुमन39 | भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये भगवान् आतुर रहते हैं “शतं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रह कातरम्। भा 3 | 28 | 17।”

समाधान-सुमन40 | ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादि लक्ष्मी जी की कटाक्ष से ऐश्वर्यवान् होते हैं और वही लक्ष्मी जी भगवान् के समीप रहने से ‘श्री’ कहलाती हैं। ऐसे भगवान् को छोड़कर और कौन उपास्य हो सकता है।

समाधान-सुमन41 | अपने आश्रितों के दोष के लिये भगवान् ही प्रायश्चित्त करते हैं। जैसे विभीषण द्वारा की गयी ब्रह्महत्या तथा अम्बरीष के कारण दस अवतार।

समाधान-सुमन42 | जब सभी देवों को अर्पित नमस्कार भगवान् केशव को जाता है तब केशव की ही उपासना श्रेष्ठतम है “सर्वं देवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति।” जैसे सभी जल की गति समुद्र है और उसके बाहर का जल व्यर्थ ही सूख जाता है क्योंकि जो समुद्र में पहुँचता है वह समुद्र ही हो जाता है।

समाधान-सुमन43 | समस्त जीव के पालन हेतु ही विष्णु भगवान् का अवतार होता है। मानव पालन की अपेक्षा करता है अतः विष्णु की उपासना श्रेष्ठ है।

समाधान-सुमन44 | स्नान के समय भगवान् नारायण ही स्मरणीय हैं।

समाधान-सुमन45 | वस्त्र धारण करने के समय नारायण ही स्मरणीय हैं।

समाधान-सुमन46 | पवित्र होने के लिये नारायण ही स्मरणीय हैं “अपवित्रो पवित्रः वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः। पद्म पु पाताल 80 | 11।”

समाधान-सुमन47 | सूर्य को अर्घ्य देने में भी नारायण का ही ध्यान करने को बताया है “ध्यात्वा नारायणं देवं रविमण्डलमध्यगम्।”

समाधान-सुमन48 | सभी शब्दों का मूलकारण ॐ नारायण का ही नाम है “ओंकारात् प्रभवा वेदा ...।”

समाधान-सुमन49 | देव असुर मानव शूद्र नारी आदि सब योनियों को सुलभ होने से नारायण ही सबके उद्धारक हैं।

समाधान-सुमन50 | सबों को निवृत्ति प्रदान करते हैं “यद्गत्वा न निवर्तन्ते...। गी 15 | 6।”

समाधान-सुमन51 | नारायण नाम के उच्चारण से सब पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है।

समाधान-सुमन52 | सभी जीवों के परम स्वार्थ नारायण ही हैं “पुंसः स्वार्थपरः स्मृतः।” “स्वारथ सर्व जीव कर येहा। मन कम वचन राम पद नेहा। मानस उ 95 | 1।”

समाधान-सुमन53 | गोविन्द की एकान्तिक भक्ति का ही उपदेश है “एकान्त भक्ति गोविन्दे सर्वत्र तदीक्षणम्।”

समाधान-सुमन54 | भक्तों की चाह वाली वस्तु देने वाले कल्पवृक्ष नारायण ही हैं “प्रपन्न पारिजाताय...।” “देव देवतरु सरिस सुभाउ। मानस अयो 266 | 4।”

समाधान-सुमन55। नारायण रस स्वरूप हैं “अतो रसो वै सः”। जीव भगवान को प्राप्त कर ब्रह्मानन्द के रस में डूब जाता है “अतः आनन्दमयो अभ्यासात्। ब्र सू 1।1।12।

समाधान-सुमन56। किसी भी भाव से नारायण की ही उपासना श्रेष्ठ है “अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्। भा 2।3।10।

समाधान-सुमन57। “महात्मनः तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः। भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्। गी 9।13।” दैवी प्रकृति वाले ही मेरे अनन्य भक्त होते हैं तथा वे महात्मा कहे जाते हैं। नारायण के उपासक दैवी प्रकृति के होते हैं।

समाधान-सुमन58। “गोविन्देति यदा कन्दत् कृष्णा मां दूरवासिनम्। ऋणं प्रवृद्धमिव मे हृदयन्नापि सर्पति।। द्रौपदी ने जब गोविन्द नाम लिया तब भगवान ने उनका कल्याण किया परन्तु भगवान संकोच में रहते थे कि दुःशासन का गला या हाथ क्यों नहीं काट लिया था। नाम लेने के कारण भगवान भक्त के ऋणी हो जाते हैं।

समाधान-सुमन59। भगवान देवों के प्राण होने से एक मात्र उपास्य हैं “विष्णुः प्राणाः दिवौकसाम्।।”

समाधान-सुमन60। भगवान कृष्ण के दिव्यरूप में अर्जुन ने ब्रह्मा रूद्रादि देवों ऋषिगण एवं समस्त सृष्टि का दर्शन किया था “पश्यामि देवान् तब देह देहे...। ऋषीश्च सर्वान् ...। गी 11।15।” भगवान सब के मूल हैं।

समाधान-सुमन61। “रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेः...।” शत्रु को भगवान पुत्रवत् स्नेह देते हैं।

समाधान-सुमन62। दण्ड हेतु यमलोक भेजकर भगवान पाप से शुद्ध करते हैं।

समाधान-सुमन63। पेड़ के जड़ में दिया जल सम्पूर्ण वृक्ष को पुष्ट करता है। मुख में दिये गये भोजन से समस्त देह संतुष्ट होता है उसीतरह भगवान को अर्पित वस्तु सबको प्राप्त होता है। सुदामाजी का चूड़ा खाते समय भगवान ने कहा “तर्पयन्ति अंगं मां विश्वम् एते पृथक्कतण्डुलाः। भा 10।81।9।” मेरे अंगों में स्थित समस्त ब्रह्माण्ड को यह तृप्त कर रहा है क्योंकि भगवान के उदर में समस्त जीव अपने संस्कार के साथ पृथक् पृथक् रहते हैं “यस्यकुक्षाविदं सर्वा ल भ्राति यथा तथा।।” भगवान के बाहर भीतर समस्त ब्रह्माण्ड व्याप्त है “ब्रह्माण्ड निकाया निर्मितमाया रोम रोम प्रतिवेद कहै। मानस वा 191।छं 3।” दुर्योधन के बहकावे में दुर्वासा पाण्डवों को जॉचने पहुँचे तथा भोजन की चाह करते हुए स्नान को चले गये। द्रौपदी के यहाँ पाण्डव भोजन कर चुके थे तथा वर्तन भी साफ कर रख दिया गया था। दुर्वासा के साथ ऋषि समूह के स्वागत में कमी देख द्रौपदी घबरायी। स्मरण करते ही भगवान पहुँच गये तथा भूखे होने के कारण कुछ खाने को मांगा। द्रौपदी और लज्जित हो गयी तथा उन्हें बताया कि अब वर्तन तो खाली है। भगवान ने खाली वर्तन का निरीक्षण किया तथा उसमें सटी हुई साग की एक पत्ती निकाल कर खा लिया और तृप्त हो गये। स्नान करते हुए समस्त ऋषिगण के साथ दुर्वासा भी तृप्त हो गये तथा भीम के डर से भाग निकले “शाकान्निशिष्टमुपभुज्य यतः त्रिलोकान्। तृप्तिममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः।।

पद्मपुराण उत्तर खंड के अंतिम अध्याय की कथा है “त्रिषु देवेषु को महान्” यानी ब्रह्मा शंकर तथा विष्णु में कौन श्रेष्ठ है इस उद्देश्य से भृगु ऋषि पहले शंकर जी के पास गये। द्वारपाल ने शंकर जी को पार्वती देवी के साथ निजीकक्ष में रहने के कारण उन्हें भीतर जाने से मना किया “देव्या क्रीडति शंकरः। प पु उत्तर 282।30।’। वे माने नहीं। निजी सहवास में व्यवधान देख शंकर जी स्वयं त्रिशूल लेकर भृगु जी को मारने दौड़े। भृगु जी ने उन्हें शाप

देते हुए कहा कि आप ब्राह्मणों से पूज्य नहीं रहेंगे। वहाँ से वे ब्रह्मा के पास गये। रजोगुणी अभिमानवश ब्रह्मा ने भृगुजी का स्वागत हाल नहीं पूछा। कुपित हो भृगु जी ने उन्हें भी अपूज्य होने का शाप दिया तथा कोपावेश में ही विष्णु भगवान के पास जाकर उनकी छाती पर पैर से प्रहार कर बैठा। भगवान ने अपने को ब्राह्मण के चरणधूल से पवित्र होने का सौभाग्य बताया “पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः। प पु उत्तर 282।51। तथा यह भी कहा कि हमारे साथ समस्त लोक पवित्र हों “पुनीहि सह मां लोकान् लोकपालांश्च मदगतान्।” यह सिद्ध करता है कि भगवान के प्रति किया हुआ सबों को प्राप्त हो जाता है। अतः उनकी ही उपासना सुगम है।

समाधान-सुमन64। पापी एवं अधम भगवान के नहीं होते हैं “न मां दुष्कृतिनो भूद्धा प्रपद्यन्ते नराधमाः। गी 7।15।” अतः इस दोष से मुक्ति के लिये भगवान की ही उपासना श्रेष्ठ है।

समाधान-सुमन65। ज्ञान नष्ट होने पर ही अन्य देवता की उपासना करते हैं “कर्मैः तैः तैः हतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता। गी7।20।”

समाधान-सुमन66। अन्य देवों की उपासना से नाशवान फल प्राप्त होता है “ब्रह्माणं शितकण्ठञ्च याश्चान्य देवताः स्मृताः। प्रतिबुद्धा न सेवन्ते यस्मात्परिमितं फलम्।।”

समाधान-सुमन67। पुण्य क्षीण होते ही देवता भी धरती के जीव बन जाते हैं “क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। गी 9।21।”

समाधान-सुमन68। भृगु ऋषि ने भगवान से कहा कि आप को छोड़कर दूसरे देवता की पूजा करने वाले पापी एवं पाषण्डी हैं। वेदज्ञ ब्राह्मणों से एक मात्र भगवान ही पूज्य हैं।

समाधान-सुमन69। मोक्ष की इच्छारखने वाले मुमुक्षुगण अन्य देवों को छोड़कर भगवान की उपासना करते हैं।

समाधान-सुमन70। अन्य देवों को देखना उनकी पूजा करना तथा उनके मन्दिरों में जाना तथा प्रसाद लेना मना है “नान्यं देवन्तु वीक्षते ब्राह्मण १ न च पूजयेत्। नान्यं प्रसादं भुज्जीत् न अन्यस्य आयतनं विशेत्।।”

समाधान-सुमन71। पुण्यकर्म करने वाले पाप नष्ट होने पर अनन्यभाव से मेरी पूजा करते हैं “येषां तु अन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। ते द्वन्दमोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः। गी 7।28।

समाधान-सुमन72। प्रेमपूर्वक भक्ति करने वाले अनन्य भक्त को भगवान अपनी प्राप्ति का उपाय बताते हैं “तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन माम् उपयान्ति ते। गी 10।10।”

समाधान-सुमन73। “अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। गी 9।22। अपने अनन्य भक्त के क्षेमकुशल का भार भगवान स्वयं लेते हैं।”

समाधान-सुमन74। “अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः। गी 8।14। अनन्यता से भगवान सुलभ हो जाते हैं।

समाधान-सुमन75। वेद भगवान को स्वतंत्र कहते हैं परन्तु भक्त वत्सलतावश वे भक्त के अधीन रहते हैं “अनन्याधीनः त्वं तव किल जगुर्वैदिकगिरः। पराधीनं त्वान्तु प्रणत परतंत्रं मनुमहे।।”

समाधान-सुमन76। एक देवता की पूजा से एकवार में एकही वस्तु मिलती है परन्तु परमात्मा की पूजा से सबकुछ एक ही बार मिल जाता है “अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्। भा 2।3।10।

समाधान-सुमन77। भक्त जिस दोष पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता है भगवान उस दोष को छोड़कर उसके गुण को देखते हुए उसे अपनाते हैं “अजित दोष गृहीत गुणः ।।”

समाधान-सुमन78। भक्त से नौ प्रकार का सम्बन्ध मानकर भगवान उसे अपनाते हैं “पिता च रक्षकः शेषी भर्ता गेयो रमापतिः स्वाम्याधारो ममात्मा च भोक्ता चाद्यमनूदितः ।” “मोहि तोहि नातो अनेक प्रभु अब न तजे बनि आवै । माधव अब न द्रवहु केहि लेखे ।.....वहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि अब न तजे बनि आवै । विनयपत्रिका 113।3।” “मोहि तोहि नातो अनेक मानिये जो भावे । तू दयालु दीन हैं तू दानी हैं भिखारी ।.....तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै...। विनयपत्रिका 79।3।।”

समाधान-सुमन79। मोती एवं धागे की तरह परमात्मा से ही सब गुंथे हुए हैं “भयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणाइव । गी 7।7।”

समाधान-सुमन80। भगवद्भक्त को देवता पितृ भूत पिशाचादि सभी शांति एवं शुभ फल देते हैं । उसके यहाँ लक्ष्मी का स्थिर निवास रहता है “कुर्वन्ति शान्तिः विवुधाः प्रहृष्टाः ।.....। ब्रह्मादयोः देवगणाः प्रसन्नाः । लक्ष्मी स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च । गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ।।”

समाधान-सुमन81। “वेदेषु पौरुषं सूक्तम् ।” पुरुष सूक्त वेद का प्रधान सूक्त है । नारायण ही पुरुष सूक्त के प्रतिपाद्य देव हैं । नारायण में भूत वर्तमान भविष्य सदा स्थित रहता है “पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।”

समाधान-सुमन82। भगवान के सभी लीलावतार प्राणियों के कल्याणार्थ होते हैं “सर्वे लीलावतारस्ते भूतानां भूति हेतवः ।”

समाधान-सुमन83। अक्षर प्रणव इन्द्रियों मन धर्म काल यज्ञ सत्य ऋतु आदि के प्राण नारायण हैं “त्वं शब्दयोनिः जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणः स्वभावः ... ।।”

समाधान-सुमन84। भृगु जी कहते हैं कि भगवान सत्त्वगुण वाले होने के कारण ब्राह्मणों से पूज्य हैं तथा रजोगुणी एवं तमोगुणी होने के कारण ब्रह्मा शिव अपूज्य हैं ।

समाधान-सुमन85। दैवी स्वभाव वाले भक्त भगवान को अनादि एवं अविनाशी समझकर अनन्यभाव से भजते हैं “महात्मनः तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः । भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् । गी 9।13।”

समाधान-सुमन86। भगवान के शरणागत अनन्य भक्त देव पितृ एवं ऋषि ऋण से मुक्त हो जाते हैं “...सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्यं कर्तुम् ।।”

समाधान-सुमन87। भगवान से ही सभी वस्तुओं की पूर्ति होती है “ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।।”

समाधान-सुमन88। देवताओं की पुजा का निषेध होने से मन्दिर में उनलोगों के साथ रहने से भगवान भी अपूज्य हो जाते हैं “अन्यालये हरिं दृष्ट्वा देवतान्तरसंसदि न अर्चयेत् न प्रणमेत् च तीर्थसेवा विर्वजयेत् ।।”

समाधान-सुमन89। भगवान अनन्यभक्तों से अपनी सेवा स्वयं स्वीकार करते हैं ।

समाधान-सुमन90। सांसारिक सबकुछ त्यागकर अनन्य भाव से भजने वाले भक्त को स्वयं भगवान जन्म मृत्यु से पार करते हैं “विसृज्य सर्वान् अन्यान् च मामेव विश्वतोमुखम् । भजन्ति अनन्या भक्त्या तान् मृत्योः अतिपारये । भा 3।25।40।”

समाधान-सुमन91। भगवान का विराट रूप में प्रवेश करने के ही कारण महादि प्रकृति सृष्टि रूप में विद्यमान है “क्षेत्रज्ञः प्रविशत् यदा...। विराट तदैव पुरुषः सलिलात् उदतिष्ठत् । भा 3।26।70।”

समाधान-सुमन92। भक्त के अपकार या दोष को भगवान आत्मवत् भाव के कारण स्मरण नहीं करते “न स्मरति अपकाराणां सतम अपि आत्मवत्तया । ।”

समाधान-सुमन93। देवता भी मनुष्य के शरीर से ही मुक्ति पा सकते हैं।

समाधान-सुमन94। भगवान भक्तों के लिये कल्पवृक्ष हैं। ऐसा अन्य कोई नहीं है।

समाधान-सुमन95। “देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। मानस अयो 298। 2।” दोष को देखकर भी उसपर ध्यान नहीं देते परन्तु सुने हुए गुण की चर्चा साधु निरन्तर करते हैं।

समाधान-सुमन96। परमात्मा सबों के शरीरी हैं यानी वही सब में प्राणरूप से रहते हैं “यस्यात्मा शरीरम्। यस्य प्रकृतिः शरीरम्।”।

समाधान-सुमन97। भगवान सबके आधार हैं “सर्वाधारमच्युतम्।”

समाधान-सुमन98। सबके उद्धार भगवान करते हैं “तेषामहं समुद्धर्ता।”

समाधान-सुमन99। सभी सम्बन्धों को मानते हैं “सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम्। स्तोत्ररत्न आलवन्दार 5।”

समाधान-सुमन100। भगवान माता पिता के समान हितैषी हैं “सुहृत्प्रियवत् चरति।”

समाधान-सुमन101। भगवान बुद्धियोग देते हैं “ददामिबुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। गी 10। 10।”

समाधान-सुमन102। भगवान परम गति यानी मोक्ष देने वाले हैं।

समाधान-सुमन103। भगवान सभी वस्तुओं के आदि मध्य तथा अन्त हैं “आदावन्ते च मध्ये च।”

समाधान-सुमन104। एक कार्य में से दूसरे कार्य में भी स्थित रहते हैं “सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात्।”

समाधान-सुमन105। सब के नाश होने पर नारायण ही शेष रहते हैं “यच्छिष्येत् तदेव सत्।”

समाधान-सुमन106। सबों के प्रकाशक हैं “यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। गी 15। 12।” “सब कर परम प्रकाशक जोई। मानस वा 116। 3।”

समाधान-सुमन107। भगवान एक भी किसी प्रकार की सेवा से प्रसन्न होने वाले हैं।

समाधान-सुमन108। भगवान एवं उनका स्मरण ही वास्तविक सम्पत्ति है “विपदोनैव विपदः सम्पदोनैव सम्पदः। विपदस्मरणं विष्णोः सम्पत् नारायणस्मृतिः।।”

रामेन्दु शून्याशिवमिते च वर्षे माघे सिते पन्नगभौमवारे।

प्रीत्यै परेशस्य जनस्य भूत्यै एतस्य शास्त्रस्य हि आविरासीत्।

संवत् 2011 माघ शुक्ल आश्लेषा मंगलवार को भगवत् प्रीति वृद्धि तथा लोक कल्याण हेतु शास्त्र सम्मत इस पुस्तक की रचना हुई।

आर्त्ता विषण्णाः शिथलाश्च भीताः घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।

संकीर्त्य नारायण शब्दमात्रं विमुक्त दुःखा सुखिनो भवन्तु। नारायणाष्टकम् 8।

नारायण शब्द मात्र के संकीर्तन से मानव समस्त भय व्याधि तथा दुःख से छुटकारा प्राप्त करता है।

9। ध्रुव प्रह्लाद चरित्र।

प्रस्तुत सार संक्षेप ई सन् 2011 में हुलासगंज से प्रकाशित चतुर्थ संस्करण पर आधारित है। पुस्तक के प्रारम्भ के उन्नीस पृष्ठों में ध्रुव चरित्र का वर्णन है तथा बाद के अठारह पृष्ठों में प्रह्लाद चरित्र का समावेश है।

रामनवमी तथा जन्माष्टमी के उत्सवों में भगवद् श्रीपराङ्मुखाचार्य जी महाराज सरौती में इसका सरस मंचन ओड़बिगहा की भजनमंडली द्वारा करवाते थे। भक्तगण इन प्रस्तुतियों को देखने सुनने के लिये दूर दूर से सरौती आकर भक्तवर ध्रुव एवं प्रह्लाद के भगवान में एकान्तिक निष्ठा के भजन सुनकर आनन्द लूटने के आदि हो गये थे। श्रीवैष्णव भक्तगण अपने गाँवों में भी ध्रुव प्रह्लाद चरित्र के पदों की पंक्तियों को सामान्यतया गुनगुनाते सुने जाते थे।

ध्रुव चरित्र :

ध्रुव चरित्र में 35 पदों का संग्रह है। इसका प्रारम्भ माता की सुयोग्यता की महत्ता को दर्शाते हुए पद से हुआ है। पुत्र की जीवनशैली माता की सुयोग्यता से बनती है इसके कई उदाहरण इस पद में समाविष्ट हैं।

“माता सुयोग्य पाकर सुत क्या न कर सके। ... सु अंजनी आराधन कर श्रीनिवास के। हनुमान पुत्र जाकर लंका जला दिये। ऐसी कथा है कि तिरुमला पर्वत पर आकाशगंगा के तट पर माता अंजनी हजारों वर्ष तक पुत्र प्राप्ति हेतु भगवान वेंकटेश की आराधना की है। भगवान वेंकटेश की ही कृपा से हनुमान जी जैसा पुत्र उन्हें मिला।

जननी भई कयाधु नारद के ज्ञान से। प्रह्लाद पुत्र जिसके पावक न जल सके। प्रह्लाद जी अपनी माता के गर्भ में थे। इन्द्र राक्षसों से युद्ध के अन्तराल हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधु को कैद कर उसके गर्भ का नाश करना चाह रहा था। नारद जी को उसके गर्भ से भक्तवर प्रह्लाद के अवतार का ज्ञान था। उन्होंने कयाधु को इन्द्र से छुड़ाकर अपने आश्रम ले आये तथा उसकी रक्षा की।

माता बड़ी पृथा के सुत पार्थ से हुए। जो पात्र बने सुन्दर गीता के ज्ञान से। कुन्ती के पुत्र अर्जुन के कारण ही भगवान ने अपने सुभारविन्द से कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में गीता का सृजन किया।

सुन्दर सुनीति माता से पुत्र ध्रुव हुए। वह बाल पंचवर्षा हरिचरण धर सके। ध्रुव के पिता उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं सुनीति एवं सुरुचि। ध्रुव की माँ सुनीति थी। सुरुचि को भी उत्तम नाम का एक पुत्र था। राजा उत्तानपाद सुरुचि के प्रति ज्यादा प्रेम दिग्गते थे। एकदिन सुरुचि के पुत्र को वे गोद में लिये बैठे थे कि सुनीति के पुत्र ध्रुव भी वहाँ पहुँच कर राजा की गोद में बैठना चाहें। सुरुचि ने ध्रुव की डांट लगाई कि राजा के गोद में केवल उसी का पुत्र बैठ सकता है और नारायण की तपस्या से ही मेरा पुत्र बन सकते हो। ध्रुव की अवस्था उस समय पाँच वर्ष की थी। वे अपनी सौतली माँ की बात से दुःखी हो गये। उनको उनकी माँ सुनीति ने धैर्य बंधाया तथा कहा कि भगवान की गोद से उत्तम कुछ भी नहीं है तुम उसके लिये प्रयास करो। ध्रुव के मन में बात गड़ गई। वह भगवान की खोज में घर छोड़कर जंगल को चला गया। नारद जी की कृपा से उसे ज्ञान मिला तथा उसने कठोर तपस्या के बल पर भगवान को प्रसन्न कर लिया। भगवान ने उसे ब्रह्माण्ड के सबसे ऊँचे स्थान पर सदा के लिये स्थापित कर दिया। आज भी आकाश में ध्रुवतारा ऊत्तर दिशा में एक ही शाश्वत स्थान पर निरन्तर दिग्गयी देता है जिसके चारों ओर सप्तऋषि से लेकर अन्य तारागण परिक्रमा करते रहते हैं। ध्रुवतारा का स्थान परमपद वैकुण्ठ का प्रतीक है। अन्य तारा गणों का उल्कापात देखा जाता है परन्तु ध्रुवतारा सदा उसी स्थान पर वर्तमान रहता है।

अस पुत्र अदिति ने जने व्रत नियम धर्म से। उन्चास खण्ड हो गये पर फिर न मर सके। कश्यप मुनि की दो पत्नियाँ थी दिति एवं अदिति। दिति से दैत्यों की वंशावली चली है तथा अदिति से देवताओं की। दिति ने कश्यप मुनि को प्रभावित कर एक ऐसे पुत्र का वर प्राप्त कर लिया जो इन्द्र का वध करेगा। वह बड़े नियम व्रत के साथ गर्भ धारण कर गर्भ में सन्तान का पालन कर रही थी। इन्द्र को इस बात का ज्ञान हो गया कि दिति के गर्भ में उसका अजेय शत्रु पल रहा है जो उसका वध करेगा। वह सेवक बनकर दिति की सेवा करने लगा। एकदिन आलसवस दिति बिना पैर धोये विछावन पर लेटी एवं निद्राग्रस्त हो गयी। नियम भंग होते देख इन्द्र उनके गर्भ में प्रवेश कर गर्भ का नाश करना चाहा परन्तु जितने टुकड़े वह करता था उतनी ही संख्या गर्भ के बालक की बढ़ती जाती थी। उन्चास खण्ड करने पर भी वह बालक मरा नहीं और इन्द्र से प्राणदान इस शर्त पर मांगा कि वह इन्द्र की हत्या नहीं करेगा। वही उन्चासो देवताओं के सहायक देव होकर उन्चास तरह की वायु के रूप में प्रसिद्ध हुए जिनकी कथा हनुमान जी की सहायता कर लंका जलाने में सुनी जाती है।

पद 2 । अपने भाई उत्तम को राजा की गोद में बैठा देख ध्रुव भी राजा के चरणों के पास पहुँच कर गोद में बैठना चाहा परन्तु उत्तम की माँ रानी सुरुचि के भय से राजा ध्रुव को गोद में नहीं बैठा सके। “मनु के सुत उत्तानपाद नृप बुरा किये दो ब्याह किये। प्रथम पत्नी तज सुनीति को अधिक सुरुचि में प्रेम किये।। सिंहासन पर बैठ नृपति ने सुरुचि पुत्र को गोद लिया। बार बार चुचकार चूम मुख उत्तम को अति प्यार किया।। ध्रुव ने पितृगोद उत्तम लख स्वतः गोद की चाह किया।।.....जाकर वह सिंहासन के ढिग नृपति चरण युग को पकड़ा। बाबूजी लो गोद हमें भी भोली सूरत में अकड़ा।।

पद 3 । राजा की दयनीय स्थिति का चित्रण है “राजा ऐसे होते ही हैं घरनी जिनको ठगती ही है। । दूषण से बचते न कभी वे अपने अयसी बनते ही हैं। । ... सुरुचि झटक ध्रुव को कहती है हीन और कटु वचन महा। । ”

पद 4 । “रे बालक अनजान कहाँ तुम जात पिता के कोरे में। ।.....उत्तम के समान ही तेरी कहाँ प्रतिष्ठा हो सकती। । रे ध्रुव मेरा पुत्र नहीं तुम कर हिसका मत उत्तम का। चाहो मेरा पुत्र बनना तो ध्यान धरो पुरुषोत्तम का। ।

पद 5 । “ध्रुव में क्षत्रि का तेज रहा अपमान भला सहता कैसे। ज्यों नाग शीश पर चोंप पड़ी लम्बी श्वासा लेता तैसे। । वह फरफरात अधरों दोनों आया माता ढिग रो करके। व्याकुल सुनीति ने बच्चे को ले गोद कहा सुध खो करके।धीरज धर सुत मुख चूम चूम बोली कल्याण मयी वाणी। । ”

पद 6 । “बाबु हो करमगति मेटे से मिटत नाहीं, कैसे के बुझाउँ बाबु कैसे समझाउँ हो। ।हमहु कहति बाबु मन में विचार देखु, हरि चरणन सेई सकल बनाऊ हो। जेहि चरणन सेई ब्रह्म रुद्र इन्द्र पद, पाइ पाइ धन्य होहिं तिनही मनाउ जी.....। ”

पद 7 । “सुनकर माता के वचनामृत ध्रुव उतर गोद से ठाढ़ भया। वह गिरा चरण पर माता के वन चलने को तैयार भया। ।भगवत पद में मन जोड़ा है, नहीं प्रेम हृदय में थोड़ा है। दे माता शुभ आशीष हमें, आज्ञा धर शीश चलुं वन में। रह के भगवत पद सेवन में, है श्रद्धा उमड़ पड़ी मन में। ईश्वर जिसको अपनाता है। सो तुरत दीन बन जाता है। । सब सम्बन्धी हट जाते हैं। या सबसे वह टल जाता है। । ...जिसको यह जगत भगाता है। तिसको भगवत अपनाता है। । ”

पद 8 । माँ ध्रुव की बात सुन कर घवरा उठती हैं। “बाबू दुर्बल तोर गात, गरम शीत बात, सहब वन जात, मनहीं अकुलात, यही से डरात हो लाल। । ...लाला सह के सकल दुःख पीर, धरहु मन धीर, भजहु रघुवीर, हरत सब पीर, घरहिं रह बीर हो लाल। । ”

पद 9 । ध्रुव का अटल निर्णय था। माँ को कर्तव्य बोध कराते हैं “है जननी जनक सो जो भगवत में लगा दे। वह परम मित्र सो जो भगवत में लगा दे। है पूज्य गुरु सो जो भगवत में लगा दे। जल्लाद है वही जो इस जग में फँसा दे। अब जाने दे री माइ अब जाने हमें दे...। ”

पद 10 । माँ पुनः मनाती है “बाबू जनवन वनचरवातु पाँच वरस का। पिता तोरे ऐसे त्यागे, घर में न मन लागे, लाला तु रह ममहरवा। तु पांच वरस का। ।

पद 11 । ध्रुव का निर्णय अटल देख माता आशीर्वाद देती हैं “भगवान सदा कल्याण करें। नहीं कोई कहूँ अपमान करें ...। हरिहूँ तप को फल दान करें। सब लोग बड़े पर मान करें। ”

पद 12 । माँ उपदेश करती हैं “कबहूँ घर का सुध ना करना, चित दे प्रभु की सेवा करना। प्रभु पदम चरण में मन धरना, अति प्रेम निरन्तर ही करना। भगवत पद जो अपनाता है। वह जग में पूज्य कहाता है। ... उसको सब शीश नवाते हैं। भगवान जिसे अपनाते हैं। ”

पद 13 । ध्रुव वन के रास्ते नारद जी को देख उनकी प्रार्थना करते हैं “गुरुदेव प्रणाम करौं तुमहीं, वह राह बतावहु जी हमहीं। जिसमें भगवान मिले हमहीं, वह यत्न समस्त करौं हमहीं..... शुभ आशीष करौं बाबा जी मैं तो बालक अनजान सुनौं बाबा जी। है तुम दया के निधान मेरे बाबाजी...। ”

पद 14 । नारद जी का उपदेश एवं ध्रुव की परीक्षा “बालक पाँच वरस का है ध्रुव लौट लौट जा घर को। दुराराध्य भगवत पद है ध्रुव तुम लौट.....। योगि लोग निसिवासर खोजत सो कतहुँ नहीं पावै। ज्ञानी से जो दूर रहत है तुम कैसे के पावै। ध्रुव तुम लौट.....। ”

पद 15 । ध्रुव की मानसिक स्थिति का चित्रण “तीर गोली का घाव तन से जाता है। घोर दुःख विषाद भी मन से जाता है। 1। कठिन वचन का घाव न मन से जाता है। सो यह ध्रुव का इतिहास ही बताता है। 2। ”

पद 16। ध्रुव पुनः नारदजी की प्रार्थना करते हैं “बाबा राह बता दो हमको। गंगा पाप हरत हिमकर तप, सुरतरु हर दारिद को। संतन पाप ताप दारिद हर, तनु धर सकल सुखद को। बाबा राह.....। नरम हृदय अज्ञान वासना विविध दोष उपजावे ताहि नाश नारद कहलायो दे दे ज्ञान रतन को। बाबा राह।”

पद 17। नारद जी ध्रुव को लौट जाने को पुनः कहते हैं परन्तु ध्रुव अपनी दृढ़ता दिखाते हैं “जर जाऊँ कहीं मर जाऊँ कहीं। विष खाऊँ कहीं घर जाऊँ नहीं। 1। डूब जाऊँ कहीं दह जाऊँ कहीं.....कट जाऊँ कहीं बंट जाऊँ कहीं ...मर जाऊँ कहीं घर जाऊँ नहीं। 4।

पद 18। ध्रुव की दृढ़ता क्यों थी “एक क्षत्रि के घोर पुनि, रह सुनीति के कुक्षी जैसे। माता के उपदेश भला वह, महावीर मुड़ता कैसे।उदयाचल पर उगने वाले, सूर्य नहीं रुकते जैसे। होनहार बालक इस जगमें, होकरके रहता तैसे।”

पद 19। नारद जी द्वारा मार्ग प्रदर्शन “जो तुम भगवान का दर्शन किया चहो, परम प्रेम से हरि को ध्यान यों धरो। नील नीरद नील मणिन नील कमल से, शंख चक्र गदा पद्म हाथ में धरयो। मनहु चन्द्र दश गुण परस कर भयो, बज्र ध्वजा अंकुश घट कुलिस छत्र सो। चरण कमल दो दो शुभ रेख से भरयो, विहसित मुख पंकज को ध्यान तुम धरो। मंत्र द्वादशाक्षर का जाप नित करो, मधुवन में जाकर तुम काम यह करो। ज्ञान शक्ति तेज वीर्य बल यश मा हो, जिन में यह गुणगण भगवान सो मय्यो।”

पद 20। नारदजी से ज्ञान लेकर ध्रुव लक्ष्य पर दृढ़ चले जा रहे हैं तथा शुभ शकुन हो रहे हैं “सो हरि सुमिरत मन माहीं चले मग जाहीं सुशकुन जनाहीं सुपाठ पढ़ाहीं कहत हरि जै जै जै। ...आगे में गैया पिलाती दही लिये जाती सुहागिन गाती बाल खेलाती कहत हरि जै जै जै...। कोई मंडल बनाते हैं कीर्तन को गाते कहत हरि जै.....।”

पद 21। मधुवन में ध्रुव का अनुसंधान “बहुत बार भगवान अहै मधुवन में आये। यही मधुवन में हरि अपनी ले गाय चराये। यही मधुवन के रेणु चहत विधि शीश चढ़ाये। यही मधुवन में मुनिगण सब तृण बन रह छाये। ...यही मधुवन ही द्विजवधु हरि के भात खवाये। ...पाप मथन के कारण से मथुरा कहलाये। ज्ञानी गोलोक कहैं इसको, न कहूँ भगवान तजै इसको। ध्यानी जन ध्यान धरैं इसको, हमहूँ परनाम करौं इसको।”

पद 22। “नारद उपदेश सुना ध्रुव मधुवन को वह जाता है। कालिन्दी के तट पर सो वह अर्चा को अपनाता है। प्रथम मास में तीन दिवस पर कैथ वैर को खाता है। मास दूसर में घास पात छव दिन में भोग लगाता है। नव नव दिन पर मास तीसरे में जल पीकर रहता है। हवा पान कर चौथे ही में गाढ़ा ध्यान लगाता है। मास पाँचवें के लगते सो घोर समाधि लगाता है। छठे मास में श्वास रोककर तन की सुधी भुलाता है। निश्चल प्रेम भया भगवत में जड़ से खड़ा लखाता है। यह निरोध प्रेम भक्ति को लक्षण मुनि गण गाते हैं। वैदिक लौकिक क्रिया कर्म सब आप आप छुट जाते हैं।”

पद 23। ध्रुव की दृढ़ता के कारण है “मनु स्वायंभुव वंश का प्रभाव आ रहा। माता हृदय पवित्र संस्कार छा रहा। नारद के दर्शन के बड़ पुण्य भी रहा। तैसे ही सदुपदेश से पवित्र मन रहा। यह चारो ही मिलकर वह चार दे रहा। सो अन्त एक आपही वह चार कर रहा।”

पद 24। देवताओं का उपद्रव “घोर तपस्या से हलचल हो देवलोक अकुलाता है। सचिपति आदिक सह न सके सो अस्त्र शस्त्र धर धाता है। काट काट सब खाऊँ खाऊँ कह भीम रूप दिखलाते हैं। हारे सब उपाय बहुविध कर ध्रुव नहीं तनिक चिताते हैं।”

पद 25। ध्रुव से पशुओं का प्रेम “उस ध्रुव को लख बाघ सिंह आते हैं। पर वैर छाड़ प्रेम को बढ़ाते हैं। ... जानु सबके ही सबसे सब बनाते हैं। सोई दीन पर दयालु कृपा करते हैं। रूप धर कर प्रकाश हृदय करते हैं। ध्रुव ध्यान में निमग्न अचल रहते हैं। छवि श्याम को निहार भाव करते हैं। अधिक प्रेम से प्रसन्न विहरते हैं। नहीं मन को चलाते नहीं चलते हैं।”

पद 26 | “कहीं दिनकर कहीं निशिकर कहीं विद्यु चमकते हैं। कहीं हैमी कहीं रजनी कहीं उड़गन दमकते हैं। इन्दीवर कुमदुनी साथ कहुँ चम्पक विकसते हैं। ...ध्रुव के कण्ठ गद् गद् हो नयन से नीर झरते हैं। यही है ब्रह्म पर आनन्द में सब ज्ञान तरते हैं।”

पद 27 | “ध्रुव मन के संसार भक्ति से सेवन अर्पण करते। अर्घ्यादि उपचार सकल मन ही मन करते। पराधीन भगवान भक्त से भोजन करते। दे आचमन प्रेम कर्पूर निराजन करते। तुलसी दल ले सहस्रनाम से अर्चन करते। पुनि दो कर से धर भगवान के चरणन पड़ते। दीनबन्धु भगवान दीनमन मन्दिर रहते। सो अदम्य करुणासागर बाहर लख पड़ते।”

पद 28 | “दयानिधि दीन पर अतिशय दया करके दरश देते। पड़े ध्रुव निज चरण तल से उठाकर अंक में भरते। सुअद्भुत रूप लख प्रभु के बड़े आनन्द में भरते। स्वयं प्रभु वाम कर से शंख से मुख को परस करते। निरखते रूप हैं प्रभु के न एक पल गिरते। विवस हो प्रेम मूरत बन वातें एक भी करते।”

पद 29 | “तुम्हारे हरि दीनन चाहते हैं। अति दीनन को तुम चाहत हो। दीनन तुम्हारे अपनाते हैं। तुम दीनन को अपनाते हो। ...प्रभु दीनन तुम्हें बुलाते हैं। तुम दीनन के घरजाते हो। ...दीनन तुम्हारे पग धरते हो तुम दीनन के कर धरते हो...। तुम कर धर हृदय लगाते हो। भिलनी को मैया कहके तुम जूटे बैर चवाये हो। यों बिदुरानी कर केले के तुम छिलके भोग लगाये हो। यह गुण गण से भगवान सदा तुम दीनबन्धु कहलाये हो।”

पद 30 | भगवान ने ध्रुव जी को परमपद के पास अचल शाश्वत स्थान दिया “कौशिक भरद्वाज गौतम जमदग्नि ना सकते। कश्यप मुनि वशिष्ठ जहँ बसते कबहुँ न आगे जा सकते। सूर्य चन्द्र औ भौम बुधो गुरु शुक नहीं जो पा सकते। निशि दिन हैं जो चक्र लगाते कहीं विराम नहीं करते। ता ऊपर स्थान मनोहर है तहवाँ तुम्हरे रखते। विरजा दिव्य पार होकर तुम हमरि सेवा कर सकते।”

पद 31 | ध्रुव को धरती पर रहने का समय भगवान ने बताया “छत्तीस सहस्र वर्ष भूमिपति होकर... सबसे सम्मानित होकर। शिशुमार चक्र के भी मेधी होकर। इस रचना तक तह के वासी होकर। फिर आना भी बच्चा तुम हमरे घर।”

पद 32 | सुनीति स्वप्न देखती है “सुत चिन्तन कर सुतली सुनीति देखली ध्रुव के भिनुसहरे सपनवाँ। श्वेत कुसुम कर गजरा पहिरले तुरंग चढ़ि के दिशि पुरब गवनवाँ। ... सुन्दर सन्तन के संग ले ले अइले अपने पितु के भवनवाँ। देखत सपन उठी जब रानी सपन फले हे यह सुख के अवनवाँ। मोरे शुभ दिन भगवान बनावे नयना भरके हम देखैं ललनवाँ।”

पद 33 | “यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैः भैत्र्यादिभिः हरिः। तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नम् आपः इव स्वयम्। भागवत 4।9। 47।” “जिसको भगवत अपनाता है उसको जग शीश चढ़ाता है। जिसके कछु बात न पूछा है अगवानी कर ले आता है। जो दूरे से दुतकारी है सो गोदी ले चुचुकारी है। जो रो रो करके जाता है सो बाजा से घर आता है।”

पद 34 | ध्रुव के घर आगमन पर स्वागत “चौक चौक चारु चौके पुरवाते हैं। द्वार द्वार हेम कलसे धरवाते हैं...। भौंति भौंति रंगवल्ली बनवाते हैं। सो है शुभ दिन से शुभ दिन वह जेहि दिन ध्रुव घर आते हैं। ग्रह लग्न बार औ तब मुहुर्त शुभ फलदाता बनजाते हैं। सोइ उत्तानपाद ध्रुव के हित विप्र गणन बुलवाते हैं। सब विधि उपचार कराके शुभ सिंहासन बैठाते हैं।”

पद 35 | “ध्रुव राज सिंहासन राजे सकल दुरित दुर भाजे। प्रजा सबन के घर घर मन्दिर वासुदेव तहँ राजे।। परा प्रेम से भगवत पूजन के सब साजन साजे। जैसे बाबा बने पुजारी सोई अन्यता छाजे। प्रेमांकुर नित नव नव बढ़ते देख मुनिन मन लाजे। रोज रोज भगवत के उत्सव विबुध बाजने बाजे। वैदिक धर्म कर्म सब जिनके प्रेम परस्पर भाजे। देव पितृ ध्रुव की जय बोलें सुन्दर मधुर अबाजे।”

प्रह्लाद चरित्र

पद 1। कयाधु रानी रात्रि के अंत के एक स्वप्न में भजन करते बालक को अपने गोद में खेलते देखती है “सुतली कयाधु रानी देखली सपनवाँ ए भिनुसहरे बेरिया। गोद हीं में बालक खेलात ए भिनुसहरे...।। गोद में बैठल पूत जपे हरि नमवाँ ए भिनु...। तेहि देखि हरि मुसकात ए भिनु...।। गोदहिं बैठल सुत बनले पुजारी ए भिनु...। तेहि कर हरि जी पुजात ए भिनु...।। श्रीनिवास आइ नित देहि दर्शनवाँ ए भिनु...। नितहिं पुजा के चले जात ए भिनु...।। जगली कयाधुरानी देखके सपनवाँ ए भिनु...। मने मने समुझि चेहात ए भिनु...।। गुनत सपन फल होत हरिजनवाँ ए भिनु...। मने मने अति अगरात ए भिनु...।।”

पद 2। प्रह्लाद जी के जन्मकाल का विवरण “प्रभव मार्ग सुदि दशमी गुरु दिवस पुष्य ऋक्ष ये। जनि सुबन कयाधु रानी हरिजन मीन लग्न वर ये।। पुत न कबहुँ नेक रोबत न कहुँ चितावत ये। एक मनहिं मनहिं भगवत पद ध्यान लगावत ये।।.....। मानत सन्त प्रभाव सुवन मुख देखत ये। अरु मन मँह अति उत्साह कहत सब काहुन ये।।” सबसे कयाधुरानी कहती है कि नारद जी के प्रभाव से ही हरिभक्त पुत्र हुआ है। नारद जी की विशेषता है कि किसी विषय की पुष्टि तथा खण्डन दोनों काम करने में ये प्रवीण हैं ‘नर सम्बन्धी नारं ज्ञानं ददाति नारदः।’ ‘नर सम्बन्धि नारं ज्ञानं खण्डयति इति नारदः।’

पद 3। प्रह्लाद जी वचन से ही हरिभजन में लगे रहते हैं “मधुरी तोतरी बोली बोलले बलकवा कहि श्रीसीताराम। यह दोउ नाम उदार कहि श्रीसीताराम।।.....। लखि दीनबन्धु तेहि बाहर भीतर रही। अपने करत रखवार कहि श्रीसीताराम।।”

पद 4। हिरण्यकशिपु एक बार प्रेम से प्रह्लाद जी को गोद लेकर पूछने लगा “कहो लाल यह बात तुम कवन वस्तु मन भात।” प्रह्लाद जी ने कहा “अन्ध कूप गृह छाड़ के हरि सेवन वन जात। यह जग से उद्विग्न हो यह हमरे मन भात।”

पद 5। मनही मन हिरण्यकशिपु इसे प्रह्लाद की वचन समझता है। “हंसत नृपति सुनि बैन यह असि मति बालपने की। हित अनहित कछु जानत नाहीं अहि कर पकरन जात असि मति.....।।.....। जेहि कुल के संहारे हिरण्याक्षहुँ को मारे तेहि नाम लेत अगरात असि मति...।। मोरदेव भूतनाथ ... भोला मोर बड़ दानी तेहि मन में न आनी। हरिहिं जपत दिनरात असि मति...” उसने प्रह्लाद को समझाया कि विष्णु हमारे कुल के शत्रु हैं तू उनका नाम न लिया कर।

पद 6। प्रह्लाद जी का मन विष्णु भगवान से हटाकर शंकर जी में लगाने हेतु हिरण्यकशिपु ने सण्डामर्क शिक्षक को आदेश दिया तथा उसने वैसा ही किया “सुनो शिष्यगण पढ़ने वाले दैत्यवंश में होने वाले। तुम्हरे कुल के देव निराले भोला नाथ कहाने वाले। ...डिमडिम डमरू बजाने वाले...भूतन सब मिलि ताल बजावै...भंग के गोला खावै...तुम सब विधि तेहि ध्यान लगावै... कबहुँ विष्णु को मन मत लावो दैत्यवंश का नाम बढ़ावो।”

पद 7। सण्डामर्क का उपदेश व्यर्थ हुआ “परमानन्द लाभ होने पर छुद्रानन्द न भाता है। जो मन भगवत पद पाया सो फिर नहीं अनत चिताता है। ...श्रीहरि रंग में रंगित होकर नहीं प्राकृत मन भा सकता। जो प्रह्लाद भक्त बतलाय बालक गण मन जमक गया।.....। सण्डामर्क गुरु का कहना शिष्यन मन से ढरक गया।”

पद 8। प्रह्लाद जी का मन विष्णु भगवान के प्रति पूर्णतया समर्पित था। हिरण्यकशिपु उन्हें एकबार विद्यार्थियों के साथ जाते देख बुलाया तथा उनी पढ़ाई के बारे में सुनना चाहा। उन्होंने कहा “श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। भागवत 7।5।23।” अर्थात् भगवद् गुणयश को सुनना गायन करना स्मरण करना पाद कमलों की सेवा करना अर्चना करना वन्दना करना परिचर्या करना सम्बन्ध जोड़ना आत्म निवेदन करना यही मैं पढ़ रहा हूँ।

पद 9। भालक के अस वचनसुनत ही राजा अतिसय धधक उठा। भृकुटि बक दोउ नयन रक्त अरु बोलत है अस हाथ उठा।। सण्डामर्क कहो क्यों ऐसा लड़के को बतलाये हो। अभी तुम्हें मैं देश निकासौं तुमने जहर पिलाये हो।।

पद 10। सण्डामर्क बोले “सुनु राजा मैं पाठ पढ़ाता सो मन में नहीं लाता है। स्वाभाविक रति विष्णु चरण में कोउ ना इसे बताता है।। यथा सुगुन्ध कुसुम में अपने आप आप बन जाता है। बट में बीज बीज में बट रह बाहर नहीं लखाता है। ...इक्षुन में शर्करा रहत परहरि रत बाल बाल में हरि रत।।”

पद 11। प्रह्लाद कहते हैं “गौवन जो खाते तिसको ले फिर से उसे चबाते हैं। पूर्व जन्म के किया कर्म को जीव उसे अपनाते हैं। राम कृपा या सन्त कृपा से भक्ति रत्न नर पाते हैं। जीवन के कल्याण मार्ग यह सब सद ग्रन्थ बताते हैं। अस जिय जान विज्ञ जन हरि में लग अभ्यास बनाते हैं।।।”

पद 12। सण्डामर्क राजा से कहते हैं “नैसर्गिक यह वासुदेव पद पंकज भक्ति पियारी है। सत्य सन्ध ब्रह्म जितेन्द्रिय अतिशय पर उपकारी है।खेलत खात पियत चलते हरि को देखत छवि प्यारी है। ... कबहुँक मुग्ध पुलक तन कह दोऊ लोचन मोचन बारी है.....।।” ऐसा सुनकर राजा ने प्रह्लाद को सुधारने का आदेश दिया।

पद 13। गुरु सण्डामर्क प्रह्लाद जी को पाठशाला ले गये। उनकी अनुपस्थिति में एक दिन सहपाठियों को प्रह्लाद जी बताते हैं “सुनो मित्र यह सत्य वचन दुर्लभ तन छनहिं बिलाता है। यह लख भगवत धर्मों को बचपन से अपनाता है। ... मूढ़ सदा तामस से सोकर आधा समय गंवाता है। ताहि अर्ध बालक कुमारपन में वह खेल गंवाता है। तैसे ही बाकी चौथे व्यर्थ ही सदा बिताता है...। गृह अरु पुत्र कलत्र प्रेम में अपने आप बन्धाता है। ...ताते दुर्जन संग छोड़ के दूरे रहना ही चाहिए। आदि देव नारायण चरणों को अपनाता ही चाहिए।। श्री भगवत् पद पदम गहन में नहीं प्रयास कछु भाई हो। तुम सब असुर भाव को तजकर मित्र बनो सब जीवन को। निहेंतुक भगवान आपसे अपनावहिं सब दीनन को।। ...बनो एकान्तिक भक्त राम के मोह जाल सब को तज के। नारद बाबा दियो ज्ञान यह बनहिं सकल भगवत भज के।। यह सब सुनि उपदेश वाल गण धन्य धन्य कह अपनाया। आज कृतार्थ कियो तात तुम सब मिल चरणन सिर नाया।। बालक सब मिलि विद्यालय में गान करत हरि नामों को। सण्डामर्क सुनत रिस वस हो छोड़ दिया सब कामों को।। धर कर के ले चला भक्त को सब बालक के संगों में। हिरण्यकशिपु के न्यायालय में। सबको यह हरि भक्त बनाया मम उपदेश न मानत है। राम नाम को छोड़ अन्य कछु लोक कर्म नहिं जानत है।।”

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के वध की आज्ञा दी “विष से दूषित अंग छेदन कर जन सब विधि सुख पाता है। ...। जेहि विधि से मर सकै दुष्ट यह तेहि विधि से सब मारहु रे। मर्म स्थल में सांग वेध कर हिम गिरि पर लै डारहु रे। या जल में लै बोर मार दो या अग्नि में जारहु रे। महा विषम विष घोर पिलावहुँ ले जा दूर भगावहुँ रे।।”

पद 14। दैत्यों के गुरु शुकाचार्य के दोनों पुत्रों सण्ड एवं अमर्क प्रह्लाद के शिक्षक थे। सण्डामर्क दोनों का संयुक्त सम्बोधन है। प्रह्लाद के सुधार के लिये उन लोगों ने हिरण्यकशिपु को शुकाचार्य से परामर्श करने की राय दी। जबतक उनसे परामर्श न हो जाये तब तक प्रह्लाद को पाठशाला में ही रखने का विचार हुआ। पाठशाला लौट प्रह्लाद जी ने सहपाठियों से कहा “जग में वियोग योग मिलत करम फल जहँ जहँ देह धरो जाय मोर भाई हो। ईश की न दोष एक लहत कएल सब जहँ जहँ तनु पाय जाय सुनु भाई हो।। नभ में बसत रवि चन्द्र तुम देखते हो तिनहुँ के राहु धाए खाए जाए भाई हो। तोर मोर मात पित रामजी सहाय एक तिनहि के चरण मनाऊँ मोर भाई हो।।

पद 15। प्रह्लाद जी मृत्यु से निर्भय रहने का संकेत देते हैं “मीतगण मन में न डरना, मोहि पिता चहे मरवाना।। जन्मकर मरना मरकर जन्मना यह नियम है परमपुराना। देह चेतन का हो या अचेतन का हो, तन नर के बने पशु पक्षी बने, देही रहता है सब में समाना। मीतगण।। स्वर्णकुण्डल बने या दिजाइट बने, सोनछाता बने या सिंहासन बने, स्वर्ण रहता है एक

समाना।मीतगण.....।जीव जरता नहीं जीव मरता नहीं जीव घटता नहीं जीव बढ़ता नहीं नित्य रहता है एक समाना।मीतगण...।”

पद 16। सहपाठी रोते हुए कहते हैं “हम सब दीनन के तजो जानि जाहु भाई हमहु चलव तोरे संग मोरे मितवा।। तोरे चरणन लागी माता पिता गुरु त्यागी तुम अब कैसे त्यागी जाए मोर मितवा.....।

पद 17। प्रह्लाद मित्रों को चिन्ता करने से मना करते हैं “मोहि पिता चैं मरवाना, मैं तो मन में नहीं भय माना।। राम अमृत बने, राम विष में बसे, प्रभु हितहुँ बने, प्रभु मितहुँ बने। कबहुँ न होत विराना, मैं तो मन...। राम घर में बसे ...। प्रभु बसते हैं सबमें समाना। मैं तो मन...। राम घट में बसे, राम पट में बसे, राम अधो में बसे, राम उर्ध्वों में बसे, प्रभु रक्षक है अपने अपना। मैं तो मन...।।”

पद 18। प्रह्लाद की बातें सुनकर सण्डामर्क दुःखी हुए तथा हिरण्यकशिपु को सारी बातें बता दी। उसने आग बबूला हो प्रह्लाद को मारने का आदेश दे डाला। यह सुन माता कयाधु विलाप करने लगी “लिखन चहत विधु लिखले विधुन तुद विधि गति उलटे लखात ये दुलरूवा।। ...गिरि से गिरावे लेके पानी में डुबावे तोरा विषधर सोंप से कटावे हो दुलरूवा...।। ढुँढ़ी दयितिनियों से राजा के बहिनियों से तोरा लेके आग में जराबे हो दुलरूवा।। ऐसे घोर पापी तेहि आँख में न लाज लागे बाप होके पूत को संहारे हो दुलरूवा।। पिता तोर रामजी मतारी तोर सीता जी हो आशा एक तिनहि लगाऊ हो दुलरूवा। राम दीनबन्धु सोई सकल निवासी प्रभु तिनकर चरण मनाऊँ हो दुलरूवा।।”

पद 19। दैत्यगण प्रह्लाद जी पर आघात करते हैं “ताहि समय मिलि सकल दैत्य सब ललकारत झट धावत है। गड़गड़ात दाँतों को पीसत अस्त्र शस्त्र वर्षावत है।। ताहि मध्य प्रह्लाद बैठकर हरि का ध्यान लगाता है। मूल मंत्र के जाप करन सुख से नहीं कतहुँ चिन्ताता है।। ताके भय हरि मंत्र कवच रितु यल विफल हो जाता है।। दैतन सब आश्चर्य भए लख मन मह तर्क बढ़ाता है। पुनि तेहि के विष पान कराकर हांथिन को ललकारत है। चलत ही दन्तिन दाँत गिरयो पुनि बिच्छून से विन्धवाता है। मंत्र तंत्र अरु यंत्र कियो बहु सकल विफल हो जाता है। रोम बांक नहीं होत भक्त को नृपतिहिं जाय सुनाता है।।

पद 20। “सुनि राजा आश्चर्य भया मनहीं मन अकुलाता है। बैठे सिंहासन परहीं से ढुँढ़ी को बुलवाता है।। भाई क्यों चिन्ता करते मैं अभी दुष्ट को मारूँगी। गोद ही में लेकर बच्चे को प्रवल अग्नि में जारूँगी।। देवदारु अग्नि बबूर की बड़ी चिता बनवाती है। सकल भाँति सजके तेहि ऊपर गो घृत से सिंचवाती है।। गोदी में लेकर बच्चे को काठ पुंज पर बैठ गयी। आठो दिशि अग्नि लगवायी अतिसय ज्वाला लपटगयी।।”

हिरण्यकशिपु देखने आया। प्रह्लाद ने पिता को नजदीक से आकर देखने को कहते हुए बताया कि अग्नि मुझे तो शीतल जल जैसा लग रहा है परन्तु दीदी जलकर राख हो गयी। हरि के नाम लेने वाले को भय कहाँ है “जपता कुतो भयं सर्वपापशमनैकभेषजं पश्य। तात मम गात्रासन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना।”। अग्नि से बाहर आकर उसने पिता को प्रणाम किया

पद 21। हिरण्यकशिपु आग बबूला हो “वामे हाथ से बच्चे को धर दाहिने में तलवार लिया। दुष्ट प्रकृति के वस में होकर मारन को तैयार भया।। अरे मूढ़ तुम हमें बताओ रक्षक कहाँ तुम्हारा है। अभी तत्क्षण हमरे कर से आया काल तुम्हारा है।। सुनि पित वचन विहसि बोला सुन पिता वेद अस कहता है। ओत प्रोत पट तन्तु रहतसम रक्षक सबमहँ बसता है।। अरे दुष्ट अस क्यों कहता तुम जो वह सब में बसता है। तो हमरे सन्मुख यह खम्भे से क्यों नहीं निकलता है।। विधि सनकादि जन प्रह्लाद वचन को सत्य बनाने को। निज गुण जन रक्षा को सब विधि से सब को दशानि को।। सन सन सन सन तड़ तड़ाक तड़ कोटि बज्रसम ठनकाया। नर तनु नाहर मुख कराल कर के खम्भे को दरकाया।। चमक धमक लख के सुनकर सब अति आकुल हो भागन का नेत्र मूँद दोड़ कर्ण छिद्र में अंगुल है कितने जन का।। दिवस निसा संधी में हरि झट हिरण्यकशिपु को धर पाया। द्वारे

बैठ चार नखन से बीच उदर को चरकाया । । हरि के विकट रूप लख के सब देवन गण अति घवराया । विनय प्रार्थना कर पुनि सब भी लक्ष्मी को बुलवाया । । सो अपूर्व वह द्विविध भाव अस द्विविध रूप लखि चकित भई । दया प्रेम अस क्रोध द्वय यह देखहीं नहीं निकट गई । । बुलवाई प्रह्लाद भक्त को कही अमृतमयी वाणी सो तुमरे हित यह रूप धारयो हरि और न कछु उर आनी सो । । ”

पद 22 । प्रह्लाद की स्तुति “ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनिन जेहि हृदय सतोगुण बसता है । । सदा करत गुणगातेन उदधि को त्रुटि को कह नहीं सकते हैं । । अहो नाथ मैं दैत्य वंश हो कर कैसे कह सकते हैं । प्रभु निजगुण अधीन सदा ही जन मन में नित बसते हैं । । धन जन रूप तेज बल पौरुष बुध प्रभाव तव श्रुत जो है । द्वादश गुण युत भक्तिहीन द्विज से उत्तम स्वमयो जो है । । माता पिता स्वजन राजा सब दैव जहाँ लागि नाते हैं । जन्म मरण निश दिन अनेक दुख से कबहीं नहीं बचते हैं । । पुनि प्रभु लै प्रह्लाद गोद में शिर पर कर धर पूछत हैं । मन माना वर माँग पुत्र तुम जो जो मन मँह बसते हैं । । चाहत नहीं वरदान भक्तवर पूर्णकाम कछु नहीं चाहते । सो प्रभु परम प्रेम वस होकर माँग माँग वर ही कहते । । प्रभु माँगौं इच्छा कछु ही नहीं काम बीज नहीं मन उपजै । पिता नर्कगामी प्रभु हो नहीं तव चरणन नवरति उपजै । । जो प्रभु हस्त कमल कबहुँ नहीं शिव चतुरानन शिरन परयो । अस पवित्रतम भयो तात अपना एकइस लै तार दियो । सो प्रभु दयावश होकर मोरे शिर पर आनि धरयो । । ”

पद 23 । पिता के लिये प्रार्थना सुनकर भगवान ने कहा “अन्य जन्म तीन कुलों को तुम भवसागर पार कियो । हमरे तुम्हरे गुणगण को जो नित्य नेम से गावेगा । सो नर विन प्रयास यह दुस्तर तर मम धाम सिधावेगा । । पितृ कर किया करहु सब विधि तुम अरू सिंहासन ग्रहण करो । प्रजा सबन के पालन करते पुनि मम पद को ध्यान धरो । । ”

पद 24 । “माशुच पद जेहि जान लिया तेहि सोचब का । भगवत भयेउ उपाय भला तब शौचब का । । मन्त्र युगल माला युग जा के, युगल भावना मन बश ताके, युगल चरण के ध्यान किया तब सोचब का । । जाके ऊर्ध्वपुण्ड्र शिर शोभे, ताके लखि भगवत मन मोहे, जाये चतुर्भुज हृदय वशे तेहि शोचब का । । मन्त्र रत्न जेहि जपत निरन्तर, तेहि भगवत से नहिं कछु अन्तर, यह श्रुति सन्त पुराण कहै तब शोचब का । । लक्ष्मी माता की दृष्टितल, हो करके न भुलल कबहुँ पल, भये भगवत के प्रेम विषय तब शौचब का । । ”

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि.....

(श्री स्वामी जी की पुस्तकें भाग 3)

10 मित्र सुदामा कृष्ण

यह २६ पृष्ठ की पुस्तक है। स्वामीजी महाराज ने प्रारम्भ के 'दोशब्द' में कहा है कि भक्तों के आग्रह पर सुदामाजी पर पदरच कर उन्हें देता था। पदों की संख्या बढ़ने पर इसे पुस्तिका रूप में छपवाना पड़ा।

(सरौती से जुड़े समर्पित वैष्णवों से ऐसा ज्ञात हुआ है कि 'मित्र सुदामा कृष्ण' स्वामीजी महाराज की सबसे पहली पुस्तक है और संभवतः यह ई 1950 में पहली बार छपी। वर्तमान सार पहले संस्करण पर आधारित है।)

पुस्तक का प्रारम्भ श्रीमद्भागवत स्कन्ध 10 अध्याय 80 केशलोक 6 से 11 तक के उद्धरण से हुआ है जिसमें सुदामाजी के परिचय के अतिरिक्त उनसे उनकी पत्नी द्वारा अपनी गरीबी से त्राण पाने हेतु भगवान श्रीकृष्ण से मिलने जाने के प्रस्ताव का उल्लेख है। (यह तब का प्रसंग है जब राज परीक्षित के पूछने पर शुकदेव जी भक्त प्रवर सुदामा जी का परिचय देते हैं।)

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणः ब्रह्मवित्तमः । विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः । भा 10 । 80 । 6

यदृच्छोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी । तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षाला च तथाविधा । 7

पतिव्रता पतिं प्राह स्लायता वदनेन सा । दरिद्रा सीदमाना स वेपमानाभिगम्य च । 8

मनु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षात् श्रियः पतिः । ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभः । 9

तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् । दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने । 10

आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । स्मरतः पादकमलमात्मनमपि यच्छति..... 11

पुस्तक का पहला पद उपर्युक्त भागवत के श्लोकों का सरस अनुवाद है। पत्नी सुशीला के मनोभाव का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि अत्यंत घोर गरीबी के बावजूद भी सुदामाजी भगवत चिंतनमें लीन रहते हैं परन्तु सुशीला पत्नीधर्म के पालन में अपने को असहाय पाती है क्योंकि पति एवं बच्चों को पर्याप्त भोजन नहीं जुटा पाती है। सोचती है भगवान कृष्ण इनके मित्र हैं और अगर ये उनसे द्वारिका जाकर मिलें तो गरीबी से कुछ छुटकारा मिल सकती है।

एक विप्र अति शांत जितेन्द्रिय विषय विरागी। यथा लाभ संतोष गृही भगवद अनुरागी॥

नाम कुचैल सखा हरि के प्यारे बड़ भागी। नातनु पोषक कृषित देहदम्पति समआगी॥

सती सुशीला के मन में चिंता यह आई। धनहीना ना बनत कछुक पति की सेवकाई॥

काँपति डोलति सो एक समय सुहावन पायी। आई पतिडिग कहती बालमिस बात सुहाई॥

सुशीला पति से प्रकट सुना कर कहती है।

प्रभु मोरे छोटे छोटे बचवन भूख रोवें। तिनकँह दऊँ हम कैसे समझाऊँ जी॥

तोर मित श्रीनिवास ब्राह्मण से प्यार करें। बसँ भगवान तह द्वारिका में जाऊँ जी॥

हरि हैं शरण मोरे दीनन के सन्तन के। बिना मांगे देत मोरकहे पतिआऊँ जी॥

सुमिरे से चरणकमल देहो देहि तेहि। जाहु मोरे स्वामी जनि तनिको लजाउ जी॥

प्रभु दीनबन्धु तोर दीनता निहारते ही। अवश्य द्रवहि ऐसे उनको स्वभाउजी॥

लाज और संकोच छोड़ हमरो कहल करु। स्वामी मोरे जाहु मोरे मत अलसाउ जी॥

सुनकर सुदामाजी सोचते हैं कि सचमुच पत्नी को धन का लोभ हो गया है परन्तु यह अच्छा नहीं है। वे बोलते हैं :

प्रिय भली बात सच कहती, परन्तु मन में नहीं जंचती।

स्वामी से याचन उचित नहीं, भले अतिदुःख सहँ सबहि।

सुशीला मन में पति की बात को उचित कहती है परन्तु सोचती है आर्तभक्त भी तो भक्त ही हैं। कह उठती है :

प्राणपति द्रौपदी अकुलाई, हरि को वह रोकर बुलाई।

बढ़ा दीन्ह पट को यदुराई, दिखा दीन्ह अपनी प्रभुताई।

सुदामाजी कहते हैं अवला तो अवला ही है, द्रौपदी भी तो अवला ही थी। सच्चे भक्त प्रभु पर भार नहीं होते।

कयोधव अग्नि में पड़ के, सो न पुकारा तौ हरि को।

रंतिदेव ने तन छोड़ा, प्रभु पर भार न तौ छोड़ा॥

सुशीला ने कहा माना कि उन लोगों ने कुछ नहीं माँगा परन्तु भगवान एवं भक्त में दुराव कैसा? हृदय खोल कर रख दें।

स्वामी किये सभी चोरी, कर दी रक्षक रखवारी।

हमारी इच्छा थी सारी, सो मैं कर दी अगवारी॥

सुदामाजी भगवान से मिलने पर कुछ उपहार देने की बात करते हैं। सुशीला भगवान को अन्तर्यामी बताते हुए उपहार के लिए प्रयास करती है।

प्राणपति भुवन को भरते, सो प्रभु हैं पूर्ण न कुछ चहते।

तथापि हूँ यत्न करती, लोकपति दया से जो लहती।

परोसिन पास करी पैसार, मुट्ठी ही मिली चपुटक चार।

लै बांधीआँचल पटफार, सुशीला बड़ी प्रेम उद्गार।

सुदामाजी उपहार का मिलना शुभशकुन मानते हैं तथा भगवान का दर्शन होना निश्चित मानते हैं। पत्नी उन्हें प्रातः द्वार से विदा करती है।

नारी कुचैल को भेज रही, मधुरी बतियाँ कहते कहते।

वह मुट्ठी चारचवेन दई, कर विप्र लिए हँसते हँसते।

पुनि बाभन नित्य क्रिया करके, मग लिन्ह रवि उगते उगते।

वह दीन दशा को न मानतु हैं, हरि के रंग में रंगते रंगते।

पचके डुकचे भौहैं लटके, अरु साँस उठे कसते कसते । ।

द्वौ आँख धसी चमड़ी सिकुड़ी, धमनी बिखरी गलते गलते । ।

..... ।

अति धीर न पांव धरती , हरि पास चले डगते डगते । ।

हरि नाम पुकारे प्रेम पगे, मन मन भये डूबते डूबते । ।

हरि दीन दयालु कृपालु प्रभु, नन्दलाल कहैं हिलते हिलते । ।

जहँवां भगवान तेहिपुर में, पहुँचे दिन के ढलते ढलते । ।

द्वारिका पहुँच कर सुदामा जी वहाँ की शोभा देखते हुए मगन हो गये तथा गुनगुनाने लगे ।

धाम मनोहर सकल बने जी ।

कंचन किला बनी अति दुर्गम हीरन से हरिनाम बने जी । ।

चित्र मदनमोहन के देखत बंशी कर औ सखा सुने जी । ।

ले हरि गोप बाल के संग में सुन्दर मोर चकोर बबे जी । ।

दीन दयाल कृपाल नाम लख आरत हर भगवान बने जी । ।

राधा औ हरि चित्र सुहावन कहीं रुक्मिणी रमण बने जी । ।

तीन द्वार के ऊपर शोभत शंख चक्र औ तिलक बने जी । ।

कृष्ण नाम के ध्वजा पताका सब दिशि बन्दनवार तने जी । ।

कृष्ण कृष्ण सब पक्षिन बोले सुनते बने नहीं कहत बने जी । ।

सुदामा जी मुख्य द्वार पर आकर दरबार में जाने के लिये द्वारपाल से अनुरोध करते हैं । रखवार सब इनसे पूरा पता और नाम पूछते हैं । सुदामा जी ने अपने को भगवान कृष्ण का बालकाल का मित्र बताया परन्तु रखवार लोग इनसे पूरा पता बताने पर अड़े रहे । अंत में सुदामा जी ने प्रभु की दयालुता का वर्णन करते करते अपना नाम बताये ।

तिनके सब समान नहि भेद उन्हें कछु भाई । सबके कर उपकार जजन के औ अधिकाई । ।

सदा दीन पर दया करत लै हृदय लगाई । दैत यक्ष राक्षस तिय शूद्र ब्रजौ कस भाई । ।

खग मृग पापी जीव सबन से प्रेम बढ़ाई । मछुआ कोल किरात भील बनचर समुदाई । ।

..... । ।

जानत ना सुभाव हरि के जा देहु सुनाई । नाम सुदामा विप्र मिलन आये गुरु भाई । ।

द्वारपाल जाकर भगवान को बताता है : “विप्र एक द्वारे खड़े दर्शन को सुखधाम । आपन परिचय देत है कह्यो सुदामा नाम ।” भगवान सुनते ही दौड़ पड़े कि सचमुच हमारे बालसखा आये हैं ।

भाग सुदामा के कौन कहे, जेहि कृष्ण मिले गिरते परते । तन की सुधि भूलि गयी, हरि को मिलते आँखिया भरते भरते । ।

धाये मिले धर के कहते, अहो मित्र सुदामा कहो कितते । कर से धर लेइ चले गृह में, अति प्रेम सुधा पगते पगते । ।

अरू आसन दे हरि पूजत हैं, मग के श्रम को हरते हरते ।

रानियाँ पंखा झलती हैं और भगवान सुदामा जी का पैर धोते हैं । सुदामा जी मना करते हैं कि एक दरिद्र का पैर धोना त्रिलोकी नाथ को शोभा नहीं देता । भगवान कहते हैं संतो का पैर धोकर ही हम देवेश बने हैं ।

ये पद पंकज के परसे, हम देवन में प्रथमे पुजवाये । ये पदपंकज को हियधारी, सखे हमहु श्री वत्स कहाये । ।

..... ।

सुदामा जी के पैर की फटे हुए व्यार देख भगवान के आँखों से आँसू की झरी लग गयी ।
सोई देखत व्यार किया हरि कै, उर अंतर दीर्घ दरार महां । कपसैं सिसकैं नहीं बोल सकैं, वह ब्रण बड़ा जहँ मर्म तहां ।
अरू भये प्रभु के उर घोर व्यथा, सो बहावत नयनन धार महां । बही तप्त गिरै पद दार ही पै, सो ततारत बारंबार वहाँ ।
परे श्रीकृष्ण के हाथ तहाँ सहै सुखदात सुहात सुखात वहाँ ।

सुदामा जी को भगवान भोजन कराते हैं और रानियाँ पंगवा झलती हैं ।
भोजन के समान सबनि रानिन मिलि लाई । रुक्मिणी कालिन्दी सत्या लक्ष्मणा सुहाई ।
सतभामा भद्रा जामिनी बिन्दा चलीं आई । सबनि परस्पर मिलि मिल अतिसय नेम बढ़ाई ।
बहुत भौंति पकवान विविध विधि और मिठाई । कृष्ण भोगादिक पापर रावड़ी और मलाई ।

..... ।

नारायण अर्पित ले खातु सुदामा भाई । प्रेमाधिक कर धर झारी लै खड़े कन्हाई ।
भोजन के बाद पलंग पर बैठकर भगवान स्वयं उनका पांव दवाते हुए हाल चाल पूछते हैं ।
“हाल कहो भाई हाल कहो कैसे परिवार वरतते हैं ।
उन अपने छोटन बच्चों को क्या क्या उपदेश बताते हैं ।
वह रहते गुरुकुल वा घर में क्या क्या विद्या उन्हें पढ़ाते हैं । ”

सुदामा जी बताते हैं:

सुनो मित्र सब कुशल कहौं जैसे परिवार वरतते हैं । ना जीवन धन है जिनको वे राम भरोसे रहते हैं ।
सो सबके यल करै जो विश्वमात्र को भरते हैं । क्या चिन्ता करना उनको जो राम चरण चित धरते हैं । ।
भोजन छाजन की चिन्ता सब वैष्णव जन नहीं करते हैं । यथा लाभ संतोष सदा करके निर्द्वन्द विचरते हैं । ।
आठ वर्ष का बड़ा तनय उपनीत वेद वह पढ़ता है । दोनों शाम रोज रोज हिं सो सन्ध्या वंदन करता है । ।
भगवान मन ही मन सुशीला जी के शील व्यहार के बारे में सोचते हुए सुदामा जी पर नजर डालते हैं कि सुशीला
भाभी ने क्या सौगात भेजा है । भगवान कहते हैं
अपन हृदय की बात कहो भाई ।
बहुत दिनन पर मिले आज तुम क्यों नहीं आवत जात ।
आते समय पियादे भेजी है हमरे क्या सौगात कहो भाई ।
सुनि हरि बचन प्रेम रस साने मन ही मन मुसुकात कहो भाई ।
बार बार जब पूछन लागे कहते नहीं सकुचात कहो भाई ।
कहो मित्र क्यों बोलत नाहीं कंखिया क्यों अलगात कहो भाई ।
अपने से हरि गठरी लानी सब लखि हँसत ठठात कहो भाई ।
सुदामा जी की काँख में दबी हुई वस्तु को सहसा खींच लेते हैं । सब रानियां हसती हैं और सुदामा जी के संकोच
में पड़ जाते हैं । उनके संकोच को दूर करते हुए भगवान कहते हैं ।
जानत सुदामा भाई हमरो सुभाव तुम, एक दल तुलसी में जाउँ मैं विकाये जी ।
रोवत बुलाई वही दुपदी बेचारी तब, चीर के बढ़ाई हम भारत करायो जी ।
दूत सूत नाम से कहावे हम जगत में, बड़े बड़े तीर सही रथ को हंकाये जी ।

तोर अस मित एक तुंही मोर लोकहुं में, मोर घर आये तुम काहे को लजाये जी ।
 तोरे सम प्रेमी हैं के चहत चरण रज, हम तेहि लग तिन पीछे पीछे धाय जी ।
 मोर जन जब जब जैसे जैसे चाह तब, तैसे तैसे रूप धरि तहँ तहँ धाय जी ।
 अंबरीष ऋषि लागी दशो देह धरे हम, भगत के दुःख मोरा देख न सहाये जी ।
 सुदामा जी संकोच करते हुए कहते हैं यह आपके योग्य सौगात नहीं है । भगवान चूड़ा को देखकर कहते हैं ।
 सुनो सुदामा यार यह हम कहत विचार ।
 यह चूरा को थोर न मानो, जानो धनद भंडार यह हम कहत विचार ।
 सूख अन्न को तुच्छ न कहिये, है यह अमिय आगार यह हम कहत विचार ।
 प्रेम नेम से दिये दान को, करता हँ परम पियार यह हम कहत विचार ।
 भेजी प्रिया परम मित्राणी, जानत हृदय हमार यह हम कहत विचार ।
 हम दीनन को दीन हमारे, तेहि लग यह अवतार यह हम कहत विचार ।
 पत्र पुष्प फल जल आदर से, अर्पित करउँ अहार यह हम कहत विचार ।
 भगवान चूरा को खाने लगे और उसकी प्रशंसा करने लगे ।
 यशोदा न दई, देवकी न दई, अरू ब्राह्मण की घरनी न खबाई ।
 कोशिला न दई, द्रौपदी न दई, सबरी न दई, लक्ष्मी कहँ पाई ।
 यह ऐसन स्वाद के वस्तु कहूँ, हम जाय नहीं हम विदुरो घर खाई ।
 पहिले पहिले यही आजहिं जो, अरू चूरा हमें भवजाई खिलाई ।
 बारहि बार बखानि बखानि के, सुप्रेम से पावत हैं यदुराई ।
 जब भगवान चूड़ा खाने लगे और दूसरी मुट्ठी खाने ही वाले थे कि रूक्मिणी ने उन्हें बीच में ही टोकते हुए कहा ।
 खाने से पहले प्रभु आप दिये दो लोक ।
 दूसरी मुट्ठी जो लिये दयी रूक्मिणी रोक ।
 वनिता गण को पति से अपने कुछ भी कहना ना चाहिए । तौभी समय सुहावन को यों जाने देना ना चाहिये । ।
 थोरी विनती यह मेरी है सो मन दै सुनना चाहिये । स्वामी के प्रसाद जूठन सब पत्नी को मिलना चाहिये ।
 नाथ हुयी अविनय जो हमसे क्षमा उसे करना चाहिये ।
 भगवान तो रूक्मिणी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं ।
 पति सब से जब जब भूल हुई पत्नी सब राह बताई है । सचमुच यह चूरा लालच वश तुमरी यह सुधि भुलवाई है ।
 हम तो अति स्वादु चबेन को अति तृप्त तृप्त हो पाये हैं । पहले पहल आज तुम ऐसी यह नीति भली बताई है ।
 प्रिय ले लो प्रसाद चबेन को जो अमृत मयी यह आयी है । यह चूरा प्यारी का कहना तुमरे जो मन तरसाई है ।
 सुदामा जी भगवान के स्वभाव की मन ही मन प्रशंसा करते हैं ।
 भगवान विना अस कौन करै जन जीवन की जरनी न हरै ।
 यह शील उदार अपार कहाँ इनके विन कौन सुधार करै ।
 यह देव दयालु कृपालु महाँ इनके विन को भव पार करै ।
 हरि के पद पंकज से ही सदा सब दासन के सब काज सरै ।

जिनके मन में यह रूप बसै तिनको यह का जग जाल करै ।
 जन के अघ को मन में न धरै तिनको गुण हो सो खोज करै ।
 रात में भगवान एवं सुदामा जी आपस में संदीपन गुरु के समय का स्मरण करते हैं । भगवान कहते हैं :
 याद करो भाई याद करो वह काशी में जब पढ़ते थे ।
 आज्ञा गुरुआइन की पाकर लकड़ी लाने जो चलते थे ।
 जिस दिन आई आँधी पानी औ बादल घोर गरजते थे ।
 । ।
 अंगुली धर कर चलने से भी नहीं पहुँच तहँ अटके थे ।
 भोरे गुरु दयाल ले ले कर नाम पुकारत फिरते थे ।
 कहाँ सुदामा कृष्ण हमारा सभी लोगों से पूछते थे ।
 ।
 चौसठों कला दै शिष्यों से वे कुछ भी कभी न चहते थे ।
 एकेदिवस में दी शिक्षा सब जो संदीपन कहलाते थे ।
 सुदामा जी भगवान की प्रार्थना करते हैं और उनकी भेंट से संतुष्ट हो गये हैं यह बताते हुए सबेरे लौटने का
 अनुरोध करते हैं । प्रभु है आरत हर गोपाल शरण सब केरा । प्रभु दीनन के नाथ तु हित सागर के बेरा ।
 तुम ही हो सागर कल्याण गुणन सब केरा । तैसे विप्रन संत अकिंचन जन के चेरा ।
 अब भगवान कृपा कर करहु हृदय मम डेरा । नाथ हुआ संतोष चहैं अब चलन सबेरा ।
 सुदामा जी रात में सो जाते हैं परन्तु भगवान मित्र से जुदाई होने के विरह में रात भर करवट बदलते हुए बिताते
 हैं । प्रातः काल भगवान सुदामाजी और साथ ठहरने के लिये कहते हैं ।
 सुनहु बचन एक मोर ये सुदामा भाई ।
 कुछ दिन रहु भइया मोरे पुर द्वारिका में ।
 हमहु करब तोर सेवन ये सुदामा भाई ।
 कबहु न आये भाई जब से बिछुड़ले जी ।
 चलन चहत काहे भोरे ये सुदामा भाई । ।
 बहुत मनाने पर भी सुदामा जी रहने को तैयार न थे । भगवान उनकी विदाई करने स्वयं जाते हैं । आगे आगे
 सुदामा जी उनके पीछे भगवान और सबके पीछे पुरवासी जन । “भोरे ही भोर सुदामा चले जब बरबस रहन कहत
 यदुराई ।” सुदामा जी भगवान को लौटाने का प्रयास करते हैं परन्तु प्रेम विभोर भगवान लौटते नहीं हैं । बरबस
 सुदामा जी रुककर भगवान को लौटाते हैं परन्तु भगवान आँखों में आँसू भरकर कहते हैं ।
 मोरे संग लेहु न लगाय ये सुदामा भाई ।
 कठिन कठोर तोर भेलव करेजवा जी । केहि अपराधिये तू चले जाये ये सुदामा भाई ।
 हमहु चलब भइया आजु तोर संग ही जी । लेलहु चरण में लगाये ये सुदामा भाई ।
 झोरी पोथी ढोव तोर आसन बासन सब । तीन बेर देव नहाय ये सुदामा भाई ।
 झारू लै बहारू करिहैं जह ततु रहब जी । और देव चौका लगाये ये सुदामा भाई ।
 विदा होते होते भगवान एवं सुदामा वार वार गले मिलते हैं ।

अतिशय विह्वल प्रेम मग्न जब कृष्ण सुदामा मिलते हैं। गले गले मिलते मिलते वे हाथ परस्पर धरते हैं।
 दोनों जन का कंठ रुद्ध है ना मुख वचन निकलते हैं। अरु दो मित्रों के नेत्रों से झर झर आँसू झरते हैं।
 प्रेम समुद्र उमड़ने से मित्रों के गोते लुगते हैं। जो कहते आनन्द महा वह मित्र परस्पर डूवते हैं।
 इससे आगे और नहीं बस ब्रह्म जीव दो मिलते हैं। ज्ञानी जन जिसको चाहते सो सतत भक्तवर लहते हैं।
 सुदामा जी के चले जाने के बाद भगवान उदास मन ही मन गुनगुनाते हैं।
 मन लिए सुदामा जाय बरबस काह करूँ।
 चल गए मित्र हमार आज वह लेकर हृदय चुराय अब हम काह करूँ।
 उन बिनु सून सिंहासन आसन भवन न देखल जाय धीरज काह धरूँ।
 है नर यही पुर के वासी जो लावै मित्र घुमाय तेहि मैं प्यार करूँ।
 नयन नीर भरी गल बल बोलत हमरे कछु न सुहाय कउन उपाय करूँ।
 उधर सुदामा जी चले जा रहे हैं और मन ही मन सोच रहे हैं कि धन में दोष होने के ही कारण भगवान ने हमें
 उससे दूर रखा है। “बेटा बैरी बाप का स्त्री का पुरुष बलाय। दोष पंचदश जानि के धन न दिये यदुराय।”
 मन ही मन भगवान की महानता का बखान करते हैं।
 करत गुनगान चले मग में जी।
 मो सम क्षुद्र पुरुष कहें प्रभु जी प्रेम से गले लगे जी।
 थोरेहीं तुच्छ चबेनी सुखी अति आदर से लिये जी।
 स्वयं द्वारका नायक होकर महल से दौड़ मिले जी।
 बारहीं बार पुछत कुसलाई अतिशय प्रेम पगे जी।
 अतिशय दीन जानकरके भी कैसी सुकृपा किये जी।
 दीनबन्धु भगवान हमारे सब दुःख दूर किये जी।
 मगन मन सुदामाजी अपने नगर पहुंच जाते हैं तथा अपनी मड़ई के जगह पर महल देखते हैं तथा सोच में पड़
 जाते हैं।
 सुदामा जी ऐसो करत विचार।
 काह भई वह छोटी झोपड़िया कहाँ गये परिवार जी। ऐसो करत विचार।
।।

(पत्नी अटारी से सुदामा जी को देखकर सेविका भेजकर उन्हें बुलवाती है।)

पास बुलाई मंच बैठाई पग ले प्रेम पखार जी। ऐसो...

(पत्नी सुशीला पूछती है।)

पूछती कुशल मदन मोहन को काह किये सत्कार जी। ऐसो...

(सुदामा जी बताते हैं।)

सब सुख दिये द्वारीका नायक ऐसे कौन उदार जी। ऐसो...

थोर चबेन बहुत हरि मान्यो ऐसे कृपा अगार जी। ऐसो...

सो दयालु के कृपा मात्र से जन के होत उधार जी। ऐसो ...।

अपने जन के लालन पालन करन लिये अवतार जी। ऐसो...

सुशीला भगवान की कृपा की दुहाई देते हुए पति से वैभव के सुख भोग के लिये अभिप्रेरित करती है। सुदामा जी धन के पन्द्रह दोष से बचने को कहते हैं।

सुनो प्रिय एक बात सत्य निर्धन को जो धन आता है।

ताहि क्षुद्रता के कारण दोष पंचदश लाता है। श्रम चिंता भ्रम हिंसा औ बिनु कारण बैर कराता है।

चोरी झूठ दंभ मद सब में काम कोह उपजाता है। ईष्या भेद गर्ब लाकर यह अतिशय मोह बढ़ाता है।

सबसे ही विश्वास हटाकर अंत नरक ले जाता है।

(ऊपर के पदों में दर्शाये गये हैं धन के पन्द्रह दुर्गुण।)

निर्धनता ही कहीं भली जब हृदय दीन बन जाता है। दीनबन्धु का भक्त दीनता से ही प्रिय बन जाता है।

अर्थ अनर्थ सकल कारण ते ज्ञानी को न लुभाता है। फिर भी पात्र वही लक्ष्मी का जग में प्रिय बन जाता है।

सुशीला सुदामा जी से अपनी मान्यता बताती है कि प्रभु के कृपापात्र पर लक्ष्मी भी अनुकूल रहती हैं। एकाएक मड़ई से अटारी बनने के बारे में सुदामा जी से पूछने पर सुशीला बताती हैं कि रात में बच्चों के साथ चटाई पर लेटी थी क्षणभर के लिये आंग्र लगी कि किसी ने दो बार पुकारा। देखती हूँ कि पलंग पर बैठी हूँ। बच्चे सब पलंग पर सोये हैं। पास में दास दासी खड़े हैं। पूछने पर उन लोगों ने बताया कि ये सब भगवान ने आपके लिये दिया है आप इसे स्वीकार करें।

सुदामा जी भगवान की महिमा एवं उनके लिये “भक्त के हेतु कुछ भी अदेय नहीं” बताते हुए उनके चरणारविन्द के स्मरण से ही सबकुछ प्राप्त होने का बताते हैं “स्मरतः पादकमलमालनिमपि यच्छति।”। पुरवासी सुदामा जी की समृद्धि देखकर कहते हैं “अजब तेरी माया यदुराया। वह कुचैल के धन देखत ही धनद हूँ लजाया।” सुदामाजी सुशीला से कहते हैं कि धन का सदुपयोग दरिद्रों को बांटने में है तथा जो बचे वही खाने का है। सुशीला हर रोज बांटने का प्रबन्ध करती है। पुरवासी कहते हैं :

खजाना लुटावै हो सुदामा।

छारो सिंह पौर पर हलचल देश देश सुनि आवै। खजाना.....

दीन हीन के भीर न छूटे मनमाना निध पावै। खजाना...

पंडित ब्राह्मण भिक्षुक याचक झुंड झुंड मिलि आवै। खजाना...।

बड़ बड़ देश के सब जन नित नव मंगल गावै। खजाना...।

भोजन वस्त्र भूल मत जाना जो जहँवा तँह पावै। खजाना.....।

धन्य धन्य तुम धन्य सुदामा जै जै शब्द सुनावै। खजाना...।

11। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण।

मूल पुस्तक उपलब्ध होने पर सार संक्षेप प्रकाशित किया जायेगा। इसी पुस्तक का वृहत संस्करण “ऊर्ध्वपुण्ड्र विकास” नाम से वर्तमान में उपलब्ध है जो हुलासगंज से प्रकाशित है। इसमें तिलक क्यों एवं कैसे लगाने के वर्णन के साथ नित्य स्वयं की पूजा तथा भगवान की पूजा करने की सभी विधियों का मंत्रों के साथ वर्णन है।

12 | नाम माहात्म्य |

प्रस्तुत सार संक्षेप घनश्याम प्रेस पटना से प्रकाशित संस्करण पर आधारित है। इसमें कुल 36 पृष्ठ हैं तथा प्रारंभ के 16 पृष्ठों में 'भगवद्गुण अर्थानुसन्धान' का वर्णन है। पृष्ठ 17 से 28 तक 'भगवद्गुण गौरवता' कुल 80 लयदार पदों में प्रस्तुत किये गये हैं। बाकी पृष्ठों में 'सृष्टि कैसी हुई और उसका प्रयोजन क्या है' का सुगम विवेचन है। पुस्तक के भीतर सर्वप्रथम वेंकटेश भगवान के सुन्दर चित्र का दर्शन होता है।

भगवद् अर्थानुसन्धान

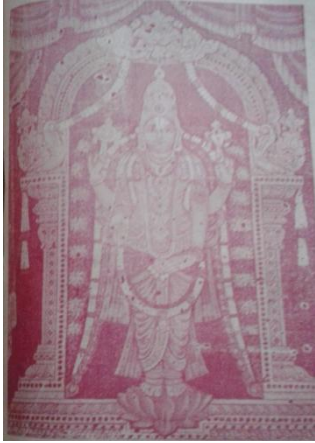
भगवान पर ध्यान करने की निम्नांकित विधियाँ हैं।

स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं या गुहाशयम्। प्रेक्षणीये हितं ध्यायेत् शुद्धभावेन चेतसा। 1 | बैठते चलते सोते हुए सभी अवस्थाओं में भगवान पर शुद्ध मन से ध्यान करना चाहिए।

अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोक नमस्कृतम्। सतं वयसि कैशोरे भक्त्यानुग्रह कातरम्। 2 | भगवान का स्वरूप सर्वदा किशोरावस्था का ही रहता है।

स्मयमानं अभिध्यायत् सानुरागावलोकनम्। नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम्। 3 | भगवान मुसकुराते हुए भक्तों को निहारते हैं।

संचिन्तये भगवतश्चरणारविन्दं वज्रध्वजांकुश सरोरुह लाञ्छनाढयम्।



उत्तुङ्गरक्त विलसन्मुख चकवाले ज्योत्सनाभिराहतमहद् हृदयान्धकारम्। 4 | भगवान के चरणकमल का वज्र भक्तों के पाप का छेदन करता है। अंकुश से भक्त के चंचल मन रूपी हाथी को नियंत्रण में रखते हैं। संसार रूपी शत्रु से बचाकर जीव को अपने पास लाते हैं उसी विजय का प्रतीक ध्वज है। कमल भक्तों को लुभाकर चरण में लगाता है। चरण की दसों अंगुलियों की ज्योति से जैसे चन्द्रमा पाप मुक्त हो जाता है उसी तरह जीव के हृदय के अंधकार दूर हो जाते हैं। अतः भगवान के चरणारविन्द का ध्यान जीव के लिये जीविका का एक मात्र स्रोत है।

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्।

ध्यातुर्मनःशमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम्। 5 | भगवान के चरण कमल के जल को शिर पर धारण करने के कारण शिव जी का कल्याण स्वरूप बना नहीं तो वे श्मशान के भस्म धारण करने के कारण अपवित्र माने जाते थे। भगवान का चरणारविन्द का ध्यान मन के मैल को धोता है।

भक्त्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः संचिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम्।

यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम्। 6 | भगवान के गाल की शोभा कान के कुण्डल तथा सुन्दर नाक से बढ़ जाती है। उनके कमल समान मुख का ध्यान भक्तों पर उनकी कृपा से ही होती है।

तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोरं तापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः।

स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम्। 7 | भगवान के विहसते मुख का हृदय में ध्यान करने से उनकी कृपा दृष्टि भक्तों पर पड़ती है एवं तीनों दैविक दैहिक एवं भौतिक ताप यानी भय का नाश हो जाता है।

हासं हरेरवनिताखिललोकीव्रं शोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम्।

संमोहनाय रचितं निजमाययास्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य। 8 | भगवान के मुसकान भरे मुखमंडल का ध्यान संसार के शोक से रोते हुए जीवों के आँसू से बने महासागर को सुखा डालता है। भगवान का हँसने का कारण भी जीवों का अंततः कल्याण ही है।

ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठ भासारूणायिततनु द्विजकुन्दपंक्तिम्।

ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितास्य विष्णोभक्तयार्द्रयापितमना न पृथग्दृक्षेत्। 9 | सुन्दर दाँतों से युक्त मुखमंडल के लाल होठों पर विखरते मुस्कान का ध्यान भक्त के लिये परम सुखदायक है।

तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्। नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्। 10 | भा 11 | 14 | 43 |

चलते बैठते सोते सभी अवस्थाओं में शुद्ध मन से भगवान का ध्यान करना चाहिए। “शुचौ देशे प्रतिष्ठाय...। गी 6।11” में निश्चित आसन में ध्यान की बात है। मूल भाव है कि शुद्ध मन से भगवान पर मन को लगाये रखने की आवश्यकता है। “अन्तर्बहिःश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः” “अणोरणीयान्महतो महीयान्” “यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह” यानी भगवान का जब इतना व्यापक स्वरूप है तब सागर को गागर में कैसे भरा जाय। भगवान को “सहस्रशीर्षा पुरुषः...पुरुष एवेदं सर्वं.....वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं...पुरुष सूक्त” यानी पुरुषाकार भी बताया है। अतः भगवान के मूर्तिमान स्वरूप पर ध्यान करना सुगम एवं युक्तिसंगत है। मूर्ति का स्वरूप पर कहा है “शतं वयसि कैशोरे शंखचक्रगदाधरम्” यानी शंख चक्र गदा धारण किये हुए प्रभु का स्वरूप सर्वदा किशोरावस्था की रहती है। भगवान के ध्यान का स्थान हृदय है “ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। गी 18।61।” ऊपर्युक्त श्लोकों के ‘भक्त्यानुग्रह’ ‘भक्त्यानुकम्पितधियः’ ‘विपुल प्रसादम्’ का भाव है कि भगवान पर मन लगाना भी उनकी कृपा से ही होती है। भागवत स्कंध 11 अध्याय 14 श्लोक 43 में भगवान श्रीकृष्ण उद्धव जी को कहते हैं कि हमारे सभी अंगों पर से मन को हटा कर हमारे विहसते मुखमंडल पर ही ध्यान करो। विभिन्न प्रसंगों में भगवान की मुस्कान में पृथक पृथक रहस्य छिपे होते हैं परन्तु सबके मूल में चेतन की अज्ञता ही उनकी हँसी का कारण है। अनेकों उदाहरण से इस का सुन्दर विवेचन इस पुस्तक की अपनी विशेषता है। 1। अनादिकाल से जीव दुर्जनस्वभाव वाला होकर अनेकों जन्म में भटकते रहता है तब भगवान के मन में बहुत दुःख होता है परन्तु जब वह कातर मन से भगवान के सामने पहुँचता है तो भगवान उसको देखकर प्रसन्न होते हैं तथा हँसते हैं। वह पुनः पुत्र धनादि की कामना करता है तब फिर हँसते हैं “गुंजा गहइ परसमनि खोइ। उ 43।2।” जब वह अन्य देवताओं की शरण में जाता है तब उसकी अज्ञानता पर हँसते हैं कि “मोक्षयिष्यामि मा शुचः। गी 18।66।” के आश्वासन पर भी जहाँ तहाँ दौड़ता रहता है।

2। गोपियाँ भगवान को विहसते देखना चाहती हैं “प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणं...। भा 31।10।” भगवान उनके मन के अनुसार “तासाम आविर्भूत शौरिः स्मयमान मुखाम्बुजः। भा 32।2।”

3। जब अर्जुन “न योत्स्य इति गोविन्द...। गी 2।9।” तब भगवान ने उनकी गलती पर हँसते हुए कहा “तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत। गी 2।10।” क्योंकि भगवान मन ही मन सोचते हैं कि इसी के वंशज में भरत जैसे राजा हुए जो मृगी में मन लगाने से उसी योनि में जन्मे परन्तु जड़भरत बनकर रहूँगण को ज्ञान भी दिये। यह आनेवाली पीढ़ी में वर्णशंकर की आशंका रखता है परन्तु परीक्षित जैसे भक्त इसी कुल में आने वाले हैं।

4। काकभुशुण्डी को “प्राकृत शिशु इव लीला देखि भयउ अति मोह। उ 77।” मोह हुआ तो रामजी ने अपना ऐश्वर्य उन्हें दिखा दिया तथा “मोहि विलोकि राम मुसुकाहीं। उ 79।1।”

5। कौशल्या जी को “देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दिन्ह मधुर मुसकानी। बा 200।4।” इष्टदेव एवं रामजी में द्वंद भाव मिटाने के लिये रामजी पकवान खाये तथा सोये भी रहे और परेशान देखकर मुसकुराते हुए “देखरावा मातहि निजहिं अद्भुत रूप अखंड। बा 201।”

6। श्रृंगवेरपुर में निषादराज की भूल पर हँसे हैं तथा इसमें अन्यान्य भाव भी हैं यानी भक्त एवं भगवान में कुछ भी अन्तर नहीं है “सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। बिहँसे करुणा अयन चितय जानकी लखन तन। अयो 100।”

7। नारद जी को जब विवाह करने की आतुरता हुई तब उन्होंने भगवान का स्मरण किया। भगवान के आने पर “आपन रूप देहु प्रभु मोहि। वा 131।3।” जब उनका सुन्दर स्वरूप मांगा तब भगवान उनकी भूल पर हँसे “हिय हँसि बोले दीनदयाला। वा 131।4।”

8। सुग्रीव राजमद में भगवान का काम भूल गये। जब लक्ष्मण जी उनको भगवान के पास ले आये तब वे लज्जित होकर विनती करने लगे और भगवान ने हँस कर उनसे कहा “तब रघुपति बोले मुसुकाई। कि 20।4।”

9। विभीषण रावण को त्याग कर रामजी के पास आते हैं परन्तु बन्दर समूह उन पर विश्वास नहीं करता है परन्तु भगवान मुसकराते हुए बन्दरों को कहकर उन्हें बुलवाते हैं “उभय भौंति तेहि आनहु हँसि कहि कृपानिधान। सु 44।”

10। राजा जनक भगवान को देखकर मुग्ध हो गये “इनही विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। वा 215।3।” विश्वामित्र जी के परिचय देने पर रामजी मुसकराते हैं “जे प्रिय सबहि जहाँ लगी प्राणी। मन मुसकाही राम सुनि बाणी। वा 215।4।” जनक जी ने रामजी एवं ब्रह्म में अन्तर देखा परन्तु विश्वामित्र जी ने दोनों में समानता देखी और रामजी इसीलिये मुसकुराये।

11। सामने प्रशंसा सुनकर बड़े लोग निन्दा की तरह मानते हैं। जनकपुर में उषा काल का समय है। रामजी पूर्व दिशा की लालिमा लक्ष्मण जी को देखने कहते हैं। लक्ष्मण जी इसे शुभ सकुन का संकेत करते हैं कि रामजी द्वारा धनुष भंग होगा। अन्य राजा लोग श्रीहीन होकर वापस जायेंगे। लक्ष्मण जी ने भगवान की प्रशंसा की परन्तु भगवान को अच्छा नहीं लगा इसलिये लक्ष्मण की भूल पर मुसकुराये “बन्धु बचन सुनि प्रभु मुसकाने। वा 238।4।”

12। परशुराम जी को कुपित देखकर उनकी भूल पर रामजी मुसकुराये कि इनको स्वरूप का भी ज्ञान नहीं है “भृगुपति कहत कुठार उठाये। मन मुसकाही राम सिर नाये। वा 280।2।

13। “पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे राम सुजान। लं 12। चंद्रमा के हृदय में रामजी की श्यामता की स्थिति है। हनुमान जी की ऐसी उक्ति सुन कर कि चन्द्रमा उनका परम भक्त है भगवान प्रसन्न होकर मुसकुराये।

14। सागर किनारे भगवान सागर से रास्ता मांगने की तैयारी कर रहे हैं परन्तु लक्ष्मण जी ने मना किया और उनकी आकुलता पर भगवान हँसे “सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेइ करब धरहु मन धीरा। सु 50।3।

15। सीताजी जयमाल के समय भगवान के चरण छूने से डरती हैं कि उनके हाथ की अंगूठी का पत्थर कहीं भगवान के चरण स्पर्श से नारी न बन जाये। भगवान उनकी अज्ञता पर मुसकुराते हैं कि अंगूठी का पत्थर कोई शापित पत्थर थोड़े था “गौतमतिय गति सुरति करी नहिं परसत पद पानि। मन बिहँसे रघुबंसमनी प्रीति अलौकिक जानि। वा 265।

16। सागर प्रार्थना करते रहने पर रामजी से बोला तक नहीं परन्तु धनुषबाण मांगने पर “प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। सु 58।4।” बोला तब भगवान उसकी अज्ञता पर मुसकाये “सुनत विनीत वचन अति कह कृपाल मुसकाय। सु 59।”

17। रावण के दरवार से लौटने पर अंगद जी पर कृपा करते हुए रामजी मुसकुराये “अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपालु खरारी। लं 37।2।”

18। अशोकवाटिका से सीता जी का रामजी के पास पधारने का प्रसंग है “देखहीं कपि जननी की नाई। बिहँसि कहा रघुवीर गोसाई। लं 107।6।” कुछ बन्दर चाहते थे कि सीता जी को कोई देखे नहीं। इनकी भूल पर भगवान हँसे कि जानकी जी तो जगतमाता हैं तब उनके लिये पर्दा कैसा।

19। “मनि मुख मेलि डार कपि देहीं...। हँसत राम श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता। उ 116।4।” बन्दर लोग मणियों को सुन्दर फल समझ कर मुख में डाल रहे थे परन्तु पत्थर समझने पर उगल दिया। रामजी उनकी अज्ञता पर हँसते हैं।

भगवद् गुण गौरवता :

इस भाग में 80 लयदार पद हैं। स्थानाभाव से सबों का समावेश संभव नहीं प्रतीत होता है। मूल पुस्तक का अवलोकन करना चाहिए।

भगवद् गुण गान से सम्बन्धित भक्त की स्थिति को प्रदर्शन करने वाली मानस की चौपाई से इसका शुभारम्भ हुआ है।

भगवान के अनन्त गुण हैं। कुछ ज्ञात गुणों को स्वामी जी महाराज ने दृष्टान्त के साथ पदों में बाँधकर इस पुस्तक को गागर में सागर सा बना दिया है। जिन गुणों का समावेश पदों में हुआ है उनमें से कुछेक हैं : करुणा वशिता पावनता उदारता सुशीलता दीनबन्धुता कृतज्ञता निर्मलता पूर्णता निर्भिकता सुलभ्यता वत्सल्यता वदान्यता कृतिता स्थिरता चातुरता धैर्यता मधुरता समता शूरता शरण्यता विज्ञाता प्रेरकता सत्यप्रतिज्ञता आदि। अंतिम पद में ब्रह्मसूत्र से “तद्गुणसारत्वात् तदव्यपदेशः प्राज्ञवत्। ब सू 2।3।29।” से बुद्धि आदि गुण के द्वारा ब्रह्म एवं जीव के स्वरूपज्ञान के साथ गुणों की विभुता का संकेत किया गया है।

मम गुण गावत पुलक शरीरा । गदगद गिरा नयन बह नरि। अर 15।4।

अस सज्जन मम उर बस कैसे लोभी हृदय बसत धन जैसे।। सु 47।4।

जन तुमरे गुण गावै श्रीपति श्रुति तुम्हरे गुण गावै। टेक ।

अतिशय कोमल हृदय अधिक सो करुणा को उपजावै। जन के महाघोर अपराधों को सब क्षमा करावै। 1।

सुन्दरता भगवान आपकी मोहन नाम धरावै। अति अभिमानी मनमथ हूँ को मनमथ कर दिखलावै। 2।

वसिता गुण माखन मिसरी मिस घर घर नाच नचावै। तब माता कर से धरवाके ऊखल में बंधवावै। 3।

खोल न सकत कहूँ अपने कर अतिशय भय उपजावै। चोरी करवावै धरवावै औ अजसी बनवावै। 4।

पावनता भगवान आपकी पतित पवित्र बनावै। गौतम तिय निषाद गनिका मृग सवरी से पुजवावै। 5।

अति उदारता दारिद्र्य गण को सर्वस दै सकुचावै। तथा सुशीला के घर बैठे ऋद्धि सिद्धि पहुँचावै। 6।

.....

गुणता जन गुण को गुन गुन कर सब अनन्त बनवावै। तब कर्तृत्व लोक सब रचकर के पल में दिखरावै। 11।

अति कृतज्ञता भालु कपिन की सन्तत ऋणी बनावै। लक्ष्मण से दूना कहवावै भरत ते अधिक बतावै। 13।

पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण ब्रह्म हो पूर्ण रहत श्रुति गावै। वाहकता भगवान नित्यकर योग क्षेम निवहावै। 16।

जन लग तब वह सुलभ्यता गुण वह खंभ फार दिखरावै। भक्त वचन सब सत्य करन को द्विविध रूप बनवावै। 20।

वत्सल्यता भक्तन के अघ सब तुमरे भोग बनावै। तब वदान्यता गुण अति सुन्दर अभय प्रदान करावै। 21।

तैसे ‘मा शुच’ पद को मुख से बार बार कहवावै। जन यह सुन्दर बचन सुनत सब चिन्ता दूर बहावै। 22।

रूप मधुर प्रिय वचन मधुरता मधुर मधुर रस लावै। समता घोर शत्रु पापी को निर्हेतुक अपनावै। 30।

लोक मात्र सब वस्तु मात्र सब काल मात्र जनवावै। तेहि से विज्ञाता कहके श्रुति बुध सर्वज्ञ कहावै। 34।

मंगल नाम रूप मंगल तब मंगल सब करवावै। आप वृहद् हो अन्य वृहत्कर सो ब्रह्मता कहावै। 38।

गुरुता ब्रह्मा को अंकित कर आपन मंत्र सुनावै। पंचरात्र से शास्त्र पढ़ाकर आचार्यत्व बतावै। 39।

उद्धव को हिमगिरि चलवावै गोपिन को कुहुँकावै। तब सुन्दर कल्याण गुणन में यह कठोरता आवै। 49।

जन्म मरण जग जरा व्याधि तिहुँ देह उपजावै। उद्धर्ता यह भवसागर से सहजहिँ पार करावै। 51।

अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष सब जाके जो मन भावै। नाथ देव तरु सम स्वभाव तव जन मन पूर्ण करावै। 53।
 प्रेरकता तब सकल पुण्य में बरबस आनि लगावै। ताते अति उपकार जनन के तव पग तर पहुँचावै। 55।
 भोक्ता भोग बनत मुक्तन लग नित्य सदा श्रुति गावै। अति आनन्द मयोभ्यासात्सो लिखकर व्यास बतावै। 58।
 नित्य मुक्त को एक ब्रह्म रस जो आनन्द करावै। अतः 'रसो वै रसः' अस कहकर जाको श्रुति अस गावै। 59।
 श्रोता भक्तन गुण सुनवावै लक्ष्मी से कहवावै। वाचकता भक्तन गुण तुमसे लक्ष्मी को सुनवावै। 61।
 भूमि पुष्प लतिका कपूर मृगमद में जो जहँ पावै। सो प्रभु तुमरे दिव्य देह से ले सुगन्ध छिटवावै। 63।
 भूतनाथ को जड़ता देकर तुमरे विजय दिलावै। शुद्धि बुद्धि देवन को देकर मोह दूर भगवावै। 69।
 कर्त्ता कर्म करण सम्बोधन सम्प्रदान कहलावै। अपादान सम्बन्ध आधार पुरान इसे बतलावै। 71।
 विश्वरूप अपना जो सो कहूँ कोई देख नहीं पावै। प्राकृत दिव्य संग दोनों प्रभु अर्जुन को परखावै। 72।
 तेहि मे महाकाल सम को लख हृदय कम्प उपजावै। अति व्याकुलता वश पारथ को चरण शरण गिर जावै। 73।
 कछु आश्रित कार्यापादक कछु सौकर्या कहलावै। कहत वेद कल्याण गुणन को सब भक्तन मन भावै। 74।
 वह गुण कवन नाथ तुमरे जो मृग पाछै दौड़ावै। जानत हूँ सीता पुछवावै जड़ से बात करावै। 75।
 हिमकर को माखन कहवावै पुनि तेहि लागि रूलावै। माता की गोदी में बैठे बहुविधि आर करावै। 76।
 पुतना से विषपान कराकर मिट्टि दवा करावै। प्रतिविम्बों से बात करावै माखन ताहि दिवावै। 77।
 गोपिन के लग से लुकवावै यवनों से भगवावै। यह गुण के कछु कहत बने नहिं कवन कोटि में जावै। 78।
 तव आगमन प्रयाण समय सो अति मानवता फावै। कोउ देखा कोउ सुना वेद अस तव चरित्र दरसावै। 79।
 सादर शेष गणेश सदा श्रुति नेति नेति कह गावै। 'तदगुणसारत्वात्' यह कहकर ब्रह्म सूत्र बतलावै। 80।

सृष्टि का प्रयोजन

सृष्टि की रचना प्रभु की इच्छा से होती है। प्रलय के समय स्थूल सूक्ष्म सभी प्रभु के उदर में शयन कर जाते हैं। प्रभु जीवों के कल्याण हेतु ही सृष्टि एवं प्रलय में संलग्न रहते हैं। ध्रुव प्रह्लाद जैसे भक्त हर सृष्टि प्रवाह में आते हैं। प्रभु उनके कल्याण के साथ अन्य जीवों के कल्याण करते रहते हैं। असंख्य क्षुद्र जीव तथा अधम मानव भी भगवान के नाम से मुक्त हो जाते हैं “किरातहूणान्ध पुलिन्द पुलकसा आभीर कडका यवनाः खसादयः। ये अन्ये च पापा यत् अपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः। भा 2।4।18।” “आभीर जमन किरात खस श्वपचादि अति अघ रूप जे। कहि नाम वारेक तेपि पावन होत राम नमामि ते। उ 129। छं। भगवान ने ज्ञान के सहारे भी कल्याण की बात कही है “बहवो ज्ञानतपसा पूताः मदभावम् आगताः। गी 4।10।”

जब भगवान स्वयं जीवों के उद्धार चाहते हैं तो इतने मुक्ति साधन की आवश्यकता क्या है। चौरास लाख योनियों में मानव देह ही सर्वश्रेष्ठ है “साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जे परलोक सँवारा। उ 42।4।” रामजी ने स्वयं प्रजा सब को यह बात बतायी है। मानव स्वभाव वश वासना में बंध जाता है और इससे छूटने के लिये साधन की आवश्यकता होती है। मानव शरीर ही धर्म का पालन कर सकता है तथा भगवान की शरणागति ले सकता है और साक्षात् भगवान का धाम बन जाता है “अंगुष्ठमात्रं रवितेजतुल्यं सदा जनानां हृदि सन्निविष्टः” यानी उसके हृदय में प्रभु सदा विराजते हैं। उसके माथे के तिलक में भी भगवान रहते हैं “उर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे। लक्ष्म्यासार्धं हृषीकेशो देवदेवो जनार्दनः।” इसीलिये शरणागति ही प्रधान मुक्ति का उपाय है “मामेव ये प्रपद्यन्ते

मायामेतां तरन्ति ते। गी 7।14।” शरणागति के बराबर यज्ञ दानादि कुछ भी नहीं। शुकदेव जी का वचन है “तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदो सुमङ्गलाः।क्षेमं न विन्दन्ति यदर्पणं विना तस्मै सुभद्र श्रवसे नमो नमः।भा 2।4।17।” यानी भगवान के समर्पण शरणागति के विना मंगल नहीं हो सकता। युग विशेष शरणागति का वाधक नहीं है। सत्ययुग में ध्रुव प्रह्लाद थे तो हिरण्यकशिपु का भी त्रास था। त्रेता में शवरी सुतीक्ष्ण भक्त हुए तो त्रैलोक्य कंटक रावण भी हुआ। कलियुग इसमें विशेष रूप से साधन सुलभ है “कलियुग सम युग आन नहीं जो नर कर विश्वास। गाइ राम गुन गान विमल भव तर विनहि प्रयास। उ 103।” कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुण्य होय नहीं पापा। उ 102।4।”

भगवान ने उद्धव जी के समान किसी को प्रिय नहीं माना “न मे प्रियतरः कश्चित् आत्मयोनिर्न शङ्करः।न सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा यथा भवान।भा 11।14।15।” यानी शंकर ब्रह्मा संकर्षण लक्ष्मी एवं अपनी आत्मा से भी उद्धव जी को अधिक प्रिय माने हैं।

दयालु प्रभु के सृष्टि का एकमात्र प्रयोजन यही है कि चाहे जिस तरह हो आत्मा को मुक्त किया जाय और जीव उनका शरणागत बन अपना उद्धार करे।

13।श्रीकृष्ण जन्मोत्सव।

भगवान श्रीकृष्ण के जन्माष्टमी की बधाई के अवसर पर श्री स्वामी जी महाराज द्वारा विरचित निम्नांकित पद बहुत ही लोकप्रिय हैं एवं सरौती हुलासगंज एवं मेहन्दिया के अतिरिक्त भक्तजन अपने गाँवों में भी बड़ी तन्मयता से इसकी प्रस्तुति करते हैं। स्वामी जी महाराज के हस्तलिखित इन पदों की पांडुलिपी संलग्न है। ई सन् 1953 की गीता प्रेस की वार्षिक डायरी पर पृष्ठ 208 से 211 तक ये पद स्वामी जी महाराज द्वारा रचकर लिखे गये थे। इन्हीं पदों के बीच डायरी के पृष्ठ 210 पर एक और पद मिला है जो दक्षिण भारत में श्रीरंगम से किसी कारणवश अनायास लौट जाने का संदेश देता है। यह पद भी यहाँ पद 6 के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

पद 1 :

धर्म के होत विनाश पाप जब घेरत ए।
तब सन्तदेव सब मिलिजुलि हरि के सब टेरत ए।
कृपासिन्धु भगवान सुनत दुःख जनकर ए।
प्रभु आवत दीनदयाल मनुज तन धर कर ए।
भादो की रजनी भयावनी अति दुःख दायिनी ए।
भये देवकी के सुवन सुहावन अति मनभावन ए।
अद्भुत रूप निहारती मन ही विचारती ए।
यह कृपा किये भगवान पतिहुँ समुझावती ए।
शंख चक्र अरु पदम गदा लिये शोभत ए।
सोई दिव्य प्रकाश विलोकत अति मन मोहत ए।
तनिक न पलक गिरावति विनय सुनावती ए।
प्रभु रूप सम्हारु भगवान कंस कहूँ जानव ए।
सुनत वचन भगवान विहंस मुख बोलत ए।
तुम जनि मन डरपहु कंस दल नासव ए।

पूर्व जन्म ब्रत सुतपा दुहुन मिलि कयेल तु ए ।
सोई वर परिपूरण करन तनय हम भये अब ए ।

पद 2 :

नन्द घर जन्मे कन्हाइ घर घर बाजे बधाइ जी । टेक ।
दुन्दुभी ताल शंख मृदंग धुनि सरस राग सहनाइ जी । घर घर बाजे...
दधि केशर मलि देत परस्पर गलियन की चमचाइ जी । घर घर बाजे...
गोप गोपी सब झुंड बांध के घर से चली सब धाइ जी । घर घर बाजे...
गावति गीत मनोहर सुन्दर दोउ कर ताल बजाइ जी । घर घर बाजे...
लाला लाख वर्ष लो जीवै कीरति कर अधिकाइ जी । घर घर बाजे...

पद 3 :

कृष्णा के लेके यशोदाजी मन रजना लाल ।
प्रेम न हृदये समात ए मन रजना लाल । 1
गोद राखि हलरावति बहुविधि आनन्द हृदये अपार ए मन रजना लाल । 2
बार बार लै चुम्बति लख मुख मनहि मनहि अग्रात ए मन रजना लाल । 3
भाग सराहत सब जसोदा के मिलि मिलि सब बृजनारि ए मन रजना लाल । 4
नन्द राए धन धन्य यशोदा धन यह बृज के भाग ए मन रजना लाल । 5
श्यामसुन्दर के देखन के लग भइ अति भीर दुआर ए मन रजना लाल । 6
चलु सखि देखन राजमहल में जसोदा जनि एक लाल ए मन रजना लाल । 7

पद 4 :

हम सब भइ बड़ भागिन ये मन रजना लाल । 1
कमलनयन दोउ सुन्दर राजै दरसक लख मनहि मन गाजै
मुख अरविन्द सुहावन ये मन रजना लाल । 2
दरसन लग ब्रह्मा तहँ आये पितु के जन्म भूमि मन भाए
जमुन भँवर सम सुन्दर ये मन रजना लाल । 3
कोउ गोपिन लिखि के त्रिण तोरे कोउ लखि के निज नयन ही मोरे
कोउ मनमग्न भुलात ये मन रजना लाल । 4
महाभीर राजा जी के द्वारे अधिक कोलाहल टरत न टारे
नहीं कोउ लख के अघात ये मन रजना लाल । 5

पद 5 :

राजा पुरोधा बुलावै, लगन सोंचवावै, गरह दिखवावै, समय शुभ कह करके । 1
पंडित समय अनुसार, लगन को सुधारा, गरह को बिचारा, बलकवा अनकरके । 2
इनका के पुतना सतइहें, जहर ले पिलइहें, सो पी के बचइहें, विषम विष पी करके । 3
बालक दुरजन शालक, गोद्विज पालक, धर्म सुचालक, गीता सुना करके । 4
अवगुन दो एक ए हैं, सखन संग लैहें, माखन को चुरैहें, गोपिन घर घुस करके । 5
कतहुँ गोपिन घर जैहें, कतहुँ पकरैहें, सो नाच नचैहें, मखन दिकरा करके । 6

दधिभाज फोरदेइहें, माखन ले परइहें, उखल में बंधइहें, सो अरजुन उबारे के। 7
पनिघट पर जमघट लगइहें, गयल रोक देइहें, गोपिन अनसइहें, गगरिया धर करके। 8
कालिहु के ढिग जैहें, सो काटन धैहें, ता ऊपर जैहें, नचनिया बनकरके । 9
सुरपति के भी भगा के, अपने पुजवा के, व्यंजन सब खा के, गोवरधन बन करके। 10
होगा सबन कर प्यारा, न काहु से न्यारा, जहां ले विचारा, सुनो राजन मन देके । 11

ई सन् 1953 की गीता प्रेस की वार्षिक डायरी पर पृष्ठ 208 से 211 तक श्रीकृष्ण जन्मोत्सव के पद स्वामी जी महाराज द्वारा रचकर लिखे गये थे। इन्हीं पदों के बीच डायरी के पृष्ठ 210 पर एक और पद मिला है जो दक्षिण भारत में श्रीरंगम एवं तिरुपति की यात्रा से सम्बन्धित है। यह पद भी यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

रंग श्रीवेंकटेश्वर गुण गन सुना मन इधर भी झुका मन उधर भी झुका।
रंग श्रीवेंकटेश्वर की यात्रा भइ मन इधर भी चला मन उधर भी चला।
रंग श्रीवेंकटेश्वर पुरी को लखा मन इधर भी लगा मन उधर भी लगा।
रंग श्रीवेंकटेश्वर के जन से मिले कुछ यहाँ भी रहा कुछ वहाँ भी रहा।
रंग वेंकटाद्रि के सन्तन मिले कुछ यहाँ पढ़ा कुछ वहाँ भी पढ़ा।
रंग वेंकटाद्रि में सुने औ गुने कुछ यहाँ रहा कुछ वहाँ करा।
श्रीस्वामी की एक पत्री मिली रंगपुर से चला आय चरणों लगा।

२०८

MONDAY 27 JULY

श्रावण कृष्ण १

:

सोमवार

:

सौर ११ श्रावण

सू० उ० ५।२१

:

२७ जुलाई

:

सू० अ० ६।३६

जो आदमी अपने कर्तव्य में डूबा रहता है वह विकार-वश हो ही नहीं सकता। इसकी फुर्सत कहां से पायेगा ?

पद्या ३

नन्द चर जन्मे कन्हा ३ जी चर चर वाजे वच्चा ३- (देखो)
 दुन्दुभी तालें मंदंग। शौरव धुनि, सरसराग सहना ३ जी धर
 दब्बि केशर मल्लिदेत परसपर, गलिअन की चमचा ३ जी०
 मोप गोपी सँभु उवाँध के, धर से चलीं लवचा ३ जी- चर चर०
 गावति गत मनो दुसुन्दर, देउिका ताल वच्चा ३ जी चर चर०
 लाला लाल वर्य लो जीवे, कीरति कर आधिवा ३ जी-
 चर चर वाजे वच्चा ३
 (मनरजना)

कृष्ण के लेके यशोदा जी मनरजना लाल, प्रेम न हृदये समात एम
 मोद रारि विलसति वहु विधि आनन्द हृदये अपार एमन० २
 वार वार लोचु भवति लख मुख, मनहिं मनहिं अगार एमन० ३
 भाग सराहत सव जसोदा के, मिलि रसवट जना रि एमनरजना ४
 नन्द रा एचन चन्ध यशोदा, चन यद्वट जके भाग एमन० ५
 श्याम सुन्दर के देखन के लग
 म ३ आति म पुवार एमनरजना लाल म ६

TUESDAY 28 JULY

२०६

श्रावण कृष्ण २

:

मंगलवार

:

सौर १२ श्रावण

सू० उ० ५।२१

:

२८ जुलाई

:

सू० अ० ६।३६

बहुमत के जोर से या तलवार के जोर से मिली हुई ताकत सच्ची ताकत नहीं है। दरअसल सच्चाई ही सच्ची ताकत है।

पुनः सखिदेवन राजा मदन में जो सो दाजनी एक लाल ये
मन राजनी लाल १ म सव म दम इ भा गिनी ये मन
न म ले न य न दो उ सुन्दर राजे, दर स क स ख मन ही मन
गाजे, मुख आ विन्द सु दा व न ये मन २
दर स न ल गो व द्वा त है आये, पितु के जन्म भूमि मन गाये
जामुन भै व र स म सुन्दर ये मन ३ को उ गोपिन लिखि के
त्रिप्रा तोरे, को उ लिखि के निज य न य ही मोरे
को उ मन म न भु ला त ये ४ म है भा राजा जी के द्वारे
अधिक को ला द ल र त न दोरे, नहि को उ ला व के
अन्धा त ये मन राजनी लाल ५।

आगे ८८२ - २११ में देखा

THURSDAY 30 JULY

२११

श्रावण कृष्ण ४

:

गुरुवार

:

सौर १४ श्रावण

सू० उ० ५१२२

:

३० जुलाई

:

सू० अ० ६१३८

हम धर्म की वृद्धि करें, ताकि जो स्वराज्य हम चाहते हैं, वह जल्दी आ जाय।

राजा पुरोधा बुलावे, लगान शौचवावे -
गारह दिखवावे, समय शुभ करके १
पंडित समय अनुसार, लगान को सुधारा -
गारह को विचार, बलक वा अनकरके २
इनको भुतना सतरे, जहर ले पिलरे -
सोपा को बचरे, विषम विषपीकरके ३
कोलाक दुरजन शानक, गोद्विजपालक -
कर्म सुचारक, गोता सुनाकरके ४
अवगुन को रकेरे, सखन संगालेरे -
मारवन को चुरेरे, गोपिना चरधुसकरके ५
कतहु गोपिन चरजेरे, कतहु पकरेरे -
सोना चनयेरे, मारवन दिवराचके ६
दक्षिण राज को रकेरे, मारवन ले पाररे -
उधन को बकरेरे, सो अरजुन उवाकरके ७
पनि चरम रजम चरनगररे, गायन को रकेरे ८
गोपिन अने सररे, गायन को रकेरे ९

उरपति के भीम गाँव, अपने पुजवा के, नये जन सपरवा के
गोवर्धनवन के

२१२

FRIDAY 31 JULY

श्रावण कृष्ण ५	:	शुक्रवार	:	सौर १५ श्रावण
सू० उ० ५।२३	:	३१ जुलाई	:	सू० अ० ६।३७

पुस्तकों में लिखा हुआ सबकुछ देववाक्य नहीं माना जा सकता।
जो सदाचार के खिलाफ है, अमानुषी है वह कहीं भी लिखा हो तो भी
न माना जाय।

आजाद-हिन्द-फौजकी स्थापना

होगा सवन्त करप्यारे, नदी से न्यारा, जहाँ लै विचार
सुनो राजन मन दे दे १०

14। संपत् में विपत् दीनता में राम।

श्री स्वामी जी द्वारा रचित इस पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय पं अम्बिकादत्त शर्मा सबजपुरा जयपुर अरवल को है। पहली बार ई 1957 में साधना प्रेस से छपी 26 पृष्ठ की पुस्तक के आधार पर सार संक्षेप प्रस्तुत है। प्रथम दो पृष्ठों में अम्बिकादत्त जी के दो शब्द हैं जिसमें गुरु परम्परा की कड़ी सर्वश्री यामुनाचार्य रामानुजाचार्य वरवरमुनि रंगदेशिक स्वामी परमहंस स्वामी तथा स्वामी परांकुशाचार्य जी का उल्लेख करते हुए कहा है कि “गुरोः प्रकाशत्वं शिष्यत्वं” के अनुकूल ही स्वामी जी ने वेदान्त की धारावत पुस्तकों के माध्यम से हम सबों को आप्लावित किया है। भगवान ही भक्तों की भलाई के लिये शास्त्ररूप में प्रकट होते हैं “प्रकाशयितुमात्मानं भक्तानां हित काम्यया। अवतीर्णो जगन्नाथः शास्त्ररूपेण वै प्रभुः।” आगे पृष्ठ 6 तक आमुख्य है जिसमें स्वामी जी द्वारा धन मद से दूर रहने का संकेत दिया गया है। अन्य विष से शरीर की हानि होती है परन्तु धन मद से आत्मा का नाश होता है। “तुम कह भरत कलंक यह हम सब कर उपदेश। अयोध्या 208।” अगर दशरथ जी धनराज न होते तो कैकयी भरत के लिये राज क्यों मांगती। धनमद से चूर ही इन्द्र ने गुरु वृहस्पति का अपमान किया था। बुद्धि ठिकाने आते ही उसने धनमद से दूर रहने का उपदेश किया। संचित या संचेय धन के झमेला से दूर रहने पर ही आत्मा को परमात्मज्ञान के अनुसंधान का अवसर मिलता है। श्रुति के कहे गये “अतो रसो वै रसः” सबसे सुखादु रस भगवान को चखने का मौका मिलता है। पृष्ठ 7 से 22 तक मुख्य विषयवस्तु का सम्यक वर्णन है। पृष्ठ 23 से 26 तक श्रीलोकाचार्य स्वामी द्वारा रचित तमिल पुस्तक “निगमन पडी” से संस्कृतअनुवाद द्वारा मूलमंत्र द्वयमंत्र एवं चरममंत्र के भाव समझाये गये हैं।

पुस्तक का प्रारम्भ में कहा गया है :

“विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः। विपद्विस्मरणं विष्णुं सम्पन्नारायण स्मृतिः।” भगवान का नाम स्मरण ही संपत्ति है तथा उनको भूले रहना विपत्ति है। इसकी व्याख्या भागवत के निम्नलिखित उद्धरणों में मिलते हैं।

“पुसां किलैकान्तधियां स्वकानाम् याः सम्पदो दिविभूमौ रसायाम्। न राति यदद्वेष उद्वेग आधिः मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः। भा 6।11।22।” भगवान अपनो भक्तों को उद्वेग कलह आदि के कारण सम्पत्ति नहीं प्रदान करते हैं।

“नित्यादितेन वितेन दुर्लभेनात्म मृत्युना। गृहापत्याप्त पशुभिः का प्रीतिः साधितश्चलैः। भा 11।3।19।” आत्मा का घातक एवं सतत पीड़ा देने वाले धन एवं परिवार से कुछ भी लाभ नहीं।

धन से मद आता है “श्रीमद बक न कीन्ह केहि। मानस उ का 70।” “.....धनमानमदान्विता। गी 16।17” “कौड़ी लागी लोभ बस करहिं बिप्र गुरुघात। मानस उ का 99।”

श्रीभाष्य में यह स्पष्ट किया गया है कि भगवान निर्हेतुक कृपा से जीवों के कल्याण हेतु ही सृष्टि करते हैं। भगवान द्वारा दिया गया दण्ड हमारे हित में होता है। “क्रोधोऽपि ते अनुग्रहः एष सम्मतः”।

“सुख दुःख समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। गी 2।38।” “अनुग्रहो यद् भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो। भा 10।73।9।”

राज्य से हाथ धोना भगवान की कृपा है। जरासंध के जेल मुक्त राजाओं ने भगवान से कहा “राज्यैश्वर्यमदोन्मुखो न श्रेयो विन्दते नृपः। त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः। भा 10।73।9।” यानी राज से मदोन्मत्त कल्याण नहीं प्राप्त करता। आपकी माया से नश्वर को अचल मान लेता है। “त एव कृष्णाद्य गभीर रहंसा दुरन्त वीर्येण विचालिताः

श्रियाः। कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया विनष्ट दर्पाश्चरणौ स्मरामते। भा 10।73।13।” यानी काल की गति नहीं टलती। श्रीहीन बनाये जाने पर हम आपके चरणों का स्मरण करते हैं। यह आपकी अकारण कृपा है। “अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्तुच्चैर्न मां स्मरेत्। इतिकारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात्। भा 10।81।20।” सुदामा जी यहाँ कहते हैं कि निर्धन को धन मतवाला बना देता है। भगवान ने कृपा करके हमें धन न दिया।

भागवत 11 स्कंध 23 अध्याय के श्लोक 17 से 21 तक में धन के कारण कलह अत्याचार आदि का उल्लेख है। “अर्थस्य साधने सिद्धे स्तेयं हिंसानृतं.....। तस्मादनर्थमर्थारण्यं श्रेयोऽर्थी दूरस्त्यजेत्।” यानी कल्याण चाहने वालों को दूर से ही धन का त्याग कर देना चाहिये। “असतः श्रीमदान्धस्यदारिद्र्यं परमञ्जनम्। भा 10।10।13।” यानी धनमद से अन्धे दुष्टों के लिये दरिद्रता उत्तम अंजन का काम करती है। दरिद्र देख सकता है कि अन्य भी उसके जैसा दुःखी दरिद्र हैं परन्तु धनी नहीं देखता। “नित्यंक्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाक्षिणः। इन्द्रियाण्यनु शुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते। भा 10।10।16।” यानी भूख के कारण दरिद्रों की देह एवं इन्द्रियां सूख जाती हैं जिससे विषय भोग तथा हिंसादि से वे दूर हो जाते हैं। “इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लंघित सत्पथः। भा 6।7।2।” यानी धन ऐश्वर्य के मद में इन्द्र ने मर्यादा का उल्लंघन किया तथा गुरु का अपमान किया।

भगवान ने कहा है जिस पर मैं कृपा करता हूँ उसका धन धीरे धीरे छीन लेता हूँ। निर्धन होने पर परिवार उसकी उपेक्षा करते हैं “यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्यते तद्धनं शनैः। भा 10।88।8।” अर्जुन के मन में चिन्ता हुई राज्य के लिये परिवार को मारना निन्दनीय है “ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम्। भा 11।16।7।” भगवान ने उद्धव जी से कहा है कि संग्रह से दूर रहने वाला पुरुष धन्य है तथा उसकी सारी दिशाएँ आनन्द से भरी हैं “अकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य सम चेतसः। मया सन्तुष्ट मनसः सर्वं सुखमया दिशः। भा 11।14।13।” प्रिय वस्तु का संग्रह दुःख देता है। जो अकिंचन है वही सुखी एवं विवेकी है “परिग्रहोहिदुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम्। अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यः तु अकिञ्चनः। भा 11।9।1।” अकिञ्चन कटे खेत से चून बीनकर जीवन निर्वाह करते हैं “अकिञ्चनानां हि धनंशिलोञ्छनम्। भा 6।7।36।” रजोगुणी की कामनायें का अन्त नहीं होता। सांप की तरह गुस्सैल होता है। कंस ने उग्रसुन का रावण ने विभीषण का दुर्योधन ने पांडवों तथा हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद का अनिष्ट चाहा “रजसाधोर संकल्पाः कामुका अहिमन्यवः। दाम्बिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान्। भा 11।5।7।”

इसीलिये दरिद्रता ही उत्तम वस्तु है “दीनबन्धु दीन ही के नाते भली भांति अपनाते हैं।” (यह पंक्ति पुस्तक के पृष्ठ 18 पर है तथा अर्वा गुणगान के पद जैसी है। ऐसा लगता है कि अर्वागुणगान का प्रकाशन इसके पूर्व हो चुका था या निर्माण के मध्य होगा। प्रभु दीनबन्धु दीन हित ही कहायो स्वामी। कहो जग दीन मोरे सम कहीं पाओगे।। पद 34 अर्वागुणगान।)

मनुष्य पाप से दरिद्र या धनी होता है और पुण्य से दरिद्र या धनी होता है। वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड में कथा है राम राज्य में कुत्ते के कहने पर ब्राह्मण को मठाधीश बनाया गया था। पाप से दरिद्रता में भगवान स्मरण नहीं होते। सर्वत्र इसतरह के उदाहरण दिखते हैं। जय विजय पाप से ही धनी बनकर हिरण्यकशिपु आदि हुए। पुण्य से भगवत्कृपा के कारण धनी होने के उदाहरण हैं इक्ष्वाकु मनु अम्बरीष युधिष्ठिर ध्रुव प्रह्लाद दशरथ जनक आदि। पुण्य से दरिद्र के उदाहरण हैं सुदामा विदुर शुक नरद आदि। उत्तरा के गर्भ पर अश्वत्थामा के विनाशकारी प्रहार के समय कुन्ती भगवान से प्रार्थना करती है “विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो। भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्। भा 1।8।25।” यानी विपत्ति ही अच्छी है प्रभु क्योंकि विपत्ति में ही आपके दर्शन मिलते हैं।

दीनावस्था अच्छी है जो पुण्य से प्राप्त होती है सतत भगवान का ही स्मरण बना रहता है। ज्ञानी लोग भगवान के विस्मरण को ही विपत्ति बताते हैं “कह हनुमान विपत्ति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई। मानस सुन्दर का ३१।२।”

15। अर्चिरादि मार्ग।

यह श्री लोकाचार्य स्वामी द्वारा रचित पुस्तक है जिसकी व्याख्या स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज समय समय पर करते रहते थे। समेकित रूप से इस व्याख्या को पुस्तक के रूप में स्वामी जी महाराज के वैकुण्ठगमन के बाद वर्तमान स्वामी जी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी द्वारा श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद द्वारा हुलासगंज से प्रकाशित है जिसका प्रथम संस्करण सं 2042 यानी ई सन् 1985 में तथा द्वितीय संस्करण सं 2056 यानी ई सन् 1999 में प्रकाशित हुआ। मूल पुस्तक संस्कृत एवं तमिल की मिश्रित भाषा मणिप्रवाल में है परन्तु बाद में किसी अन्य विद्वान द्वारा इसका संस्कृत अनुवाद हुआ जिसकी व्याख्या श्री स्वामी जी महाराज सुनाया करते थे। श्री लोकाचार्य स्वामी का जीवन काल ई 1205 से ई 1307 है तथा वे श्रीरंगम के निवासी थे। इनके द्वारा 18 पुस्तकों का प्रणयन हुआ एवं सभी तमिल या मणिप्रवाल भाषा में हैं। ‘अर्चिरादि’ नामक पुस्तक के सार को इन्होंने ‘प्रमेशेश्वर’ नाम से एक दूसरी स्वतंत्र पुस्तक में प्रस्तुत किया था। इन्हें तमिल क्षेत्र में पिळ्ळै लोकाचार्य कहा जाता है तथा ये वेदान्तदेशिक स्वामी के समकालीन थे।

अर्चिरादि मार्ग को वैकुण्ठ मार्ग भी कहते हैं। जिस रास्ते शरीर छोड़ने के बाद जीवात्मा वैकुण्ठ में पहुँचता है उसे वैकुण्ठ मार्ग कहते हैं। प्रत्येक वैष्णव को अर्चिरादि मार्ग की कथा पढ़कर या सुनकर समझ लेनी चाहिये कि जीव शरीर से निकलकर किस मार्ग से और कैसे दिव्यधाम वैकुण्ठ में लक्ष्मीनारायण भगवान की चरणसेवा में पहुँचता है। प्रायः परम्परा से यह देखा जाता है कि किसी के मरने के बाद श्राद्ध के दिनों में लोग गरुड़ पुराण की कथा पढ़ते या सुनते हैं परन्तु इसमें नरकमार्ग का वर्णन है जो वैष्णव भक्त के लिये लागू नहीं होता क्योंकि वैष्णव मरने के बाद नरक नहीं जाते हैं। अतः गरुड़ पुराण के बाद अर्चिरादि की कथा अवश्य होनी चाहिये। पहले प्रमेशेश्वर की कथा हो उसके बाद अर्चिरादि की कथा हो। यह कथा पाँच दिन या एक दिन में भी पूरी की जा सकती है। चूँकि अर्चिरादि में चार प्रकरण है तो पहले दिन प्रमेशेश्वर के पश्चात् अन्य चार दिनों में अर्चिरादि पूरी की जा सकती है या सबको समेकित रूप से एक दिन में भी पूरी की जा सकती है।

प्रमेशेश्वर का विषय वस्तु : 1। भगवत्कृपा। 2। सन्त का दर्शन। 3। गुरु के द्वारा भगवान की शरणागति। 4। आत्मतत्त्व का ज्ञान। 5। पूर्व के कर्म के कारण प्रारब्ध भोग के बाद शरीर त्याग। 6। अर्चिरादि देवों के द्वारा सम्मानित होकर विरजा नदी के पास पहुँचना। सांसारिक माया एवं प्रकृति की सीमा विरजा नदी के इस पार ही समाप्त हो जाती है। 7। अमानव भगवान की कृपा से नारायण के समान चतुर्भुज रूप धारण करना। 8। दिव्य अप्सराओं से सम्मानित होकर दिव्य विमान द्वारा वैकुण्ठनाथ के प्रधान गोपुरद्वार पर पहुँचना। 9। भगवान के दिव्यमण्डप में पहुँचना। 10। श्री भू आदि देवियों सहित वैकुण्ठनाथ का दर्शन करना तथा उनकी सेवा में सदा के लिये संलग्न हो जाना।

अर्चिरादि के प्रथम प्रकरण का विषय वस्तु : 1। वैकुण्ठ में रहने वाले नित्य मुक्त जीवों के व्यवहार संसारी जीव के व्यवहार से भिन्न होते हैं। 2। सांसारिक जीवों पर भगवान की अकारण कृपा होती है। 3। सदगुरु के दर्शन एवं उनसे सदुपदेश लेना आवश्यक है। 4। आचार्य या सदगुरु की शरणागति आवश्यक है। 5। शरणागत वैष्णव संसार की कठोरता एवं निर्ममता को समझने लगते हैं। 6। उन्हें भगवद् दर्शन की प्रबल ईच्छा होने लगती है। 7। श्रीवैष्णवों को भगवान स्वयं भी याद करते हैं। 8। पूर्व के संग्रहित कर्म तथा वर्तमान के कर्म एवं दोनों के कारण भविष्य के प्रारब्ध कर्म क्या होते हैं। 9। अर्चिरादि मार्ग में भगवान नाम का ही कलेवा साथ रहता है। 10। सभी कर्मों के भोगने के बाद ही सांसारिक शरीर का त्याग होता है। 11। वैकुण्ठ मार्ग में स्वागत की तैयारी होती है।

अर्चिरादि के द्वितीय प्रकरण का विषय वस्तु : 1। भगवान की कृपा से जीव अपनी रीढ़ में स्थित सुषुम्ना नाड़ी से निकलकर यानी मरते समय भगवान की सत्ता के प्रति सचेत रहने पर वैकुण्ठ मार्ग के लिये प्रस्थान करता है। 2। 'अग्नि' 'दिन' 'शुक्लपक्ष' 'उत्तरायण' 'संवत्सर' 'वायु' 'सूर्य' 'चन्द्र' 'विद्युत' 'वरुण' 'इन्द्र' तथा 'ब्रह्मा' के लोकों से जाते हुए सम्मानित होता है। 3। सांसारिक प्रकृति के पार विरजा नदी में प्रवेश करता है। 4। अमानव भगवान के चरणों पर माथा रखने पर उनके हाथ का स्पर्श मिलते ही दिव्य चतुर्भुज रूप धारण करता है। 5। दिव्य अप्सरायें स्वागत करती हैं तथा नित्यसूरियों द्वारा दिव्यविमान पर सवार होता है। 6। रास्ते में अलौकिक पुष्पादि के सुगन्ध वाले वृक्षादि के सुगन्ध से शरीर सुगन्धमय हो उठता है। 7। वैकुण्ठ के पद्मानगोपुर द्वार पर पहुँचता है। 8। श्रीवैकुण्ठनाथ के दिव्यमणि से सुशोभित दिव्यमण्डप का दर्शन होता है। 9। पूर्व से स्थित भगवान के समान आठ गुण अब जाग उठते हैं। सांसारिक जीवनकाल में ये आठो गुण रहते हैं परन्तु सुषुप्तावस्था में रहते हैं। 10। भगवान एवं वैकुण्ठवासी जीव की विलक्षणता क्या है।

अर्चिरादि के तृतीय प्रकरण का विषय वस्तु : 1। भगवान के दिव्यदर्शन से चकित होकर दूर से ही उनको निहारने लगता है तथा एक एक कर भगवान के 'दिव्यसिंहासन' 'दिव्यकमल' 'दिव्ययोग पर्यङ्क' यानी सभी सुविधाओं से सम्पन्न श्रीशेष जी की शय्या' 'श्रीदेवी' 'भूदेवी' एवं 'नीला देवी' तथा भगवान के आपादमस्तक सभी दिव्य आभूषणों से युक्त सभी अंगों का सजीव साक्षात् आनन्दमय दर्शनलाभ मिलता है। यथा रामजी से सागर किनारे विभीषण जी का मिलन प्रसंग के स्मरण में इसकी झोंकी सजीव हो उठती है "दूर ही ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानन्द दान के दाता।। बहुरि राम छविधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी।। भुज प्रलंब कंजारून लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन।। सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा।। सु 45। 1 एवं 2।।"

अर्चिरादि के चतुर्थ प्रकरण का विषय वस्तु : 1। भगवान को साष्टांग प्रणाम करते हुए उनके सिंहासन पर पास जाने का अवसर मिलता है। 2। भगवान उसे गोद में लेते हैं तथा हाल समाचार पूछते हैं। 3। भगवान उस पर कृपा दृष्टि डालते हैं "चितइ कृपा करि राजीव नयना। सु 34। 1।" 4। चकित होकर भगवान को निहारने लगता है। 5। भावविभोर होकर भगवान की स्तुति करता है। 6। भगवान उसे अपने नित्य कैङ्कर्य सेवा में लगा लेते हैं।

श्रीस्वामीजी महाराज के अर्चागुणगान का निम्नोद्धरित पद अर्चिरादि का सार है।

त्रिपाद विभूति प्राप्त कराने का श्रेय अपने संत गुरु को देते हुए संतमिलन के सौभाग्य की महिमा के साथ अर्चिरादि मार्ग तथा वैकुण्ठ का सजीव चित्रण :

दया किन्ह भगवान सन्त मोहि मिललन ये । तब सन्त किये उपदेश शरण हरि के भये ये । । 1 । ।
दीन्ह ज्ञान भगवान हृदयतम भागल ये । तब तन धन से मन भगवत के चरण लगाये । । 2 । ।
अन्तर्यामी कृपा करि धमनी धरवतन ये । हरि अर्चि के पथ बतलवतन उपर दिखवतन ये । । 3 । ।
अतिवाहिक देव मिलि मोहि रथ बइठवतन ये । तब दिन पक्ष मास वर्ष पति पूजन करवतन ये । । 4 । ।
बात सूर्य विधु चपल वरुण इन्द्र विधि पुर ये । पुनि जायेव बिरजा नहाएब तनहुँ विलायेब ये । । 5 । ।
अतिमानव भगवान स्वरूप निज देतन ये । तब दिव्य विमान चढ़ाई देव लै जयतन ये । । 6 । ।
आरंग ताल नहायब गन्ध लगवाएब ये । पुनि तिल तर भूषण वसन पहिर वनि जायेव ये । । 7 । ।
लक्ष्मी सरोवर पहुँचव बहुरि नहायेब ये । पुनि बहुविधि से बहुमानित ही चल जायेव ये । । 8 । ।
नित्य सूरी तहँ मिलि सब हरि वमनि गवतन ये । तब दिव्यलोक हम देखव शीश नवाएब ये । । 9 । ।
पाँव पाँव हम दौड़व हाबु हाबु बोलव ये । मन देखतहि भगवान हँ भर के बुलवयतन ये । । 10 । ।
जातहि हम गिर जायेव हरि के चरण तर ये । प्रभु चारिउ कर धर मोहि हृदय में लगवतन ये । । 11 । ।
शिर पर कर धर पुछतन बबुआ तु कहाँ हल हो । तब तनुकर जन्म मरण दुःख कह समुझायेव ये । । 12 । ।
लक्ष्मी के गोद प्रभु देतन हम हँस बैठव ये । भैया मुख चुम्बत चुचुकारत अधिक दुलारत ये । । 13 । ।
हृदय के जलन बुतायेत शान्ति सुखद जल से । अति मोद उछाह प्रवाह सुनेह निवाहन ये । । 14 । ।
सेवन विधिहुँ बताई सेवा सब देतन ये । तब नित नव नेह लगाइ सदा हम सेवव ये । । 15 । ।
ब्रह्मानन्द अघा के परम रस पायेब ये । श्रीलक्ष्मीनाथ के साथ सुमाथ झुकायेब ये । । 16 । ।

16 . देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं ?

यह पुस्तक ६० पृष्ठ की है तथा मुख पृष्ठ पर भगवन बालाजी का सुन्दर चित्र है। अनुमान है यह १९५७ ई में छपी "संपत में विपत और दीनता में राम" के पहले छपी है। इस पुस्तक में पांच विषय वस्तु पर प्रकाश डाला गया है : १. त्रिगुणात्मिका सृष्टि। २. देवताओं की क्षुद्रता। ३. भगवदभक्ति निष्कण्टक मार्ग। ४. अनन्यता और उसका स्वरूप। ५. देव शब्द मीमांसा।

त्रिगुणात्मिका सृष्टि।

सृष्टि में सतोगुण रजोगुण एवं तमोगुण की प्रधानता है। वर्तमान सृष्टि पहले की सृष्टि के अनुकूल है तथा वेद पर आधारित है। "त्रैगुण्यविषयावेदा।" वेद का पूर्व भाग स्मृति तथा उत्तरभाग इतिहास पुराण भी त्रिगुणात्मिक है। पदम्पुराण के अनुसार : विष्णु, नारद, भागवत, गरुडपुराण सात्त्विक हैं। ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्रह्मपुराण राजसिक हैं। मत्स्य, कूर्म, शिव, स्कन्द, तथा अग्निपुराण तामस हैं। सांसारिक बन्धन से छुटकारा दिलाने वाली बुद्धि सात्त्विक है। कार्य अकार्य धर्म अधर्म की समझ राजसिक से होती है। धर्म को अधर्म एवं अधर्म को धर्म समझना तामसी है।

गुणों की विषमता से सृष्टि तथा गुणों का अधिक बढ़ जाना प्रलय है। सब भगवान की ईच्छा से होती है। समय समय पर सुधार के लिए महापुरुष भेजते हैं। व्यासजी को भागवत से शांति मिली। इसमें भगवत पूजन की प्रधानता है। स्वयं व्यासजी भी यही करते थे।

देवताओं की क्षुद्रता।

तैंतीस करोड़ देवता के नाम भी ज्ञात नहीं। सबकी पूजा पृथक् रूप से सम्भव नहीं है। देवों के राजा इंद्र की क्षुद्रता गोवर्धन प्रकरण से समझ सकते हैं। सारे ब्रज को मूसलाधार वर्षा से बहाना चाहता था। अहल्या के कारण इसके शरीर में हजारों भग हो गए थे। प्रह्लाद को माँ के गर्भ में मारना चाहता था। नारदजी ने बचाया था। इंद्र को श्वानवत कहा है "सूख हाड़ ले भाग सठ..... तिमि सुरपति हि न लाज।" बालकांड दो १२५। शुकदेवजी की भागवत कथा में इन देवों को बैठने की अनुमति नहीं थी। स्वार्थवश परम भागवत भरतजी का रामजी से मिलन नहीं होने देना चाहता था। ऐसे क्षुद्रों को ज्ञानी जन क्यों पूजे? ब्रह्मा के कहने से देवगन बन्दर भाल बनकर आये परन्तु शिवजी रावण के कारण स्वयं नहीं आये। बलशाली हाथी एवं सिंह को छोड़कर बूढ़ी गाय ही पूजी जाती है। "आब्रह्म भुवनल्लोकाः पुनरावर्तिनो अर्जुन।" गीता ८।१६। ब्रह्मा तक बारबार जन्म लेते हैं। अतः भगवान की ही भक्ति श्रेयस देनेवाली है।

भगवदभक्ति निष्कण्टक मार्ग।

भगवदभक्तों को निर्भीक बताया है। हनुमानजी "दासो अहम कौसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।" अंगद रावण को कहते हैं "आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक।" मानस लंकाकांड ३३।१।

भगवान राम कृष्ण जिस कुल में जन्म लिए उस कुल का धर्म पालन किया। राज्याभिषेक के समय रामजीने कुलदेव नारायण के मन्दिर में पूजाकी। श्रीयामुनाचार्य ने कहा है : मेरी बुद्धि भगवान को छोड़कर अन्य कहीं जाये तो सौ टुकड़ों में खण्डित हो जाऊँ। श्रीभाष्यकार स्वामी की आज्ञा : श्रीभाष्यम द्रविडागम प्रवचन। परधर्मी भयावह। श्रीवैष्णव भगवान को छोड़ अन्य की भक्ति न करे। कल्याण के हजारों उपाय में आचार्यसेवा, साधुसंगति, भगवदाराधन, स्वरूपज्ञानदि बताया है परन्तु देवतान्तरो की भक्ति सेवा नहीं। ब्रह्मा अपनी रक्षा मधुकैटभ एवं रुद्र से नहीं कर सके। रुद्र की संहारक प्रवृत्ति है। नारद ने ध्रुव से कहा एकमात्र नारायण ही उपास्य हैं। "एकमेवंहरेः तत्रकारणं पादसेवनम्। भा४।८।४१। भगवान की चरण सेवा से ही सब कुछ मिलता है।

कुछ लोग मानस के उद्धरण से अन्य देवों की आराधना की दुहाई देते हैं जो सही नहीं है। मानस में स्पष्ट है: "जो सत शंकर करै सहाई। तदपि हतौं रण राम दुहाई।" लंका का ७४।७। "श्रीरघुवीर प्रताप ते सिंधु तरै पाषाण। ते मतिमंद जे राम तजि भजहि जाय प्रभु आन।" लंका का ३। सुतीछनजी का प्रसंग "मन क्रम वचन राम पदसेवक। सपनेहु आन भरोस न देवक।" अरण्य कांड ९।१। रामजी से बाल्मीकि जी का चित्रकूट में मिलन। "स्वामी सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात। मनमन्दिर तिन्ह के बसहु सियसहित दोड आत। अयोध्या काण्ड दोहा १३०। इस तरह से मानस में भी एक मात्र नारायण ही उपास्यदेव हैं। प्रमाणभरेपडे हैं।

शास्त्र भगवान वचन हैं। गीता, ब्रह्मसूत्र आदि ज्वलन्त प्रमाण हैं। ब्रह्मसूत्र में पाशुपत शास्त्र को अनादरणीय कहा है, देवतान्तर पूजन का प्रतिपादन तो दूर रहा। इसमें भूतप्रेतादि के पूजन विधान हैं जो त्याज्य हैं।

कपाल, भस्म, रुद्राक्षादि धारण मना है। पांचरात्र के प्रवक्ता भी भगवान हैं । पांचरात्र बहुत ही वृहत् है। इसकी सभी संहिताएं उपलब्ध नहीं हैं। जो प्राप्त हैं : ईश्वरसंहिता, हारीतसंहिता, वृहद्ब्रह्मसंहिता, भरद्वाजसंहिता, अहिर्बुध्न्यसंहिता, तथावैखानस। (हमारे श्रीवैष्णव पूर्वाचार्यगण) श्रीलोकाचार्यस्वामी, श्रीशठकोपस्वामी, श्रीकलिवैरीस्वामी, श्रीवेदांताचार्ययानी वेदान्तदेशिक स्वामी, श्रीकृष्णपाद, श्रीभट्टारक, श्रीभाष्यकार स्वामी वगैरह ने भी देवतान्तरों की पूजा निषेध बताया है। देवतान्तरों का पूजन, नमन, स्मरण, अवलोकन, गायन, निन्दन मना है। भस्मादि धारण करने वाले श्राद्धादि में निमन्त्रण योग्य नहीं हैं। भगवान दास होना ही नैसर्गिक धर्म है, इसके बिना सब निष्फल हैं। राक्षसनाश के लिए ही शिव ने पाषण्डधर्म का प्रचार किया। पुस्तक के पृष्ठ २९, ३०, ३१ देखें। पद्म पुराण विष्णु का वचन है। इसमें कहा है "त्वम हि रुद्र महा बाहो मोहनार्थं सुरद्विशां पाषण्डचरणं धर्मकुरुष्वच महामते। भरद्वाज संहिता में है "नारायणैकनिष्ठायै सात्त्विकातन्निबोधत। "वृहद्हरित में है : "अन्यालये हरिदृष्ट्वा देवतान्तर संसदि। नार्चयेतन प्रणमेच्च तीर्थसेवा विवर्जयेत। "यानी अन्य देवताओं के समीप भगवान हों तो भगवान की पूजा प्रणामादि न करे और न उनका तीर्थ प्रसाद ही ले। "विधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीपआये बहुबारा।" "परम धीर नहीं चलहिं चलाये।" बा का १४४।१२। सबों के साथ आने से देवतान्तरगोष्ठी हुई, मनु शतरूपा ने इसलिए ध्यान नहीं दिया। "गति अनन्य तापस नृपरानी।" बा का १४४।३। दोनों में भगवान की अनन्यता थी।

तीनों देवों की परीक्षा में भृगु का वचन है; ब्रह्मा एवं शिव को मैंने शाप दिया है। वे ब्राह्मणों से अपूज्य हैं। बृहद्हारीत एवं हारीत स्मृति में कहा है: रुद्र की पूजा एवं त्रिपुण्ड्र धारण विधि ग्रंथों में शूद्रों के लिए है। श्रीवैष्णवों के लिए मोक्षप्राप्ति में देरी जबतक शरीरपात नहीं होता तभी तक है। कर्तव्यपरायण मनुष्य देवों से श्रेष्ठ हैं। मनुष्यदेह में विश्वामित्र द्वारा नयी सृष्टि से इंद्र घबराए एवं उनसे क्षमा मांगी। गोवर्धनपूजा श्रीकृष्ण की पूजा है। नंदजीको श्रीकृष्ण भगवान ने इंद्र की पूजा करने से मना कर दिया। श्रीकृष्ण के मुख में शाक की एक पत्ती पड़ने से तीनोंलोक की तृप्ति हुई। सुदामाजी का चूड़ा खाते हुए भगवान ने कहा कि हमारे अंगों में स्थित अनंत कोटि ब्रह्मांड की तृप्ति हो रही है। भगवान की आराधना से विश्वमात्र की आराधना हो जाती है। श्रीयामुनाचार्य ने कहा है की जो त्रिविधसीमा (देवतान्तर, विषयांतर, उपायांतर) को लांघ कर आपके साथ अनन्य भाव दिखाता है वही कल्याण भाजन बनता है। मच्चित्तमदगतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्गी १०।९ तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। गी १०।१०। ब्रह्मा एवं शिव दोनों को वैष्णव कहा है। ब्रह्मा तो भगवान विष्णु से चक्रांकित थे। शिव को "वैष्णवानां यथा शंभु..." भा १२।१३।१६ वैष्णवों में श्रेष्ठ माना है। शिव के चरित्र में ब्रह्मा का शिर काटना, राक्षसों को वरदान देना, भगवान विष्णु से बार बार लड़ाई लड़ना आदि वैष्णवों को शोभा नहीं देते। राक्षसकुल के होने पर भी वास्तविक रूप में प्रह्लाद सर्वश्रेष्ठ वैष्णव के उदात्त चरित्र वाले थे। कभी भी हिंसा में लिप्त नहीं हुए तथा राक्षसों को सन्मार्ग पर लाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। शिव के चरित्र में दोष होने पर भी अनादिकालिक वैष्णव होने के नाते वे श्रेष्ठ कहे गये हैं। जैसे कि भक्तों के कल्याणार्थ वराह यानी सूअर के स्वरूप में भी आने पर भगवान विष्णु सर्वदा मान्य रहे हैं।

अनन्यता और उसका स्वरूप

सतत एक ही विषय यानी भगवद्विषय भाव बनाये रखना को अनन्यता कहते हैं। ऐसे भक्त अनन्य भक्त कहे जाते हैं। भगवान ने गीता में कहा है : “अभ्यासयोगायुक्तेन चेतसा नान्यगामिना। गी 8।8।” “अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। गी 8।14।” “... भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया। 8।22।” “भजन्ति अनन्य मनसः ...। 9।13।” “अनन्याः चिन्तयन्तः माम् ... 9।22।” “भक्त्या तु अनन्या शक्यः ...। 11।54।” “.....अनन्येनैव योगेन ... 12।6।” “मयि च अनन्ययोगेन...। 13।11।” भगवान ने बार बार अनन्यता की महत्ता बताते हुए कहा है “न अहम् वेदैः तपसा न दानेन। 11।53।” वेद पढ़ने तपस्या करने दान आदि से मैं नहीं मिलता हूँ परन्तु अनन्यता से मिलता हूँ “भक्त्या तु अनन्या शक्यः ...। 11।54।” अगर दुराचारी भी अनन्य है तो वह साधु यानी आदर्श पुरुष हो जाता है “अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्। गी 9।30।” भागवत में भगवान कपिल ने माता देवहूति को अनन्यभाव से अपनी भक्ति के लिये कहा है “मयि अनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम... 3।25।22।” तथा अन्य देवताओं की आराधना के लिये मना किया है “विसृज्य सर्वान् अन्यश्च...। 3।25।42।” हमारे आळवार संतजनों ने भगवद्विषयक अनन्यता को ही बताया है “क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविड़ेषु च भूरिशः। ताम्रपर्णीनदी यत्र कृतमाला पयस्विनी । भा 11। 5 ।39।” कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी। ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर। भा 11।5।40। भाव है कि सबकुछ भगवान की शरणागति से करे “कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्। करोति यद यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्।” भा 11।2।36।

देव शब्द मीमांसा

यज्ञ की महत्ता बताते हुए भगवान ने गीता में कहा है “देवान् भावयत् अनेन परस्परं भावयतः श्रेयः ...।” गी 3।11।” मनुष्य एवं देवता एक दूसरे को प्रसन्न करने में सहयोग करें। परन्तु तृष्णावश “कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवता। गी 7।20।” सांसारिक कामना की पूर्ति के लिये मूढ़ मनुष्य अन्य देवों की शरण में जाते हैं। “.....क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति...। गी 9।21।” और पुण्य का क्षय होने पर धरती पर पुनः चले आते हैं। स्वर्ग से देवता भी पुण्य का क्षय होने पर जब पुनः जन्म लेकर पृथ्वी पर ही आ जाते हैं तब वे अन्य मनुष्यों का कैसे कल्याण करेंगे। अतः गीता के तीसरे अध्याय के 11 वें श्लोक के देव लोग त्रिदेव विष्णु वैकुण्ठ के दिव्यपार्षद सतो गुणी वृत्तिवाले सदाचारी के लिये कहा गया है न कि क्षुद्र इन्द्र आदि देवतागण के लिये। इसी तरह से गीता 11।48 “न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैः.....।” में यज्ञ का भाव क्षुद्र देवों के सांसारिक कामनाओं के फल दायक यज्ञ से है न कि विष्णु यज्ञ से।